प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM
सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 5100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 7100 रुपये)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)121006
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन – 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P. o. Box 99846, Dubai, UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. **Dr. Vimla Devi,** Asst. Professor (History) M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttrakhand) G-mail address. drvimla2015@gmail
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 ऊषा रानी,हिन्दी–विभाग हिमाचल प्रदेशविश्वविद्यालय, शिमला
9. विमला टोप्पो, एस0 आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0 ओ0 जंगली घाट –744103 साउथ अंडमान
10. डॉ0 राजपाल, सहायक प्रो0 राजकिय स्नातकोत्रर महाविद्यालय,हिसार
11. डॉ0 प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो0 (हिन्दी –विभाग), बाबा मस्तराथ, विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)
12. **डॉ०निर्भय शर्मा**, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी) ,संघटक राजकीय महाविद्यालय भदपुरा, नवाबगंज, एम०जे०पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०) पिन कोड – 262406. Mobile No: 9634160016 Email: dr.nirbhaysharma@gmail.com

संरक्षक मण्डल :

1. **प्रो0 डॉ0 चक्रधार त्रिपाठी** पूर्व **कुलपति,** उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, 763004, चलभाषः 9437568809
2. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
3. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय. रोहतक)
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** पूर्व चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129
6. **डॉ0 तपन कुमार शण्डिल्य,**पूर्व **कुलपति,** डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय राँची, (झारखण्ड) 9431049871
7. **डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची – 834008
फोन : 09431595318
8. **सुदेश रावत** प्रांचार्या एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरूक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)
9. Sh. Butta Singh gill, PPS, Dy Superintendent of Police. No 409 ,Street no 7 Ghuman Nagar , Sarhind Road, Patiala Punjab -147001.

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ0 विजयदत्त शर्मा, पूर्व निदेशक, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी पंचकूला(हरियाणा)**
2. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
3. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
4. **डॉ० माया मलिक,**पूर्वप्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
5. **डॉ० ममता सिहल,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर
6. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ0 अनिता, सहायक प्रोफेसर**, (हिन्दी), श्री अरबिन्दो कालिज दिल्ली (सांध्य) मौ0 :8595718895
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ0 के0डी0 शर्मा,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

9. **डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल
10. **डॉ0 सुधा चौहान,** पूर्व अध्यक्षा हिन्दी विभाग, वैश्य कालिज, भिवानी
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर
12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
13. **डॉ0 सुधा कुमारी** (हिन्दी विभाग) एन0जी0एफ0 डिग्री कालिज, उडदू, अध्ययन केन्द्र मथूरा रोड, पलवल 982719456
14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
18. **प्रो0 (डॉ0) वन्दना शर्मा, म. न. 2, प्रोफेसर लोंज, किचम सी. डी. एम.,मोदीनगर (उ.प्र.) 201204, मो0 2760411251**
19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** पूर्व प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
23. **डॉ0 ममता कुमारी,** सहायक प्रो0, डी0 ए0वी0 शताब्दी महाविद्यालय, फरीदाबाद हरियाणा
24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
25. **डॉ.सुनीता सिंह प्रोफेसर**, हिन्दी मानविकी संकाय, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) 125001
26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
27. **डॉ0 राजपाल ,** सहायक प्रो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार
28. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 टिकाराम कन्या कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा
29. **प्रो. प्रणव शास्त्री,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262 001 उ. प्र. मो.98379 60530 drpranav&pbt23@rediffmail-com
30. **प्रो. राखी उपाध्याय,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष – हिन्दी विभाग, डी. ए . वी. कॉलेज, देहरादून – 248 001 (उत्तराखंड) मो. 94111 90099 drrakhi.418@gmail-com
31. **डॉ0 सुनीता जसवाल,** असिस्टेंट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश) मो. 7018621542
32. **डॉ0 सुमन रानी**, सहायक प्रोफेसर, अस्थाई, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेषदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय पलवल हरियाणा मौ0 9050289680 sumanbhati808@gmail.com
33. **डॉ0 संगम वर्मा**, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, सैक्टर 11,चण्डीगढ़ 9463603737,kavysavvy@yahoo.com
34. **डॉ0 प्रीति गुप्ता**, हिन्दी व्याख्याता GGSSS राम नगर न01 पहाड़गंज नई दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार) मौ0 8058138017 sweetpriti80@gmail.com
35. **संजय कुमार,** व्याख्याता, GBSSS करावल नगर,दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार)संपर्क– 8769406872 ई मेल sanjaydholpuria51@gmail.com

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयवीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ0 जे. के. शर्मा,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक
11. **डॉ0 राजाराम,** सहायक प्रोफेसर (अंगेजी) ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल, विष्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन**पूर्वरीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
6. **Dr,shaveta Kakkar** Associate professor in commerce Vaish Mahila Maha vidyalaya Rohtak

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू
8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, प. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ0 रश्मि,** (अध्यक्षा) इतिहास विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, जीन्द (हरियाणा) पिन – 126102

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा**, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्लीएसोसिएट
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. **डॉ0 श्रीमती पंकज शर्मा,** (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
2. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1 **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर

2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

4. **Dr. Dhrub Kumar Singh.**HOD, Department of Mathematics, YBN University, Rajaulatu, Namkum, Ranchi, Jharkhand, India. Pin-834010

5. **डॉ रश्मि मिश्रा** प्रोफेसर (एप्लाइड साइंस एंड हमनीटीएस), मैथमेटिक्स गनेशी लाल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट ग्रेटर नॉएडा

कम्प्यूटर विभाग:

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)

2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)

3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

2. **डॉ० सुनीता सैनी,**एसो0 प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

3. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

4. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}

5. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

6. **डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल,** सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली

2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)

4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

कृषि विभाग

1. **डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य** सह–आचार्य (कृषि–प्रसार) श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा राजस्थान मो. 9460545836

दर्शनशास्त्र

1. Prof, Dr, Asha Devi department of Philosophy Govt P G college kotdwar pauri Garhwal Uttarakhand 246149

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

4. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

5. **Dr. Vimla Devi, Asst. Professor (History)** M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttrakhand)
   G-mail address. drvimla2015@gmail

6. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

7. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

8. **Dr. Govind Prakash Acharya** F--63, Chandra Vardai Nagar, UIT, Colony, Shaheed Bhagat Singh Marg, Opposite Ramganj Thana, Taragarh Road, Ajmer (Rajasthan) Pincode--305003.

9. **Amardeep Singh** Mcf C -21, Near Deep Vatika, Bhagat Singh Colony, Ballabgarh121004, Mob. 9873814066

10. **Principal,** Goswami Ganesh Dutt Sanatam Dharma College Palwal (Haryana)

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
आचार्य मनिष र. जोशी
सचिव
Prof. Manish R. Joshi
Secretary

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
University Grants Commission
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
(Ministry of Education, Govt. of India)

F.No. 1-1/2018(CARE/JOURNAL)-Part file 22 माघ 1946/11 February, 2025

सार्वजनिक सूचना

In supersession of the Public Notice dated 28th November 2018 for establishing UGC Consortium for Academic and Research Ethics (UGC- CARE), the Commission, in its 584th meeting held on 3rd October 2024, based on the recommendations of the expert committee, has decided to discontinue UGC-CARE listing of Journals and develop suggestive parameters for choosing peer-reviewed journals by faculty members and students. The suggestive parameters, developed by a group of experts and academicians, are now placed in the public domain for their feedback till **25th February, 2025 at email id: journal@ugc.gov.in.**

The stakeholders, including HEIs, faculty members, researchers, and students, may take note of it.

(मनिष जोशी)

बहादुरशाह जफ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002 | Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110002
दूरभाष (Ph.): 011-23236288/23239337 | सम्पर्क सूत्र (ई-मेल) (E-mail) : secy.ugc@nic.in

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	डॉ0 देवेन्द्र द्वारा रचित 'जकड़ी' में निहित मानवीय संवेदना	डॉ0 राजपाल	9–11
2.	"ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में दलित विमर्श का सामाजिक यथार्थ"	सुषमा कुमारी	12–17
3.	कुंडूख लोक गीतों में जीवन, प्रकृति और सामूहिक चेतना	सरिता मिंज	18–23
4.	भूमिदान का महत्व	Dr. Naveen Gahlawat	24–26
5.	वीरेन डंगवाल के काव्य में प्रकृति के द्वारा मानवता का सन्देश	सिम्पी, डॉ० अनिशा	27–31
6.	विकसित भारत 2047 के लक्ष्य और ई–गवर्नेंसः समावेशिता, पारदर्शिता और नवाचार की ओर	प्रो. (डॉ.) तपन कुमार शांडिल्य	32–37
7.	A StudyonIndia EXIM Policy2025. Policy, Progress and Innovation	Dr. Santosh Kumar Sharma	38–43
8.	Study on the Attitude of Puriok Tribe Towards Political Participation in Arunachal Pradesh	a Ide Eshi, b Neeraj kumar	44–48
9.	Education For Happiness Through Nep 2020	Dr. Shweta Tripathi	49–52
10.	The Role of Agri-Startups in Haryana's Value Chain	Dr. Savita	53–57
11.	Building a Stronger Disability Rights Movement for Children	Kavita	58–62
12.	Diversification of Crop Production in Haryana: A Transition from Conventional to Modern Agricultural Paradigms	Dr. Savita	63–70
13.	Surface Water Resource And Its Demand : A Study of Gumla District	Rajesh Ghosh	71–74
14.	Comparative Study Of Motivation And Stress In Junior Pugilist (male And Female) Performance	Anju	75–79
15.	Assessment Of Female Netball Players Based On Physical And Physiological Variable	Dr. Rambir Singh	80–84
16.	Problems Of Water And Its Solutions : A Geographical Study Of Namkum Block	Anjana Kerketta	85–88
17.	Comparative Analysis of Body Fat Percentage and BMI Among Male Football Players of Different Playing Positions at Delhi University.	Anju	89–91
18.	Glimpses of Gender Conflict in Afro-American and Indian Female Writers	Dr. Kiran Bala	92–96
19.	Comparative Study Of Motivation, Aggression And Reaction Time In Male Football Players Performance	Anju	97–100
20.	जनकराज शर्मा के उपन्यासों में लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति (सारंग, सुखमा और एक घड़ी का स्वर्ग के संदर्भ में)	मोनिका, डॉ. सुनीता सिंह	101–103
21.	Sustainable Investing and Portfolio Returns: Debunking Five Common Myths	Hetika Saini	104–106
22.	जयशंकर प्रसाद की कहानियों की चरम–सीमा और अन्त का अनुशीलन	डॉ0 पुष्पा रानी	107–110
23.	समकालीन भारतीय साहित्य	अमीर नाथ शर्मा	111–112
24.	विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में सौंदर्य एवं लोकतत्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ0 पुष्पा रानी	113–116
25.	Effectiveness of Tariffs as a Tool for Reducing U.S. Trade Deficits: An Empirical and Policy Analysis	Dr. Suresh Kumar, Dr. Ravi Kumar	117–118
26.	Institutional and Procedural Machinery under the Consumer Protection Act, 2019: A Critical Evaluation of Its Effectiveness	Shashi Kiran Panwar, Dr. Sonia	119–123
27.	युवा में आत्महत्या की बढ़ती प्रवत्ति का विश्लेषण	डॉ0 सतीश चन्द अग्रवाल	124–127
28.	बखेड़ापुर उपन्यास में दलित चेतना की अभिव्यक्ति और परिवर्तन की दिशा	सुनीता	128–130

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
29.	बहूरानी : प्रेम और कर्त्तव्य की अनूठी कहानी	डॉ० छटु राम	131–134
30.	The Socio-Economic Dimensions of Climate Change: Navigating Impacts on Global Agriculture, Tourism, and Employment	Nayana Treesa E T, Dr.Nivedita Agnihotri	135–139
31.	शेरशाह सूरी के शासनकाल में दिल्ली (1540–1545 ई.) प्रशासनिक पुनर्गठन और शहरी परिवर्तन का आलोचनात्मक अध्ययन	Jatin	140–142
32.	Civil Defamation As A Tort In India: Need For Statutory Codification In The Digital Age	Devashish Yadav	143–146
33.	R K Narayan's The Man Eater of Malgudi: Classical Roots in Modern Writing.	Pooja Pandey	147–149
34.	Humour As A Weapon : Style And Narrative Technique Of R.k. Narayan's Mr. Sampath And Shashi Tharoor's Show Business	Sangeeta Das	150–151
35.	Union Budget 2026 and Higher Education in India: An Analysis of Research Funding, Fellowships and Skill Development Priorities	Dr. Suresh Kumar, Dr. Surender Singh	152–154
36.	भारत की प्राचीन ज्ञान परंपराः एक ऐतिहासिक विश्लेषण	Dr. Rashmi	155–158
37.	डॉ० राजश्री कृत 'दिल से खाकी' में व्याप्त वर्तमान पुलिस की मनोव्यथा का यथार्थ चित्रण	अनिता	159–161
38.	नागार्जुन की रचनाओं में स्त्री चेतना	रीमा रेणु कन्डुलना	162–164
39.	साहित्यिक पत्रकारिता में नंद किशोर पाण्डेय जी का योगदान	डॉ. सुमन राठी , सुमन छापोला	165–167
40.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में भारतीय समाज के बदलते आयाम	डॉ0 सबा रईस	168–172
41.	Indian Knowledge Systems: Safeguarding, Transmission, and Societal Relevance	Dr. Subodh Kumar	173–176
42.	खोरठा लोक साहित्य में लोकगीत : एक वर्णनात्मक अध्ययन	अमित कुमार करमाली	177–179
43.	बौद्ध धर्म और सामाजिक संरचनाः एक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विश्लेषण	मुकुंद कुमार	180–183
44.	समकालीन हिंदी साहित्य में प्रतिरोध के स्वर	डॉ0 अनिल कुमार अनल	184–188
45.	GST 2.0: Balancing Growth and Fiscal Prudence in India's Indirect Tax Reforms	Dr. Shikha	189–193
46.	पर्यटन और प्रवासन के संदर्भ में सिक्किम में हिंदी का प्रसार	पूजा त्यागी, प्रो0 डॉ0 राज नारायण शुक्ल	194–197
47.	GST Reforms 2025: India's Two-Slab Tax Revolution	Dr. Tanya Sharma	198–203
48.	समकालीन कथा साहित्य में स्त्री समाज का प्रतिरोध – स्वर, संरचनाएँ एवं सामाजिक पुनर्निर्माण	संगीता कुमारी उपाध्याय	204–206
49.	Market Access and Export Competitiveness of Indian Handicrafts Opportunities, Challenges, and Strategic Responses	Basu Vansit	207–211
50.	दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय गौरव गान	डॉक्टर निरुपमा महारणा	212–214
51.	रामकथा गायन की लोक शैली	डॉ0 श्रवण कुमार गुप्ता	215–218
52.	Cybersecurity in Business Organizations: Risks, Challenges, and Strategic Strategies in the Digital Economy	Dr. Shaveta Kakkar	219–222
53.	राजेन्द्र बड़गुजर के कथा साहित्य में वंचित वर्ग के प्रति संवेदना	प्रो. (डॉ.) जयकरण यादव, शिवरानी	223–225
54.	Juvenile Offenders And Social Media : Exploring The Digital Age Influence	Sagar, . Dr. Kailash Kumar	226–232
55.	राजेन्द्र बड़गुजर के काव्य मे सामाजिक चेतना	प्रो. (डॉ.) जयकरण यादव, शिवरानी	233–236

अनुक्रमणिका

1

डॉ0 देवेन्द्र द्वारा रचित 'जकड़ी' में निहित मानवीय संवेदना

डॉ0 राजपाल

सारांशः

डॉ. देवेन्द्र द्वारा संकलित हरियाणवी लोकगीतों के संग्रह जकड़ी हरियाणवी स्त्री जीवन के यथार्थ, उसके संघर्षों, आकांक्षाओं और भावनात्मक जटिलताओं का एक सजीव दस्तावेज है। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक टिप्पणी, सांस्कृतिक अभिलेख और मानवीय संवेदनाओं का कलात्मक रूप हैं। यह शोध पेपर संग्रह में उपलब्ध विभिन्न जकड़ियों से चुने गए उद्धरणों के आधार पर इसमें निहित मानवीय संवेदनाओंकृ जैसे पीड़ा, प्रतिरोध, प्रेम, हास्य, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक पहचानकृका गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जकड़ी हरियाणवी समाज की सामूहिक चेतना का प्रतिबिंब है, जो पारंपरिक रूढ़ियों के बीच भी नारी अस्मिता और मानवीय गरिमा के स्वर को मुखर करती है।

बीज शब्दः जकड़ी, हरियाणवी लोकगीत, मानवीय संवेदना, स्त्री विमर्श, सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक पाठ।

प्रस्तावना

हरियाणवी लोक साहित्य, विशेषकर स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले जकड़ी गीत, समाज के सामूहिक अनुभव और व्यक्तिगत संवेदनाओं के बीच सेतु का कार्य करते हैं। ये गीत निजी सुख–दुख को सामूहिक अभिव्यक्ति देते हैं और सामाजिक संरचनाओं, रिश्तों तथा संघर्षों का एक अकाट्य लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हैं। डॉ. देवेन्द्र द्वारा संकलित पुस्तक जकड़ी इसी लोकभाषी विरासत का एक महत्वपूर्ण संग्रह है। इन गीतों में निहित संवेदनाएँ केवल भावुकता नहीं, बल्कि जीवन के प्रति एक सजग, कभी–कभी व्यंग्यपूर्ण और प्रतिरोधी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करती हैं। यह शोध पेपर विभिन्न जकड़ियों से चुनी गई प्रमुख पंक्तियों के माध्यम से इन गीतों में व्यक्त मानवीय संवेदनाओं के बहुआयामी स्वरूप का विश्लेषण करेगा।

1. स्त्री जीवन का यथाथर्रू पीड़ा, प्रतिरोध और व्यवहारिकता

जकड़ी गीतों का केंद्रीय स्वर हरियाणवी स्त्री के जीवनानुभव हैं। ये गीत विवाह, ससुराल, श्रम और उत्पीड़न के यथार्थ को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत करते हैं।

एक जकड़ी में स्त्री की पीड़ा स्पष्ट हैः

सांसरे म्हैं सासड़ रोवै घर नै क्यूँ न आय गई"

क्यूँ रोवै मेरी सैस बावळी निरणाबासी काढ़ देई" 1

यह पंक्तियाँ एक आत्महत्या करने वाली स्त्री के परिप्रेक्ष्य से हैं, जो अपनी सास के रोने पर टिप्पणी करती है कि उसी सास ने भूखे पेट खेत में काम करने के लिए भेजकर उसकी निरना–बासी (भूखी–प्यासी) हालत पैदा की। यह सीधा आरोप पारंपरिक सास–बहू संबंध के क्रूर यथार्थ को उजागर करता है।

एक अन्य गीत में, स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा को उसके पति के व्यवसाय से जोड़कर देखा जाता हैः

या उस छोरे की नार जो तासौ खेलै बाणिए कै"

पिया बाणियाँ कै जाणा छोड मेरै छोरे बोली मारें सैं 2

यहाँ पत्नी पति से जुआ (ताश) छोड़ने की विनती करती है क्योंकि समाज उसे एक जुआरी की पत्नी के रूप में चिढ़ाता है। इससे स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा उसके पुरुष पर निर्भरता और उसकी भावनात्मक पीड़ा का पता चलता है।

हालाँकि, ये गीत केवल पीड़ा की ही कहानी नहीं सुनाते। इनमें एक व्यावहारिक सोच और प्रतिरोध का स्वर भी मुखर है। एक प्रसंग में, पति द्वारा पिटाई के बाद मिले प्यार पर स्त्री की प्रतिक्रिया व्यंग्यपूर्ण हैः

हे मेरै आ गया गंडा याद के ठाईं ए ठाडूं रोय पड़ी"

हे बेईमान नणंद का बीर के करकै ए लाड भळोय लेई" 3

श्बेईमानश शब्द का प्रयोग पति के उस लाड़ के प्रति एक जटिल भाव दर्शाता है जो पिटाई के बाद आता है। यह स्त्री की भावनात्मक बुद्धिमत्ता और यथार्थ को पहचानने की क्षमता को दर्शाता है।

दहेज जैसी सामाजिक बुराई पर भी करारा प्रहार हैः

मेरे पिता नै जुलम करे मेरी दो सलवार सिमाई "

नणदल माँगै टरंक खुलाई ज्यान मरण म्हैं आई 4

कम दहेज लाने वाली लड़की की सासुराल में हुई उपेक्षा और अपमान का यह वर्णन दहेज प्रथा के कलंक को बेनकाब करता है।

2. प्रेम, ममत्व और पारिवारिक संबंधों की बहुरंगी छवियाँ

जकड़ी में संबंधों का चित्रण एकरंगी नहीं है। इसमें कठोर यथार्थ के साथ–साथ प्रेम, ममत्व और रिश्तों की गर्माहट भी मिलती है।

भाई–बहन का स्नेह इन गीतों में एक सुरक्षा कवच के रूप में उभरता

है। एक बहन, अपने फौजी भाई से शिकायत करती हैरू
ष्दुराणी जिठाणी बीरा बोली मारें फौजी भाती आवैगा"
तेरा मामा रै तेरी मम्मी खातर टैरीकोट सिमावैगा" 5
भाई तुरंत उसे सांत्वना देता है
ष्बोली मत ना मारो ए छोरियो मैं सबनै ए राजी कर ज्याँगा"
सात भाई ए म्हारै एक किरसना ए सबतें ऊँची कर ज्याँगा 6

यह संवाद भाई द्वारा बहन की प्रतिष्ठा बचाने और उसे भावनात्मक सहारा देने के संकल्प को दर्शाता है।
पति–पत्नी के प्रेम का एक रूपकात्मक चित्रण इस पंक्ति में हैः
ष्ए एक फूल गुलाबी गंगा म्हें बैहंदाश फिरै सै"
हे रै गोरी दे द्यो फूल न बलमा की राड़ मिटै सै 7
पति द्वारा फूल माँगना और पत्नी द्वारा इनकार करना एक लोक–कला में ढला हुआ प्रेमालाप है।

विदाई के समय भाई–बहन के भावुक संवाद में ममत्व झलकता है
ए बीरे कै ब्होत कमाई कमाई दिन अर रैत"
ए बेबे कपड़े की मोटर भर दी बेठण नै व्हाई ज्हैज" 8

भाई द्वारा बहन को दिए गए उपहार और बहन की भावनाएँ परिवारिक बंधन की गहराई को दर्शाते हैं।

3. सामाजिक चेतना एवं व्यंग्य
जकड़ी गीत समाज के विभिन्न वर्गों और उनकी स्थितियों का चित्रण करते हुए सूक्ष्म व्यंग्य और चेतना भी प्रस्तुत करते हैं।
विभिन्न पेशों के पतियों वाली स्त्रियों की तुलना करता एक गीत सामाजिक हैसियत के प्रति चेतना दिखाता है
सकी ए मैं तो भ्याणी ए ब्याह दी बाबू जी मिले सैं भरथार"
सकी ए मैं तो बागड़ ब्याह दी हाळी मिले सैं भरथार 9
कंडक्टर, डॉक्टर, मास्टर और किसान के पत्नियों के बीच यह अंतर्द्वंद्व सामाजिक प्रतिष्ठा के ढाँचे को रेखांकित करता है।

पुरुष प्रधान समाज की दोहरी मानसिकता पर करारा व्यंग्य हैः
मेरै आ गया गंडा याद के ठाईं ए ठाडूं रोय पड़ी 10

पिटाई के बाद मिले प्यार की याद दिलाने पर स्त्री का रो पड़ना, पुरुष के व्यवहार की विसंगति पर एक मार्मिक टिप्पणी है।
आधुनिकता के प्रभाव और दिखावे की संस्कृति पर भी गहरी चोट हैः
इबकै छौ नै डोबैगा ए यो फैसन बैलबोटम का"
घराँ खाण नै दाणे कोन्या सूँट सिमा लिया कोटन का" 11
यह पंक्तियाँ फैशन के चक्कर में पड़कर अपनी जड़ों से दूर होते युवाओं और दहेज की माँग की ओर इशारा करती हैं, जो एक गहरी सामाजिक चिंता प्रकट करती हैं।

4. कृषि जीवन का मार्मिक चित्रण एवं प्रकृति से संबंध
जकड़ी गीतों में किसान और उसके परिवार के जीवन का सजीव चित्रण है, जो रोमांटिक न होकर कठिन यथार्थ से भरा है।
कृषि कार्य की दुरूहता और उससे उत्पन्न तनाव का चरम उदाहरण हैः
चाली जा बदमास रांड के बेटी थाणेदार की"
करड़ाङ ढाट्ठा" मार भाण मनै ज्यान कुवे म्हैं झोक दी 12
किसान पति की दुत्कार सुनकर स्त्री का आत्महत्या करना कृषि जीवन की क्रूरता और स्त्री के सीमित विकल्पों को दर्शाता है।

प्रकृति के खतरे भी इन गीतों में मौजूद हैंः
ष्क्यारी म्हैं नाका तोड़ लिया ए बूँबी तैं नाग फफाई"
नागण मनै मत खाइए ए मेरी ब्याही दूसरा ल्याईष्13
सिंचाई करते समय नाग के काटने की घटना किसान जीवन की अनिश्चितता और जोखिम को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है।

5. विरह, वियोग और मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ
परदेस गए पति की विरह–व्यथा इन गीतों का एक प्रमुख विषय है, जो स्त्री के मनोवैज्ञानिक तनाव को दर्शाता है।
एक स्त्री अपने पति को नौकरी पर न जाने की गुहार लगाते हुए कहती है
नौकर मतना जाइए पति ओ तेरी रो रो परी मरैगी"
म्हैंलों के म्हें चढ़े एकली या दुनिया भरम धरैगी" 14
यहाँ अकेलेपन का भय और सामाजिक कुंठा दोनों ही व्यक्त हुए हैं।

उपेक्षित पत्नी की मनरूस्थिति का मार्मिक चित्रण है

मेरी माँ नै सुपना आया ए मेरी सीलाँ उडावै काग"
तड़के नै बीरा आ ग्या ए बेबे कहो ना मन की बात" 15
माँ के स्वप्न और भाई के आगमन से शुरू होकर यह गीत उस स्त्री की मजबूरी और गोपनीय पीड़ा को दर्शाता है जो परिवार की इज्जत के लिए अपना दुख छिपाना चाहती है।

निष्कर्षः –

जकड़ी गीत हरियाणवी स्त्री के जीवनानुभवों का ऐसा सामूहिक महाकाव्य हैं, जिसमें हर संवेदना चाहे वह पीड़ा हो, प्रतिरोध हो, प्रेम हो या हास्य अपनी पूर्णता में अभिव्यक्त हुई है। ये गीत पारंपरिक लोक रूप होते हुए भी अद्भुत रूप से आधुनिक हैं क्योंकि ये स्त्री की व्यक्तिगत इच्छा, अस्मिता और सामाजिक आलोचना को स्वर देते हैं। इनमें मिथकीय आदर्शों (जैसे सीता) के बजाय व्यावहारिक जीवन की स्त्री की आवाज गूँजती है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि गीत चाहे दुख के हों या हास्य–व्यंग्य के, जकड़ियों में कथ्य को मुख्यतः यथार्थवादी दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत किया गया है।

यही यथार्थवादी दृष्टिकोण जकड़ी को हरियाणवी समाज का एक सशक्त सांस्कृतिक–सामाजिक पाठ बनाता है। ये गीत केवल अतीत की धरोहर नहीं हैं, बल्कि आज भी सामाजिक विषमताओं, लैंगिक भेदभाव और मानवीय संवेदनाओं को समझने के लिए एक प्रासंगिक दर्पण हैं। डॉ. देवेन्द्र के संकलन ने इस अनमोल विरासत को सुरक्षित करके हिंदी साहित्यिक शोध को एक समृद्ध आधार प्रदान किया है।

संदर्भ सूची

1. कुमार देवेन्द्र, जकड़ी सं. 75, पृष्ठ संख्या 12, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 2015
2. वहीं, पृष्ठ संख्या 15
3. वहीं, पृष्ठ संख्या 28
4. वहीं, पृष्ठ संख्या 29
5. वहीं, पृष्ठ संख्या 50
6. वहीं, पृष्ठ संख्या 41
7. वहीं, पृष्ठ संख्या 85
8. वहीं, पृष्ठ संख्या 37
9. वहीं, पृष्ठ संख्या 32
10. वहीं, पृष्ठ संख्या 28
11. वहीं, पृष्ठ संख्या 213, 214
12. वहीं, पृष्ठ संख्या 37
13. वहीं, पृष्ठ संख्या 41
14. वहीं, पृष्ठ संख्या 190
15. वहीं, पृष्ठ संख्या 85

डॉ0 राजपाल,

हिंदी विभाग,

गुरु गोरखनाथ जी,

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हिसार ।

2

"ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में दलित विमर्श का सामाजिक यथार्थ"

सुषमा कुमारी

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के समकालीन परिदृश्य में दलित विमर्श एक सशक्त, संघर्षशील और वैचारिक आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया है। यह विमर्श केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति तक सीमित न रहकर सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की माँग को स्वर देता है। सदियों से भारतीय समाज में दलित वर्ग सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण का शिकार रहा है। मुख्यधारा के साहित्य में लंबे समय तक दलित जीवन की वास्तविक पीड़ा, संघर्ष और चेतना को उपेक्षित किया गया। ऐसे में दलित साहित्य ने स्वयं अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति देकर साहित्य को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

दलित विमर्श का मूल उद्देश्य केवल पीड़ा का वर्णन करना नहीं है, बल्कि जाति–आधारित व्यवस्था का प्रतिरोध, सामाजिक अन्याय का पर्दाफाश और दलित अस्मिता की स्थापना करना है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे हिंदी दलित साहित्य के उन प्रमुख हस्ताक्षरों में से हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान कर दलित जीवन की कठोर सच्चाइयों को सामने रखा।ओमप्रकाश वाल्मीकि का गद्य साहित्य,विशेषतः उनकी आत्मकथा 'जूठन' और कहानियाँ,दलित समाज के यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उनके लेखन में दलित जीवन की गरीबी, अपमान, छुआछूत, श्रम की असमानता और सामाजिक बहिष्कार की गहरी पीड़ा दिखाई देती है। साथ ही, उनके साहित्य में केवल करुणा नहीं, बल्कि प्रतिरोध, चेतना और आत्मसम्मान की दृढ़ आकांक्षा भी स्पष्ट रूप से उभरती है।यह शोध–पत्र ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में निहित दलित विमर्श का सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार वाल्मीकि ने अपने गद्य लेखन के माध्यम से दलित जीवन की वास्तविक स्थितियों को उजागर किया और हिंदी साहित्य में दलित चेतना को एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान किया।

दलित विमर्श, अवधारणा और विकास–

दलित' शब्द का अर्थ है, दबा हुआ, कुचला हुआ, शोषित। सामाजिक संरचना के संदर्भ में यह शब्द उन समुदायों के लिए प्रयुक्त होता है, जिन्हें भारतीय वर्ण–व्यवस्था और जाति–आधारित सामाजिक ढाँचे में सदियों तक हाशिए पर रखा गया। दलित विमर्श वस्तुतः उसी शोषण, उत्पीड़न और अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध चेतना का स्वर है, जिसने मनुष्य को मनुष्य से अलग कर दिया।दलित विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक संघर्ष का समन्वित रूप है। इसका मूल उद्देश्य सामाजिक समानता, आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा की पुनःस्थापना है। यह विमर्श उन अनुभवों को अभिव्यक्ति देता है, जिन्हें पारंपरिक साहित्य ने या तो नजरअंदाज किया या विकृत रूप में प्रस्तुत किया।

भारतीय समाज में दलितों की स्थिति ऐतिहासिक रूप से दयनीय रही है। धार्मिक ग्रंथों और सामाजिक परंपराओं ने जातिगत असमानता को वैधता प्रदान की। अस्पृश्यता, श्रम का शोषण, शिक्षा से वंचित करना और सामाजिक बहिष्कार दलित जीवन की स्थायी सच्चाइयाँ बन गईं।आधुनिक काल में ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले और विशेष रूप से डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित चेतना को वैचारिक आधार प्रदान किया। अंबेडकर का यह कथन,**"शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो"** दलित विमर्श का मूल मंत्र बन गया।इसी चेतना ने साहित्य को भी प्रभावित किया और दलित साहित्य का उदय हुआ, जिसमें स्वयं दलित लेखकों ने अपने जीवन–अनुभवों को लेखन का आधार बनाया।

हिंदी साहित्य में लंबे समय तक दलित जीवन को सहानुभूति या करुणा की दृष्टि से देखा गया, परंतु स्वानुभूति का अभाव रहा। प्रेमचंद जैसे यथार्थवादी लेखकों ने सामाजिक विषमता को उठाया, किंतु दलित जीवन की आंतरिक पीड़ा और प्रतिरोध की चेतना स्पष्ट रूप से उभर नहीं पाई।1970 के दशक के बाद हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक सशक्त धारा के रूप में उभरा। इसमें आत्मकथाएँ, कहानियाँ, कविताएँ और आलोचनात्मक लेखन शामिल हैं। इस दौर में दलित लेखक केवल पीड़ा का वर्णन नहीं करते, बल्कि सामाजिक व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हैं।

दलित विमर्श की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं,स्वानुभूति की प्रामाणिकता,जाति–आधारित शोषण का प्रत्यक्ष चित्रण,आक्रोश और प्रतिरोध की चेतना,आत्मसम्मान और अस्मिता की स्थापना,ब्राह्मणवादी और सामंती मूल्यों का विरोध,साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानना,दलित साहित्य सौंदर्यबोध की पारंपरिक अवधारणा को अस्वीकार करता है और जीवन की कठोर सच्चाइयों को प्राथमिकता देता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का लेखन दलित विमर्श की इसी परंपरा में आता है, किंतु उनकी विशेषता यह है कि वे अपने गद्य साहित्य में सामाजिक यथार्थ को अत्यंत सजीव और मार्मिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनका लेखन अनुभवजन्य है, वैचारिक है और

परिवर्तनकामी भी।,वाल्मीकि के अनुसार दलित साहित्यकृ"सिर्फ साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप है।"उनका यह दृष्टिकोण उन्हें दलित विमर्श का एक महत्वपूर्ण स्तंभ बनाता है।

दलित विमर्श का संबंध प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक यथार्थ से है। यह साहित्य समाज की उस संरचना को उजागर करता है, जहाँ मनुष्य की पहचान उसकी जाति से निर्धारित होती है। वाल्मीकि जैसे लेखक इस यथार्थ को न केवल दिखाते हैं, बल्कि उसके विरुद्ध वैचारिक संघर्ष भी प्रस्तुत करते हैं।इस दृष्टि से दलित विमर्श साहित्य को समाज–परिवर्तन का माध्यम बनाता है और पाठक को संवेदनशील तथा जागरूक करता है।

इस शोध–पत्र में दलित विमर्श की अवधारणा, उसका ऐतिहासिक विकास और हिंदी साहित्य में उसकी स्थिति को स्पष्ट किया गया है। यह अध्याय आगे आने वाले विश्लेषण के लिए वैचारिक आधार तैयार करता है, जिसके अंतर्गत ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य का सामाजिक मूल्यांकन किया जाएगा।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जीवन, अनुभव और साहित्यिक चेतना–

ओमप्रकाश वाल्मीकि (1949 से 2013) हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद के बरला गाँव में एक दलित (चूहड़ा) समुदाय में हुआ। उनका बचपन और किशोरावस्था सामाजिक अपमान, आर्थिक अभाव और जातिगत भेदभाव के बीच बीती। ये अनुभव उनके साहित्य की मूल चेतना बने।वाल्मीकि का जीवन स्वयं एक संघर्ष–कथा है। शिक्षा प्राप्त करने के दौरान उन्हें विद्यालयों में अपमान, भेदभाव और मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। यही अनुभव आगे चलकर उनकी आत्मकथा 'जूठन' और अन्य गद्य रचनाओं में सामाजिक यथार्थ के रूप में अभिव्यक्त हुए।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका अनुभवजन्य यथार्थ है। उनका लेखन कल्पनाप्रधान नहीं, बल्कि भोगे हुए यथार्थ का साहित्यिक रूपांतरण है। दलित साहित्य की परंपरा में यह स्वानुभूति अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।वाल्मीकि स्वयं स्वीकार करते हैं किकृ"जो जिया है, वही लिखा है।"उनके लिए साहित्य मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का हथियार है। यही कारण है कि उनके गद्य साहित्य में कृत्रिमता नहीं, बल्कि तीखापन और सच्चाई दिखाई देती है।

'जूठन' हिंदी साहित्य की सबसे प्रभावशाली दलित आत्मकथाओं में से एक है। यह केवल लेखक की व्यक्तिगत जीवन–कथा नहीं, बल्कि संपूर्ण दलित समाज के सामाजिक इतिहास का दस्तावेज है। इसमें बाल्यावस्था से लेकर वयस्क जीवन तक के अनुभवों के माध्यम से जातिगत उत्पीड़न की गहरी तस्वीर प्रस्तुत की गई है।'जूठन' में विद्यालय, गाँव, समाज और परिवारकृसभी स्तरों पर दलित जीवन की त्रासदी उजागर होती है। भोजन की जूठन, अपमानजनक श्रम, सामाजिक बहिष्कार और आत्मसम्मान की लड़ाई ये सभी तत्व दलित यथार्थ को सजीव बनाते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ भी दलित विमर्श का सशक्त माध्यम हैं। उनकी कहानियों में दलित पात्र सहानुभूति के पात्र नहीं, बल्कि संघर्षशील मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। वे सामाजिक अन्याय को स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसका प्रतिरोध करते हैं।उनकी कहानियों में जातिगत हिंसा,सामाजिक अपमान, आर्थिक शोषण,प्रतिरोध की चेतना,स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वाल्मीकि की कहानियाँ दलित समाज की सामूहिक पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं।

वाल्मीकि का गद्य साहित्य केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि वैचारिक रूप से सशक्त है। उनके निबंधों और आलोचनात्मक लेखन में ब्राह्मणवादी सोच और जाति–आधारित व्यवस्था को अभिव्यक्त करती है।वे दलित साहित्य को एक वैचारिक आंदोलन मानते हैं और साहित्यकार की सामाजिक जिम्मेदारी पर बल देते हैं। उनका मानना है कि साहित्य तब तक सार्थक नहीं हो सकता, जब तक वह समाज की विसंगतियों को चुनौती न दे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की दलित चेतना में तीन प्रमुख तत्व दिखाई देते हैं,पीड़ा की स्वीकृति नहीं, प्रतिरोध की चेतना,आत्मसम्मान और अस्मिता की खोज सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा ,उनकी चेतना करुणा पर नहीं, बल्कि संघर्ष और अधिकार पर आधारित है। यही चेतना उन्हें समकालीन दलित लेखकों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

हिंदी दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने दलित साहित्य को केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि वैचारिक और सामाजिक स्तर पर भी समृद्ध किया। उनका गद्य साहित्य हिंदी साहित्य की मुख्यधारा को नई दृष्टि प्रदान करता है।वे दलित विमर्श को केवल साहित्यिक बहस नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप के रूप में स्थापित करते हैं।

इस शोध–पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन, उनके अनुभवों और साहित्यिक चेतना का विश्लेषण किया गया है। यह स्पष्ट होता है कि उनका गद्य साहित्य व्यक्तिगत पीड़ा से आगे बढ़कर सामाजिक यथार्थ और प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति बनता है। यही चेतना आगे आने वाले अध्यायों में उनके गद्य साहित्य के विश्लेषण का आधार बनेगी।

'जूठन' में दलित जीवन का सामाजिक यथार्थ–

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' केवल एक व्यक्ति की जीवन–कथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत व्यवस्था और दलित जीवन की त्रासदी का सामाजिक दस्तावेज है। 'जूठन' शब्द स्वयं दलित जीवन की स्थिति का प्रतीक है ऐसा जीवन जो दूसरों की बची–खुची वस्तुओं पर निर्भर रहने को विवश है।

इस आत्मकथा में लेखक ने अपने बचपन, शिक्षा, सामाजिक अनुभवों और मानसिक संघर्षों के माध्यम से दलित समाज की सामूहिक पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। यहाँ व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक यथार्थ में परिवर्तित हो जाते हैं।

'जूठन' में वर्णित बचपन दलित जीवन की सबसे करुण तस्वीर प्रस्तुत करता है। लेखक का बचपन भूख, अभाव और अपमान के बीच बीतता है। विद्यालय में पढ़ते हुए उन्हें जाति के कारण अलग बैठाया जाता है और अपमानजनक व्यवहार सहना पड़ता है।शिक्षक द्वारा सफाई करवाना, सहपाठियों से दूरी बनाकर रखना और जातिसूचक शब्दों का प्रयोग, ये सभी अनुभव दलित बच्चों के शैक्षणिक शोषण को उजागर करते हैं। शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में भी जातिगत भेदभाव की उपस्थिति सामाजिक व्यवस्था की क्रूरता को दर्शाती है।

'जूठन' में भोजन केवल भूख मिटाने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक अपमान का प्रतीक बन जाता है। ऊँची जातियों के घरों से मिलने वाली जूठन, दलितों की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करती है। लेखक के परिवार को दूसरों की बची हुई रोटियाँ और भोजन स्वीकार करना पड़ता है।यह स्थिति केवल आर्थिक गरीबी नहीं, बल्कि मानसिक दासता और सामाजिक अपमान को दर्शाती है। वाल्मीकि इस अनुभव को अत्यंत मार्मिक और सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक दलित जीवन की पीड़ा को प्रत्यक्ष अनुभव करता है।

दलित जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष श्रम है, किंतु यह श्रम सम्मानजनक नहीं, बल्कि थोपे गए अपमानजनक कार्यों से जुड़ा होता है। 'जूठन' में वर्णित है कि किस प्रकार दलितों से सफाई, चमड़ा–कार्य और अन्य निम्न समझे जाने वाले कार्य कराए जाते हैं।यह श्रम शोषण केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और मानसिक स्तर पर भी होता है। श्रम करने के बावजूद दलित समाज को सम्मान नहीं मिलता, बल्कि उन्हें अपमान और तिरस्कार झेलना पड़ता है।

'जूठन' में शिक्षा को मुक्ति का साधन माना गया है, किंतु यह मार्ग अत्यंत कठिन और संघर्ष पूर्ण है। लेखक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए न केवल आर्थिक कठिनाइयों, बल्कि सामाजिक विरोध और मानसिक उत्पीड़न का भी सामना करना पड़ता है।शिक्षा के माध्यम से लेखक में आत्मचेतना और प्रतिरोध की भावना विकसित होती है। यह शिक्षा दलित विमर्श का केंद्रीय तत्व बन जाती है, जो सामाजिक परिवर्तन की संभावना को जन्म देती है।

'जूठन' में दलित स्त्री जीवन की पीड़ा भी उभरकर सामने आती है। दलित स्त्रियाँ दोहरे शोषण,जाति और लिंग,का शिकार होती हैं। वे परिवार, समाज और कार्यस्थल,हर जगह संघर्ष करती हैं।लेखक की माँ और अन्य स्त्री पात्र दलित स्त्री की सहनशीलता, परिश्रम और संघर्ष का प्रतीक बनकर उभरती हैं। यह पक्ष 'जूठन' को और अधिक सामाजिक गहराई प्रदान करता है।

'जूठन' केवल पीड़ा की कथा नहीं है, बल्कि यह प्रतिरोध और आत्मसम्मान की जागृति का भी दस्तावेज है। जैसे–जैसे लेखक चेतन होता है, वैसे–वैसे वह जातिगत अन्याय को स्वीकार करने से इंकार करता है।यह प्रतिरोध व्यक्तिगत स्तर से शुरू होकर सामाजिक चेतना में परिवर्तित होता है। दलित विमर्श की यही चेतना 'जूठन' को एक परिवर्तनकामी ग्रंथ बनाती है।

इस शोध–पत्र में 'जूठन' के माध्यम से दलित जीवन के सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण किया गया है। यह स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि की आत्मकथा दलित समाज के शोषण, अपमान, संघर्ष और प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति है। 'जूठन' दलित विमर्श को साहित्यिक ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी समृद्ध करती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में जातिगत उत्पीड़न और प्रतिरोध–

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहानी–साहित्य दलित जीवन के सामाजिक यथार्थ को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है। उनकी कहानियाँ केवल व्यक्तिगत पीड़ा का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों को उजागर करती हैं। इन कहानियों में दलित पात्र निरीह या करुणा के पात्र नहीं, बल्कि चेतन और संघर्षशील मनुष्य के रूप में उपस्थित हैं।वाल्मीकि की

कहानियों में जाति–आधारित भेदभाव केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथा का केंद्रीय तत्व होता है, जो कथा की संरचना और संदेश दोनों को निर्धारित करता है।

वाल्मीकि की कहानियों में जातिगत उत्पीड़न के अनेक रूप सामने आते हैं,सामाजिक बहिष्कार,अपमानजनक संबोधन,श्रम का शोषण,हिंसा और दमन,दलित पात्रों को उनके श्रम के बावजूद सम्मान नहीं मिलता। वे समाज के हाशिये पर धकेल दिए जाते हैं और उनकी मानवीय पहचान को नकार दिया जाता है। यह उत्पीड़न केवल ऊँची जातियों द्वारा ही नहीं, बल्कि सामाजिक संस्थाओं और परंपराओं द्वारा भी संचालित होता है।

वाल्मीकि की कहानियों में जाति और सत्ता का घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। ऊँची जातियाँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सत्ता पर काबिज रहती हैं और इसी सत्ता के माध्यम से दलितों को नियंत्रित करती हैं।कहानियों में यह स्पष्ट होता है कि जब दलित अपने अधिकारों की माँग करते हैं, तब उनके विरुद्ध हिंसा का प्रयोग किया जाता है। यह हिंसा केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक भी होती है।

वाल्मीकि की कहानियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता प्रतिरोध की चेतना है। दलित पात्र शोषण को मौन रूप से स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसका विरोध करते हैं। यह प्रतिरोध कभी खुला और मुखर होता है, तो कभी शांत और वैचारिक।यह प्रतिरोध दलित अस्मिता की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। लेखक यह संदेश देता है कि सामाजिक परिवर्तन बिना संघर्ष के संभव नहीं है।

वाल्मीकि की कहानियों में दलित चेतना केवल व्यक्तिगत स्तर पर सीमित नहीं रहती, बल्कि सामूहिक रूप धारण करती है। दलित समाज अपने साझा अनुभवों के माध्यम से एकजुट होता है और शोषण के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध की ओर बढ़ता है।यह सामूहिक चेतना दलित विमर्श को सामाजिक आंदोलन से जोड़ती है और साहित्य को परिवर्तन का माध्यम बनाती है।

वाल्मीकि की कहानियों की भाषा सीधी, सरल और प्रभावशाली है। वे अलंकारिक भाषा के स्थान पर अनुभव की सच्ची अभिव्यक्ति को महत्व देते हैं। उनकी भाषा में आक्रोश, पीड़ा और प्रतिरोधकृतीनों तत्व विद्यमान हैं।शिल्प की दृष्टि से उनकी कहानियाँ यथार्थवादी हैं और सामाजिक सच्चाइयों को बिना किसी आवरण के प्रस्तुत करती हैं।

वाल्मीकि की कहानियाँ दलित विमर्श को केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि वैचारिक रूप से भी समृद्ध करती हैं। वे दलित जीवन की समस्याओं को उजागर करने के साथ–साथ समाधान की दिशा में सोचने को प्रेरित करती हैं।उनका कहानी–साहित्य हिंदी दलित साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करता है।

इस शोध–पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में निहित जातिगत उत्पीड़न और प्रतिरोध की चेतना का विश्लेषण किया गया है। यह स्पष्ट होता है कि उनकी कहानियाँ दलित समाज के संघर्ष, चेतना और अस्मिता की सशक्त अभिव्यक्ति हैं।

गद्य साहित्य में शिक्षा, श्रम और आत्मसम्मान की चेतना–

ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में शिक्षा को दलित समाज की मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन माना गया है। उनके लेखन में शिक्षा केवल औपचारिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि वह चेतना, आत्मबोध और प्रतिरोध की प्रक्रिया है। वाल्मीकि के अनुसार शिक्षा दलित समाज को अंधविश्वास, दासता और हीनता–बोध से मुक्त करने का माध्यम बनती है।

'जूठन' में शिक्षा के लिए किया गया संघर्ष यह स्पष्ट करता है कि दलितों के लिए शिक्षा प्राप्त करना केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक चुनौती है। शिक्षा के मार्ग में सामाजिक विरोध, आर्थिक अभाव और मानसिक उत्पीड़न निरंतर उपस्थित रहते हैं।

वाल्मीकि के साहित्य में शिक्षा के माध्यम से दलित चेतना का विकास होता है। जैसे–जैसे व्यक्ति शिक्षित होता है, वैसे–वैसे वह अपनी सामाजिक स्थिति पर प्रश्न उठाने लगता है। यह प्रश्नवाचक दृष्टि दलित विमर्श का आधार बनती है।

शिक्षा दलित पात्रों को केवल नौकरी या सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं देती, बल्कि उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाती है। यही चेतना आगे चलकर सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा में बदलती है।

दलित जीवन में श्रम केंद्रीय भूमिका निभाता है, किंतु यह श्रम ऐतिहासिक रूप से अपमान और शोषण से जुड़ा रहा है। वाल्मीकि के गद्य साहित्य में श्रम की यह विडंबना स्पष्ट रूप से उभरती है। दलित समाज का श्रम समाज के लिए अनिवार्य है, फिर भी उसे सम्मान नहीं मिलता।वाल्मीकि श्रम को केवल मजबूरी नहीं, बल्कि

गरिमा और आत्मसम्मान से जोड़ने का प्रयास करते हैं। वे श्रम की उस व्यवस्था की आलोचना करते हैं, जो श्रमिक को नीचा और शोषित बनाए रखती है।

वाल्मीकि के साहित्य में यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय समाज में श्रम और जाति का गहरा संबंध है। कुछ कार्यों को जाति–विशेष से जोड़ दिया गया है, जिससे दलित समाज सदैव अपमानजनक कार्यों में फँसा रहता है।यह व्यवस्था सामाजिक गतिशीलता को रोकती है और दलित समाज को हाशिये पर बनाए रखती है। वाल्मीकि इस संरचना का तीखा विरोध करते हैं और श्रम की नई सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

वाल्मीकि के गद्य साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व आत्मसम्मान की चेतना है। उनका लेखन दलित समाज को दया या करुणा के पात्र के रूप में नहीं, बल्कि अधिकार–संपन्न मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करता है।दलित पात्र अपने अपमान को पहचानते हैं और उसे स्वीकार करने से इंकार करते हैं। यह आत्मसम्मान दलित विमर्श को सशक्त बनाता है और सामाजिक परिवर्तन की नींव रखता है।

वाल्मीकि के साहित्य में शिक्षा, श्रम और आत्मसम्मान तीनों तत्व आपस में जुड़े हुए हैं। शिक्षा चेतना देती है, श्रम संघर्ष का अनुभव कराता है और आत्मसम्मान व्यक्ति को प्रतिरोध के लिए प्रेरित करता है।यह त्रिकोणीय संबंध दलित विमर्श की वैचारिक संरचना को स्पष्ट करता है और वाल्मीकि के गद्य साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाता है।

इस शोध–पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में शिक्षा, श्रम और आत्मसम्मान दलित चेतना के केंद्रीय तत्व हैं। ये तत्व दलित समाज को शोषण से मुक्ति और सम्मानपूर्ण जीवन की दिशा में अग्रसर करते हैं।

दलित अस्मिता और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति–

दलित अस्मिता का अर्थ केवल जातिगत पहचान नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, आत्मसम्मान और अधिकार–बोध से जुड़ी चेतना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में दलित अस्मिता पीड़ित पहचान से आगे बढ़कर संघर्षशील और परिवर्तनकामी पहचान का रूप धारण करती है।वाल्मीकि का साहित्य दलित को निरीह, मौन सहनशील प्राणी के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसे एक सजग, प्रश्नकर्ता और प्रतिरोध करने वाले मनुष्य के रूप में सामने लाता है।

वाल्मीकि के साहित्य में अस्मिता–बोध का विकास क्रमिक रूप से दिखाई देता है। प्रारंभ में दलित पात्र सामाजिक अपमान को नियति मानकर स्वीकार करते हैं, किंतु शिक्षा और अनुभव के माध्यम से उनमें चेतना विकसित होती है।यह चेतना उन्हें यह समझने में सहायता करती है कि अपमान उनकी नियति नहींजाति–आधारित व्यवस्था अन्यायपूर्ण है प्रतिरोध ही मुक्ति का मार्ग है यही अस्मिता–बोध दलित विमर्श की वैचारिक नींव बनता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में प्रतिरोध के विभिन्न स्वरूप दिखाई देते हैं मौन प्रतिरोध अपमान को स्वीकार न करना वैचारिक प्रतिरोध प्रश्न उठाना, असहमति दर्ज करनासामाजिक प्रतिरोध व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा होना साहित्यिक प्रतिरोध लेखन को संघर्ष का माध्यम बनाना यह प्रतिरोध हिंसात्मक नहीं, बल्कि चेतन और वैचारिक है, जो सामाजिक परिवर्तन की दिशा में अग्रसर करता है।

वाल्मीकि के लिए साहित्य केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप का औजार है। उनका गद्य साहित्य शोषणकारी व्यवस्था को उजागर करता है और पाठक को वैचारिक रूप से झकझोरता है।वे साहित्य को दलित समाज की आवाज बनाते हैं और उसे सामाजिक विमर्श के केंद्र में लाते हैं। इस दृष्टि से उनका लेखन दलित अस्मिता का सशक्त घोषणापत्र बन जाता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित विमर्श को सामाजिक यथार्थ की प्रामाणिकता स्वानुभूति की शक्ति वैचारिक स्पष्टता प्रतिरोध की चेतना प्रदान की। उनका गद्य साहित्य दलित अस्मिता को मजबूती देता है और हिंदी साहित्य को नई दृष्टि प्रदान करता है। इस शोध–पत्र में यह स्पष्ट हुआ कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के गद्य साहित्य में दलित अस्मिता और प्रतिरोध एक केंद्रीय तत्व है। उनका साहित्य दलित समाज को आत्मसम्मान, चेतना और संघर्ष का मार्ग दिखाता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि का गद्य साहित्य हिंदी दलित विमर्श का एक सशक्त

और प्रामाणिक प्रतिनिधि है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' और कहानी–साहित्य दलित जीवन के सामाजिक यथार्थ को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत करते हैं।वाल्मीकि का साहित्यकृजातिगत शोषण की अमानवीयता को उजागर करता है,शिक्षा को मुक्ति का साधन मानता है,श्रम को गरिमा से जोड़ता है,आत्मसम्मान और प्रतिरोध की चेतना विकसित करता है।उनका गद्य साहित्य केवल अतीत की पीड़ा का वर्णन नहीं, बल्कि भविष्य के सामाजिक परिवर्तन की दिशा भी संकेतित करता है। इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का लेखन दलित विमर्श को वैचारिक गहराई और सामाजिक प्रासंगिकता प्रदान करता है।अतः यह कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि का गद्य साहित्य हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध करता है, बल्कि उसे सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के पक्ष में खड़ा करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन. नई दिल्लीरू राधाकृष्ण प्रकाशन।

वाल्मीकि, ओमप्रकाश. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. नई दिल्ली।

अंबेडकर, भीमराव. जाति का उच्छेद.

फुले, ज्योतिबा. गुलामगिरी.

कुमार, राजेंद्र. हिंदी दलित साहित्य विमर्श और दृष्टि.

लिंबाले,शरण कुमार. दलित आत्मकथा रू अनुभव और अभिव्यक्ति.

डॉ.धर्मवीर. दलित विमर्श और हिंदी साहित्य.

सुषमा कुमारी

शोधार्थी हिंदी विभाग

नीलांबर पीतांबर विश्वविद्यालय

मेदिनीनगर, पलामू, झारखंड

email- sushmak030@gmail.com

7992403592

3

कुंडूख लोक गीतों में जीवन, प्रकृति और सामूहिक चेतना

सरिता मिंज

शोध सारांश–

कुंडूख (उराँव) लोक गीत आदिवासी समाज के जीवन–बोध, प्रकृति–चेतना और सामूहिक सांस्कृतिक अनुभूति के सशक्त अभिव्यक्त रूप हैं। ये गीत दैनिक जीवन के श्रम, कृषि, ऋतु–चक्र, जन्मदृविवाहदृमृत्यु जैसे संस्कारों तथा सामाजिक संबंधों को सहज और संगीतमय भाषा में रूपायित करते हैं। कुंडूख लोक गीतों में जीवन केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं, बल्कि समुदाय के साथ जुड़ा हुआ सामूहिक अस्तित्व है, जहाँ व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्रकृति इन गीतों की आत्मा है। जंगल, पहाड़, नदी, वर्षा, पशु–पक्षी और धरती आयो के प्रति गहरा लगाव गीतों के कथ्य और प्रतीकों में निरंतर उपस्थित रहता है। प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदायिनी और सहचर के रूप में देखा गया है, जो आदिवासी पर्यावरणीय दृष्टिकोण को उजागर करता है। सामूहिक चेतना कुंडूख लोक गीतों का केंद्रीय तत्व है। अखड़ा, जतरा, पर्वदृत्योहार और सामूहिक नृत्य–गान के माध्यम से ये गीत सामाजिक एकता, सहभागिता और साझा स्मृति को सुदृढ़ करते हैं। इनमें प्रेम, उल्लास, दुःख, संघर्ष और आशा की भावनाएँ सामूहिक रूप में व्यक्त होती हैं, जिससे समुदाय की पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता बनी रहती है।

यह शोध कुंडूख लोक गीतों के माध्यम से आदिवासी समाज की जीवन–दृष्टि, प्रकृति–संवेदनशीलता और सामूहिक चेतना को समझने का प्रयास करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि ये गीत केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक मूल्यों और पर्यावरणीय संतुलन के संरक्षक भी हैं।

कुंजी शब्द –रूकुंडूख लोक गीत, जीवन–बोध, प्रकृति–चेतना, सामूहिक चेतना, आदिवासी संस्कृति

भूमिका – :

लोकगीत की परिभाषा देते हुए डॉ. सत्येन्द्र का मत है कि "जो गीत लोक–मानस की सहज, सामूहिक और भावात्मक अभिव्यक्ति को रूपायित करता है, अथवा जिसमें लोक–मानस का स्पष्ट अथवा अप्रत्यक्ष आभास मिलता है, वह लोकगीत की श्रेणी में आता है।"

डॉ. सत्येंद्र द्वारा दी गई लोकगीत की परिभाषा लोक साहित्य की मूल आत्मा को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है। उनके अनुसार, "जो गीत लोक–मानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोक–मानस का आभास भी हो, वह लोकगीत के अंतर्गत आएगा।" इस परिभाषा के आलोक में लोकगीत की भूमिका केवल एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तक सीमित न रहकर समाज, इतिहास और सामूहिक चेतना के व्यापक आयामों को समेट लेती है।

लोकगीत मूलतः लोक–मानस की सहज, स्वाभाविक और सामूहिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। इनमें किसी एक व्यक्ति का निजी भाव नहीं, बल्कि पूरे समुदाय का साझा अनुभव निहित रहता है। जन्म, विवाह, पर्व–त्योहार, कृषि, श्रम, प्रेम, विरह, प्रकृति, संघर्ष और आस्था जैसे जीवन के विविध पक्ष लोकगीतों में स्वाभाविक रूप से प्रतिबिंबित होते हैं। इस दृष्टि से लोकगीत लोकजीवन का जीवंत दस्तावेज हैं, जो लिखित इतिहास से पूर्व भी समाज की स्मृति को सुरक्षित रखते आए हैं। डॉ. सत्येंद्र की परिभाषा यह संकेत करती है कि लोकगीत के लिए औपचारिक रचना–शैली या शास्त्रीयता आवश्यक नहीं है। यदि किसी गीत में लोक की अनुभूति, संवेदना और दृष्टिकोण का आभास मिलता है, तो वह लोकगीत की श्रेणी में आता है। इसी कारण लोकगीत समय के साथ परिवर्तित होते हुए भी अपनी मूल चेतना को बनाए रखते हैं। इनमें पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचरण की क्षमता होती है, जिससे लोकसंस्कृति की निरंतरता बनी रहती है।

लोकगीतों की भूमिका सामाजिक समरसता और सामूहिकता के निर्माण में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामूहिक गायन के माध्यम से ये गीत समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़ते हैं और सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करते हैं। इसके अतिरिक्त, लोकगीतों में निहित प्रतीक, बिंब और रूपक समाज की वैचारिक संरचना को समझने में सहायक होते हैं। ये गीत लोकदर्शन, लोकनीति और लोक आस्था के संवाहक हैं। समकालीन संदर्भ में लोकगीतों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव में जब स्थानीय संस्कृतियाँ संकटग्रस्त होती जा रही हैं, तब लोकगीत सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण का सशक्त माध्यम बनते हैं। इस प्रकार डॉ. सत्येंद्र की परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि लोकजीवन की आत्मा, सामाजिक चेतना का प्रतिबिंब और सांस्कृतिक विरासत के संवाहक हैं। वहीं उराँव आदिवासी समूह भारत के प्राचीनतम जनजातीय समुदायों में से एक है, जिसकी सामाजिक, भाषिक एवं सांस्कृतिक पहचान अत्यंत समृद्ध और विशिष्ट रही है। उराँव स्वयं को कुडुख़ कहते हैं तथा इनकी मातृभाषा भी 'कुडुख़' है, जो द्रविड़ भाषा परिवार से संबद्ध मानी जाती है। यह तथ्य उराँव समुदाय की प्राचीनता और उनकी

सांस्कृतिक निरंतरता को रेखांकित करता है।

भारतवर्ष के मूल निवासियों में उराँवों का स्थान महत्वपूर्ण है और इनका इतिहास आदिकाल से भारतीय जनजातीय जीवन की संरचना को समझने में सहायक है।

भौगोलिक दृष्टि से झारखंड उराँवों का प्रमुख एवं मूल निवास क्षेत्र माना जाता है, किंतु समय के साथ इनका विस्तार बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा असम जैसे राज्यों में भी हुआ है। भारत के बाहर नेपाल, भूटान, म्यांमार (बर्मा) और अंडमान–निकोबार द्वीप समूह में भी उराँव समुदाय के विभिन्न समूह पाए जाते हैं। भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में इन्हें किसान, कोड़ा, धांगर आदि नामों से जाना जाता है। नामों की इस बहुलता के कारण जनसंख्या का सटीक आकलन कठिन हो जाता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव प्रशासनिक पहचान, सामाजिक अधिकारों और विकास योजनाओं पर पड़ता है। ऐतिहासिक परंपराओं के अनुसार उराँवों का प्रवर्धन कोंकण क्षेत्र से प्रारंभ होकर नर्मदा घाटी के माध्यम से आगे बढ़ता है, जिसे कुछ विद्वान सिंधु–हड़प्पा सभ्यता से जोड़कर देखते हैं। आर्यों के आगमन और उनके प्रभाव के फलस्वरूप उराँव समुदाय का विस्थापन रोहतासगढ़ की ओर हुआ, जहाँ उन्होंने एक संगठित राजनीतिक सत्ता स्थापित की। बाद में ऐतिहासिक परिस्थितियों के चलते वे छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र में आए, जहाँ पहले से मुण्डा समुदाय का प्रभुत्व था। मुण्डाओं द्वारा दिए गए आश्रय के पश्चात उराँवों ने जंगलों को साफ कर गाँव बसाए और कृषि को अपनी मुख्य जीविका बनाया। सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से उराँव समुदाय का संगठन सुदृढ़ रहा है। इनकी पारंपरिक प्रशासनिक व्यवस्था 'पड़हा' के रूप में विकसित हुई, जो सामाजिक नियंत्रण, न्याय और सामूहिक निर्णय की महत्वपूर्ण संस्था रही है। समग्र रूप से उराँव आदिवासी समूह का अध्ययन न केवल झारखंड बल्कि भारतीय जनजातीय इतिहास, संस्कृति और भाषा–विज्ञान को समझने के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

उराँव आदिवासी समुदाय का लोकगीत उसकी जीवन–प्रणाली, प्राकृतिक परिवेश और सामूहिक चेतना का सशक्त माध्यम है। उराँव समाज में लोकगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक स्मृति, सांस्कृतिक मूल्यों और सामूहिक अनुभवों की अभिव्यक्ति का जीवंत रूप है। इन गीतों के माध्यम से समुदाय अपने दैनिक जीवन, श्रम, संघर्ष, आस्था और आनंद को पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखता है। उराँव लोकगीतों में जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रतिबिंबित होता है। कृषि उराँवों की मुख्य जीविका है, अतः बीज बोने से लेकर फसल कटाई तक के विभिन्न चरणों से जुड़े गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में श्रम की थकान के साथ–साथ सामूहिक श्रम का उत्साह भी दिखाई देता है। विवाह, जन्म, मृत्यु और अन्य संस्कारों से संबंधित गीत सामाजिक संरचना और पारिवारिक संबंधों को उजागर करते हैं। इस प्रकार लोकगीत उराँव जीवन के संस्कारात्मक और भावनात्मक पक्ष को सहेज कर रखते हैं।

प्रकृति उराँव लोकगीतों की आत्मा है। जंगल, पहाड़, नदियाँ, वर्षा, पशु–पक्षी और ऋतुएँ इन गीतों में प्रतीकों और बिंबों के रूप में उपस्थित रहती हैं। प्रकृति के साथ उराँवों का संबंध उपभोग का नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व का है, और यह भाव लोकगीतों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है। वर्षा के स्वागत में गाए जाने वाले गीत, वनों की समृद्धि के प्रति कृतज्ञता और धरती माता के प्रति सम्मानकृये सभी तत्व उराँव लोकदर्शन को उजागर करते हैं।

सामूहिक चेतना उराँव लोकगीतों की सबसे प्रमुख विशेषता है। ये गीत प्रायः सामूहिक रूप से अखड़ा, पर्व–त्योहारों और सामाजिक अनुष्ठानों में गाए जाते हैं। सामूहिक गायन समुदाय के भीतर एकता, सहयोग और समानता की भावना को मजबूत करता है। लोकगीतों के माध्यम से सामाजिक नियम, नैतिक मूल्य और ऐतिहासिक स्मृतियाँ भी संप्रेषित होती हैं, जिससे सामूहिक पहचान का निर्माण होता है। समकालीन परिवेश में, जब आधुनिकता और बाहरी प्रभाव उराँव जीवन–शैली को प्रभावित कर रहे हैं, तब लोकगीत सांस्कृतिक संरक्षण का सशक्त माध्यम बनते हैं। इन गीतों के माध्यम से उराँव समुदाय अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है और अपनी सामूहिक चेतना, जीवन–दृष्टि और प्रकृति–संवेदनशीलता को जीवित रखता है। इस प्रकार उराँव लोकगीत जीवन, प्रकृति और सामूहिक चेतना के त्रिवेणी संगम के रूप में उभरते हैं।

कुंडूख लोक गीतों में आदिवासी जीवन–संघर्ष और सामाजिक संरचना का चित्रणः–

कुंडूख (ज्ञनतनी) लोक गीत आदिवासी समाज के सामूहिक जीवन, सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक संरचना को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम हैं। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि समुदाय की जीवन–पद्धति, सामाजिक चेतना और सामूहिक अनुशासन को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित करने वाले मौखिक अभिलेख हैं। विशेष रूप से शिकार, कृषि और सामूहिक अनुष्ठानों से जुड़े गीत आदिवासी जीवन–संघर्ष और सामाजिक व्यवस्था को स्पष्ट रूप से सामने लाते हैं।

कुंडूख समाज में 'जनी शिकार' एक विशिष्ट सामूहिक

अनुष्ठान रहा है, जिसमें स्त्रियाँ संगठित होकर शिकार खेलने जाती हैं। इससे संबंधित लोक गीतों में सामाजिक सतर्कता, सामूहिक उत्तरदायित्व और समुदाय की आंतरिक संरचना का चित्रण मिलता है।

कुंडूख लोक गीत :

जनी शिकार बरा लगी,
किसन मँखाय हे चेंड़ा पे लो।
पाईरी बीरी जनी शिकार बरालगी,
किसन मंखाय हे चेंडा पेलो।

अर्थ :

हे युवती, जनी शिकार खेलने के लिए औरतें आ रही हैं।
सुअरों को घर के अंदर बंद कर दो।
न जाने किसका जानवर मारा जाए।
अंदर नहीं करने से वे अवश्य ही मारे जाएंगे।

इस गीत में कुंडूख समाज की सामूहिक जीवन–पद्धति और सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जनी शिकार केवल शिकार क्रिया नहीं है, बल्कि यह एक सामुदायिक आयोजन है, जिसमें पूरे गाँव की सहभागिता और सतर्कता अपेक्षित होती है। गीत में पशुओं को घर के भीतर सुरक्षित करने की चेतावनी यह दर्शाती है कि व्यक्तिगत संपत्ति भी सामूहिक गतिविधियों से प्रभावित होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज में व्यक्ति और समुदाय के हित परस्पर जुड़े हुए हैं।

यह गीत सामाजिक अनुशासन और सामुदायिक समन्वय की ओर संकेत करता है, जहाँ सामूहिक गतिविधियों के समय व्यक्तिगत सावधानी आवश्यक मानी जाती है। यह आदिवासी समाज की उस संरचना को रेखांकित करता है, जिसमें सामूहिक निर्णय और सामाजिक चेतावनी लोक गीतों के माध्यम से संप्रेषित होती है।

कुंडूख लोक गीत :

चोअय कोय लन्डी पेलो,
बलि कोंडा नू बल्लू रःई।
बारो बन्छारे जनी शिकार,
गुचय कोय लंडी पेलो,
बलि कोंडा नू बल्लू रःई।

अर्थ :

हे आलसी युवती, उठो।
दरवाजे के कोने में शिकार खेलने के लिए बलुवा रखा है।
बहुत कठिनाई से बारह वर्षों में जनी शिकार का अवसर आया है।
चलो, शिकार खेलने के लिए तैयार हो जाओ।

यह गीत कुंडूख समाज की अनुष्ठानिक परंपरा और समयबद्ध सामाजिक संरचना को उजागर करता है। 'बारह वर्षों में एक बार' जैसे संकेत यह बताते हैं कि जनी शिकार एक सामान्य क्रिया नहीं, बल्कि विशेष सांस्कृतिक अवसर है, जिसका सामुदायिक महत्व अत्यधिक है। गीत में युवतियों को संबोधित करना यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ न केवल सांस्कृतिक गतिविधियों की सहभागी हैं, बल्कि उनकी केंद्रीय भूमिका भी है।

यहाँ 'बलुवा' जैसे शिकार उपकरणों का उल्लेख आदिवासी जीवन की प्राकृतिक संसाधन आधारित संस्कृति को रेखांकित करता है। गीत सामूहिक तैयारी, अनुशासन और सांस्कृतिक दायित्व की भावना को पुष्ट करता है, जो कुंडूख समाज की सामाजिक संरचना का मूल आधार है। इन कुंडूख लोक गीतों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि आदिवासी जीवन–संघर्ष व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक है। सामाजिक अनुशासन, सामुदायिक चेतना, स्त्री–सहभागिता और सांस्कृतिक परंपराएँ इन गीतों में जीवंत रूप में अभिव्यक्त होती हैं। इस प्रकार कुंडूख लोक गीत आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना और जीवन–संघर्ष का महत्वपूर्ण सांस्कृतिक दस्तावेज सिद्ध होते हैं।

प्रकृति, ऋतुचक्र और पर्यावरणीय चेतना का लोकगीतात्मक अभिव्यक्तिः–

उराँवदृसरना परंपरा में प्रकृति केवल भौतिक परिवेश नहीं, बल्कि सजीव, मातृस्वरूप और नैतिक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित है। सरना माँ, धरती माँ और सूर्य जैसे प्राकृतिक तत्त्वों की पूजा उराँव समाज की जीवन–दृष्टि को स्पष्ट करती है, जहाँ मानव जीवन प्रकृति के ऋतुचक्र के साथ पूर्णतः समन्वित है। इस समन्वय की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति उराँवदृकुंडूख लोक गीतों में देखने को मिलती है।

सरहुल पर्व ऋतुचक्र आधारित नववर्ष का प्रतीक है, जो चौत शुक्ल पक्ष में प्रकृति के नवजीवन के साथ मनाया जाता है। इस संदर्भ में गोबर–खाद, पक्षी और कृषि संकेतों को लोकगीतों में अत्यंत संवेदनशील ढंग से पिरोया गया हैकृ

लोक गीतः

गोबारी गड़ी नू हिनुवा चिंखा लगी,
पाईरी बीरी हिनुवा चिंखा लगी।
कल पेलो कल एरर बर कोय,
ख़द्दी पाईरी हिनुवा चिंखा लगी।

इस गीत में 'हिनुवा' पक्षी प्रकृति का दूत बनकर उपस्थित होता

है, जो सरहुल के पश्चात कृषि कार्य आरंभ करने का संकेत देता है। यहाँ लोकगीत प्राकृतिक संकेतों को कृषि–निर्णय से जोड़ने वाली पारंपरिक पर्यावरणीय चेतना का प्रमाण है। उराँव समाज प्रकृति को पढ़ता है, समझता है और उसी के अनुसार जीवन–क्रियाएँ संचालित करता है।

वसंत ऋतु के आगमन पर धरती माँ को दुल्हन के रूप में कल्पित किया गया है–

लोक गीतः
एन्देर पुंपन आयो मेझरकी,
भगजोगनी लेखा लवकारकी बरा लागदी।
नौर पुंपन आयो मेझरकी,
भगजोगनी लेखा लवकारकी बरा लागदी।

यह गीत धरती की हरियाली, पुष्प–वैभव और सुगंध को सौंदर्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। यहाँ पर्यावरण केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि पूज्य और सौंदर्यपूर्ण सत्ता है। सरहुल को 'खेखेल बेंजा' (धरती माँ का विवाह) मानना उराँव समाज की गहन पारिस्थितिक दृष्टि को दर्शाता है, जहाँ सूर्य और धरती के मिलन से सृष्टि का नवचक्र आरंभ होता है।

सरहुल से जुड़े शुद्ध–अशुद्ध के नियम भी पर्यावरणीय संतुलन से गहरे जुड़े हैं। 'सोतरा' की अवधारणा सामाजिक अनुशासन के साथ–साथ पवित्रता और प्राकृतिक संतुलन की रक्षा का माध्यम है–

लोक गीतः
हुदिन अम्बा कोरआ चिआ तुरी सोतरा मंजा ३

यह गीत दर्शाता है कि सरहुल से पूर्व और पश्चात सामाजिक नियमों का उल्लंघन केवल सामाजिक अपराध नहीं, बल्कि सरना माँ और धरती माँ के अपमान के समान माना जाता है। विश्वास है कि इससे खेती, वर्षा और अन्न–उपज प्रभावित होती है। इस प्रकार लोकगीत पर्यावरणीय चेतना को सामाजिक आचार–संहिता में रूपांतरित करते हैं।

सामूहिक श्रम, अनुष्ठान और सामुदायिक एकता की चेतनाः–

कुंडूख (ज्ञनतनी) लोक गीत आदिवासी समाज की सामूहिक चेतना, श्रम–संस्कृति और अनुष्ठानिक परंपराओं का सजीव दस्तावेज हैं। ये गीत केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समुदाय के सामूहिक प्रयास, पारस्परिक सहयोग और धार्मिक–सामाजिक एकता को मजबूत करने वाले माध्यम हैं। विशेष रूप से औषधीय वनस्पतियों, पर्व–अनुष्ठानों और सामूहिक खोज से जुड़े गीत आदिवासी समाज की जीवन–दृष्टि को स्पष्ट करते हैं।

लोक गीत और सामूहिक श्रम
कुंडूख लोक गीतः
किम किमाड़ों किमाड़ों लाल किमाड़ो ।।2।।
जॉखय सेंगेल–मॅगेल, पेलैय लाल किमाड़ो ।।2।।
आधा पेलैय हगाय–पोकास, आधा पेलेय डेम–डेम

इस गीत में वर्णित 'लाल किमाड़ो' एक औषधीय पौधा है, जो नदी–नालों, दलदली क्षेत्रों और खेतों की मेढ़ों पर पाया जाता है। यह विशेष रूप से स्त्रियों की प्रसूति–सम्बंधी बीमारियों के उपचार में प्रयुक्त होता है। गीत में युवतियाँ सामूहिक रूप से किमाड़ो उखाड़कर करम गोसांई के पास ले जाने की बात करती हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि औषधीय ज्ञान व्यक्तिगत न होकर सामुदायिक ज्ञान है। यहाँ श्रम, चिकित्सा और आस्था तीनों सामूहिक रूप से जुड़ते हैं। नाचते–गाते युवक–युवतियों की तुलना किमाड़ो से की जाना समुदाय की सामूहिक सुंदरता और एकता का प्रतीक है।

अनुष्ठान और सामुदायिक एकता
करम पर्व से जुड़े गीतों में सामूहिक श्रम और अनुष्ठान की चेतना और भी प्रबल रूप में दिखाई देती है–
पूंप तोखाः झरियो–झरियो केरन, नीदिम डौड़ा ३

और–
पूंप तोखाः केरन धिंया, झरियो–झरियो केरअन रे३

इन गीतों में युवतियाँ करम राजा को अर्पित करने हेतु फूल खोजने के लिए नदी–नालों, जंगलों और दूरस्थ क्षेत्रों तक जाती हैं। फूल न मिलने की पीड़ा व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक धार्मिक चिंता बन जाती है। भूख–प्यास भूलकर फूल खोजना यह दर्शाता है कि अनुष्ठान केवल धार्मिक क्रिया नहीं, बल्कि सामूहिक दायित्व है। करम राजा के अखाड़े में उरद की पत्तियाँ सजाना और सामूहिक नृत्य–गान समुदाय को एक सूत्र में बाँधता है।
लोक गीतः
लेथेड़–थेमेड़ खद्दारिम दाई गो।।

उन्दूल हूँ नाला–बेचा पोलन भला।।
करम बेचा पोलअन भला।।

इस गीत में एक स्त्री अपनी बड़ी बहन से करम पर्व में भाग न ले पाने की विवशता व्यक्त करती है। छोटे बच्चों की देखभाल के कारण वह नाच–गान में सम्मिलित नहीं हो पाती। यह गीत आदिवासी समाज की यथार्थपरक स्त्री–स्थिति को दर्शाता है, जहाँ उत्सव की आकांक्षा और पारिवारिक दायित्व के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। यहाँ व्यक्तिगत दुःख भी सामूहिक भाव बन जाता है, क्योंकि करम नृत्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामुदायिक सहभागिता का प्रतीक है

लोक गीतः
करम डौड़ा नू पेलो कोय, बबु निंग्है चिंखा लगी रे ३

इस गीत में करम डौड़ा के समय बच्चे के रोने और नाच–गान के बीच संवाद दिखाई देता है। युवती का उत्तर प्रतीकात्मक है–करम बोवर के समय खीरे को बालक के रूप में माना जाता है, जिसकी देखभाल सामूहिक रूप से युवक–युवतियाँ करते हैं। यह गीत स्पष्ट करता है कि करम अनुष्ठान में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व सामूहिक चेतना में विलीन हो जाता है। सामाजिक जीवन में प्रतीकों के माध्यम से सामूहिक अनुशासन स्थापित किया जाता है।

लोक गीतः
एका जोंखस कडारु खापदस ३
कुल्ला नू बकूला टैंड्या३

इस गीत में युवक की तुलना कडः (भैंस का बच्चा) चराने वाले रसिक युवक से की गई है, जिसके सिर पर बगुला पंखों का श्रृंगार है। यह सौंदर्य–बोध केवल व्यक्तिगत आकर्षण नहीं, बल्कि समुदाय के भीतर जोड़ी–साथी की पहचान से जुड़ा है। करम पर्व सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ करने और सामुदायिक एकता को मजबूत करने का अवसर भी प्रदान करता है।

निष्कर्ष :–

कुंडूख लोक गीत आदिवासी समाज की जीवन–दृष्टि, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक चेतना के सशक्त मौखिक अभिलेख हैं। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ये लोक गीत केवल मनोरंजन या अनुष्ठानिक परंपरा तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे जीवन, प्रकृति और समाज के बीच गहरे अंतर्संबंधों को अभिव्यक्त करते हैं। कुंडूख लोक गीतों में आदिवासी जीवन–संघर्ष व्यक्तिगत न होकर सामूहिक रूप में सामने आता है, जहाँ व्यक्ति की पहचान समुदाय और प्रकृति से जुड़कर ही पूर्ण होती है। जनी शिकार, करम पर्व और सरहुल जैसे अनुष्ठानों से जुड़े गीत यह दर्शाते हैं कि कुंडूख समाज में सामूहिक श्रम, सामाजिक अनुशासन और सहभागिता अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जनी शिकार से संबंधित गीतों में स्त्रियों की केंद्रीय भूमिका यह स्पष्ट करती है कि आदिवासी समाज में स्त्री केवल घरेलू दायित्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाओं की सक्रिय सहभागी है। इन गीतों में पशुओं की सुरक्षा, सामुदायिक सतर्कता और नियमबद्ध शिकार जैसी अवधारणाएँ आदिवासी समाज की संतुलित जीवन–पद्धति को रेखांकित करती हैं।

प्रकृति और ऋतुचक्र से जुड़े लोक गीत कुंडूख समाज की पर्यावरणीय चेतना को उजागर करते हैं। सरहुल पर्व से संबंधित गीतों में पक्षियों, फूलों, धरती और सूर्य के माध्यम से कृषि–कार्य और सामाजिक गतिविधियों का समय निर्धारण किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि सजीव और पूज्य सत्ता के रूप में देखता है। 'सोतरा' जैसे नियम लोकगीतों के माध्यम से सामाजिक अनुशासन और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने का कार्य करते हैं। करम पर्व के गीतों में उत्सव, सौंदर्य–बोध और पारिवारिक दायित्वों के बीच संतुलन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति मिलती है। छोटे बच्चों के कारण नृत्य में भाग न ले पाने की पीड़ा या करम डौड़ा के समय बच्चे के रोने से जुड़ा संवाद यह दर्शाता है कि आदिवासी लोक जीवन भावनात्मक, संवेदनशील और सामूहिक चेतना से ओत–प्रोत है।

अतः यह कहा जा सकता है कि कुंडूख लोक गीतों में जीवन, प्रकृति और सामूहिक चेतना एक अविभाज्य इकाई के रूप में उपस्थित है। ये गीत आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना, पर्यावरणीय दृष्टि और सामूहिक जीवन–दर्शन को सुरक्षित रखने वाले सांस्कृतिक दस्तावेज हैं, जिनका अध्ययन न केवल लोक साहित्य बल्कि समकालीन सामाजिक और पर्यावरणीय विमर्श के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची –

1. बिस्वास, सी. कृ भौतिकी का मानवविज्ञानरू ऊर्जा, पदार्थ और संस्कृति, भारत। प्दजमतदंजपवदंस श्रवनतदंस वि त्मेमंतबी पद भ्नउंदपजपमे ंदकै वबपंसै जनकपमे, 2015।
2. बिस्वास, सी.य रे, एम. कृ सीधी रेखा में वंशरू सामाजिक नृविज्ञान में एक प्रारंभिक अध्ययन। श्रवनतदंस of South Asian Studies, 2012 :2308–7846।

3. भीखू तिरकी – उरांव सरना धर्म और संस्कृति, झारखंड झरोखा, रांची, द्वितीय संस्करण, 2014।
4. बर्क, पी. – प्रारंभिक आधुनिक यूरोप में लोकप्रिय संस्कृति, इंग्लैंडः एशगेट पब्लिशिंग लिमिटेड, 2009।
5. बोआस, एफ. – जनरल एंथ्रोपोलॉजी, यूएसएः डी. सी. हीथ कंपनी, 1938।
6. डेबनाथ, डी. – जनजातीय क्षेत्रों में पारिस्थितिकी और अनुष्ठान, नई दिल्लीः सरूप एंड संस, 2003।
7. डिक्सन, आर. बी. – छोटानागपुर के ओराओनरू उनका इतिहास, आर्थिक जीवन और सामाजिक संगठन, शरत चंद्र रॉय द्वारा, अमेरिकन एंथ्रोपोलॉजिस्ट, 1916। :282–284।
8. डॉ. सत्येंद्र – लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार, चतुर्थ संस्करण, 2022, पृष्ठ 315।
9. डॉ. शांति खलखो – उरांव संस्कृतिरू परिवर्तन एवं दिशाएं, झारखंड झरोखा, रांची, द्वितीय संस्करण, 2023।
10. दुबे, एस. सी. – भारत के बदलते गाँव, लंदनरू रूटलेज एंड केगन पॉल लिमिटेड, 1958।
11. रॉय, एस. सी. कृ छोटानागपुर के ओराओन्स, रांची, 1915।
12. रिस्ले, एच. एच. – बंगाल की जनजाति और जाति, कलकत्ता, 1991।
13. मैरियट, मैक. – द लिटिल कम्युनिटी, शिकागोः शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, 1955।
14. मैरियट, मैक. – विलेज इंडिया, शिकागोरू यूनिवर्सिटी प्रेस, 1955।
15. मार्शल, एम. एल.य ब्रूस, आर. पी. – वैश्विक गाँवरू 21वीं सदी में विश्व जीवन और मीडिया में परिवर्तन, यूकेरू ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. मुखर्जी, के.य बंद्योपाध्याय, बी.य बनर्जी, ए. आदि – न्यू एज पुरोहित दर्पण, यूएसएरू एसोसिएशन ऑफ ग्रैंडपेरेंट्स ऑफ इंडियन इमिग्रेंट्स, नैशविले, प्रथम संस्करण, 2012।
17. पटनायक, एन. – जनजातीय संचार की लोककथाएँ, मेहरा ऑफसेट प्रेस, 2002।
18. सिंगर, एम. – पारंपरिक भारतः संरचना और परिवर्तन, फिलाडेल्फिया– अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी, 1958।
19. टाइलर, ई. बी. कृ मानवविज्ञानरू मनुष्य और सभ्यता के अध्ययन का परिचय, न्यूयॉकर्रू डी. ए. प्लेटन एंड कंपनी, 1890।
20. विद्यार्थी, एल. पी.य राज, बिनय – भारत की जनजातीय संस्कृति, नई दिल्लीः कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कमेटी, 1996।
21. ग्ंस•व, च – प्रकृति में मानव जीवन और अन्य जीवन रूपों का पूरक, रोमरू ग्रेगोरियन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007।

सरिता मिंज,
शोधार्थी, हिंदी विभाग, रांची
विश्वविद्यालय, राँची (झारखंड)
संपर्क सूत्रः 6202026625
ईमेल पता: Saritaminz767@gmail.com

4

भूमिदान का महत्व

Dr- Naveen Gahlawat

सारांश

हिंदू धर्म में दान को बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। शास्त्रों के मुताबिक दान करने से पूर्व किए गए पापो से मुक्ति मिलती है। दान का पूरा अर्थ है– उदारता और सहायता । विशेष रूप से जरूरतमंदो या पीडितो के प्रति । धन से वंचित होतेहुए तन मन से दूसरों की भलाई करना तथा अशिक्षितों को शिक्षा का दान देना ही सच्चा दान है। दान से अक्षय पुण्य मिलता है और साथ ही जाने–अनजाने में किए गए पापं कर्मों के प्पल भी नष्ट हो जाते है। गीता के अनुसार – दान देनाही कर्तव्य है इम भाव से जो दान योग्य देश काल को देखकर ऐसे पात्र कसे दिया जाता है जिससे प्रत्युपकार की अपेक्षा नहीं होती है वह दान साच्विक माना गया है। दान किसी वस्तु पर से अपना अधिकार समाप्त करके दूसरे का अधिकार स्थापित करना दान है।

दान एक ऐसा कार्य है जिसके जरिए हम न केवल धर्म का ठीक– ठाक पालन कर पाते है बल्कि अपने जीवन की तमाम समस्याओ से भी निकल सकते हैं। आयु रक्षा और सेहत के लिए तो दान को अचूक माना जाता है। जीवन की तमाम समस्याओं से मिजात पाने के लिए भी दान का विशेष महत्व है। दान करते समय मन साफ होना चाहिए। दान करते समय मन साफ होना चाहि,। दान अपनी इच्छा से ही होना चाहिए

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही आध्यात्मिकता को अधिक महत्व दिया गया है तथा अध्यात्म में दान परोपकार, कल्याण आदि का विशेष स्थान रहा है। प्राचीन समय में दान को पुण्यप्रद धार्मिक कार्य माना जाता था । प्रारम्भ में दान के रूप मे अन्न फल •य आदि दिये जाते थे किन्तु कालान्तर में भूमि कि महत्ता बढ़ने के साथ अचल सम्पत्ति के रूप में भूमि का भी दान किया जाने लगा।

अग्निपुराण में कहा गया है कि दान के दो भेद होते है इष्ट और पूर्त1 दान धर्म का आचरण करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। बावली कुआँ तालाब देवमन्दिर अन्न का सदावर्त करना एवं बगीचे आदि बनवाना ये सब मोक्ष प्रदान करने वाले पूर्व धर्म कहलाते हैं2 अग्नि होत्र करना, सत्य बोलना, वेदाध्ययन करना, अतिथि सत्कार करना तथा बलिवैश्वदेव करना ये स्वर्ग लोक प्रदान करने वाले इष्टधर्म कहे गए है 3 तहन काल में सूर्य की संक्रान्ति होने पर तथा द्वादशी आदितिथियों में जो दान दिया जाता है वह स्वर्ग प्रदान करने वाला पूर्त धर्म कहलाता है। देश काल और पात्र के अनुसार दिया गयारान करोड़ गुना फल देने वाला होता है।

गया, गंगा और प्रयाग आदि तीर्थों में तथा मन्दिरों में किसी के बिना माँगे दिया हुआ दान उत्तम होता है 4 दाता को पूर्वाभिमुख होकर दान देना चाहिए और ग्तहीताको उत्तराभिमुख हो कर दान लेना चाहिए ऐसा करने से दान देने वाले की आयु बढ़ती है किन्तु दान लेने वाले की कायु क्षीन नहीं होती।

हर धर्म में दान करने का बहुत महत्व माना जाता है भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही दान करने की परंपरा चली आ रही है। हिंदू सनातन धर्म में 5 प्रकार के दानों का वर्णन किया गया है। ये 5 दान है– विद्या, भूमि, कन्या, गौ और अन्न दान । महाभारत में भी भीष्म और श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्टिर को भूमि दान का माहात्म्य बताते हुये कहा है कि ष्भूमि के दान से बड़ा कोई दान नहीं है और भूमि छीन होने लेने से बड़ा कोई पाप नहीं है 5। अग्नि पुराण के अनुसार – जिसमे समस्त प्रकार में सस्य उत्पन्न हो सकें इस प्रकार की भूमि का दान करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है 5 ।

भविष्य पुराण में भूमि दान के विषय में कहा गया है कि समप्त देयों का भवन तुम्हीं हो, तुम समस्त देवों का भवन तुम्हीं हो तुम समस्त जीवों की धात्री हो। समप्त सौख्यपुर बसु तुम धार.ा करती हो इसलिए तुम्हें वसुन्धरा कहा जाता है। चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अंत का पता नहीं लगा सके अतः तुम अनन्ता हो। तुम्हीं गोविन्द की लक्ष्मी, शिप की गौरी ब्रह्मा के पा'र्व में गायत्री, चन्द्र की ज्योत्सना एवं रति की प्रभा हो । उसी भाँति बृहस्पति में बुद्धि मुनिगणों में मेधा हो कर स्थित हो। विश्व का अरण पोषण करने के, नाते तुम्हे विश्वम्भर कहा जाता है 6।

धुति, क्षिति, क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही अनेक नाम भी पृथिवी के भविष्य पुरान में प्राप्त है पृथिवी दान के महत्व के विषय मे कहा गया है कि पृथ्वी देवी का दान करने बोला विद्वान् मनुष्य पुण्य अवसर पर वैष्ाव पद (विष्णु लोक) प्राप्त करता है। सूर्य के समान प्रकाशित और किंन्डी जाल भूषित विमान द्वारा नारायण पुरी में तीलकला तक निवास प्राप्त होता है। पश्चात् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है। पृथिवी का दान करने वाला

विजयी, शत्रुओं को दमन करने वाला एवं अन्म सेवकों से युक्त रहता है। सौ कोटि का अधिक, शूर–चक्रवर्ती और महाबलवान् राजा हो कर सात जन्म तक उस दान के प्रभाव से वैसा ही राज्य प्राप्त करता है 6

महाभारत के अनुशासन पर्व में भूमिदान को सभी धार्मिक कार्यों में श्रेष्ट कहा गया है 7। वही वष्ठि धर्म सूत्र में भूमि दान को अतिदान कहा गया है 8 । अधर्ववेद में भूमिदान करने का संकेत मिलता है 9 छांदोग्य उपनिषद में आचार्य को 100 ,ाम देंने का उल्लेख किया गया है 10।

पारस्करगृह्यसूत्र में गुरु दक्षिणा के रूप में भूमिदान व्या वर्णन मिलता है 11

बौद्धकाल में शासकों द्वारा विहार उपवन तथा ताम आदि भिक्षुओं को दान में दिया जाता था जिसका उपयोग भिक्षु अपने जीवन यापन के लिए करते थे।

कौटिल्य ने योग्य ब्राह्मण विद्वानो एवं उच्चपदाधिकारियों को भूमि दान देने का आदेश दिया है 12

मत्स्य पुराण में पृथ्वी की स्वर्ण प्रतिमा दान से भूमि दान को संकेत मिलता है 13।

बृहस्पति स्मृति में भी भूमि दान मात्र से ही पाप की शु) का उदाहरण मिलता है 14

महाभारत में श्री कृष्ण भूमि दान की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है. दूसरे दानों के पुण्य समयपाकर क्षीण हो जाते है किंतु भूमिदान के पुण्य का कभी भी क्षय नहीं होता 1 ब्राह्मण को भूमि दान करने से रुब देवता, सूर्य शंकर और मैं – ये सभी प्रसन्न होते हैं। भूमिदान के पुग्य से पवित्र चित्त हुआ दाता मेरे परम धाम में निवास करता है सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य होता है यह सारा पुण्य भूमि का दान करने से प्राप्त हो जाता है भूमि का दान करने वाले पुरुष के पास यमराज के दूत नहीं फटकने पाते। मृत्यु के दण्ड, दारुण कुम्भीपाक, वरुणयाश, शैख आदि नरक, वैतरणी नदी और कठोर थम – यातनाएं भी भूमि दान करने वालों को नहीं सतातीं। चित्रगुप्त, कलि, काल, कृतान्त मृत्यु और साक्षात भगवान यम भी भूमि का दान करने वाले का आदर करते हैं।

जैसे गाय अपना दूध पिलाकर पुत्र का पालन पोषण करती है. उसी प्रकार दान में दी हुई भूमि दाता पर अनुग्तह करती है जिस प्रकार जल से सीचे हुए बीज अंकुरित होते है वैसे ही भूमि दाता के मनोरथ प्रतिदिन पूर्ण होते रहते है। जैसे सूर्य का तेज समस्त अन्धकार को दूर कर देता है. उसी प्रकार असे भूमिदान मनुष्य के सम्पूर्ण पापों का नाश कर डालता है। प्रसन्नचिन्त हो कर मनुष्य यदि पृथ्वी का दान करता है तो वह सम्पूर्ण मनोर्वादित कामनाओं को प्राप्त करता है 15

अतः हर धर्म में दान लेकिन आज का बहुत महत्त्व है लेकिन आज के बदलते समाज में लोगों के लिए दान का अर्थ केवल धन दान तक ही सीमित रह गया है लेकिन दान करते समय ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी प्रकार का दान निस्वार्थ भाव से किया जाना चाहिए।

(1) दानमष्टिं तथा पूर्त ३३३३३३..अनि पुराण अ० 209 श्लोक 1

(2) वापीकूप तडागानि देवतायतनानि च
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्त धर्म–च मुक्तिदम् ॥
अग्निपुराण अ० 209ध श्लोक 2

(3) अग्निहोत्र तपः सत्यं वेदानाञ्चानुपालनाम् ।
आतिच्यं वैश्वदेवञ्च प्राहुरिष्टञ्चनाकार ॥
अग्निपुर अ० 209ध श्लोक 3

(4) गयागङ्गप्रयागादि तीर्थे देवालयादिषु
अप्रार्थितानि दानानिविधार्थ कन्यका नहि ॥
अग्निपु० अ० 209 209ध श्लोक 20

(5) ।श महाभारत आखमेधिकपर्व अ० 92
ठ. भूमि दच्वा सर्वभाक् स्यात् सर्वशस्य प्ररोहिणीम्
अनि पु० अ० 213 श्लोक 9

6। भविष्य पुराण अ० 165, श्लोक 14–22

(6ठ) भविष्य पुराणरू– अ० 165 श्लोक 23–32

(7) महाभारत अनुशासन पर्व (सम्पादक) नीलकण्ड, पूना 1929–33

(8) वशिष्ठ धर्म सूत्र 29–12 (सम्पादक ए०ए० फुहरर बम्बई 1916)

(9) अथर्ववेद 5–11.1, 5.11.8 (सम्पादक) विश्वबन्धु होशियारपुर संस्कृत संस्थान बरेली 1962

(10) छांदोग्य उपनिषद 4.14–51, गीताप्रेस गोरखपुर – सम्पादन 1994

(11) पारस्करगृधारण तृतीयकाण्ड द्वादश कण्डिका (सम्पादक) महादेव गंगाधर वाकरे मुंशीराम मनोहर पब्लिशर्त द्वितीय

संस्करण 1982

(12) कौटिल्य अर्थशास्त्र अ धिकरण 2 प्रकाशक 19 अध्याय ६ सम्पादक गणपति शास्त्री

(13) मत्स्यपुराणे अध्याय 284 हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित पूना 1906

(14) बृहस्पतिस्मृति 1.7 ॐ गिरिजा शंकर शास्त्री चौखम्भा संस्कृत भवन

(15) महाभारतआश्वमेधिकपर्व अध्याय–92,

Dr- Naveen Gahlawat

Assistant Professor

G- c- w] Rewari

5

वीरेन डंगवाल के काव्य में प्रकृति के द्वारा मानवता का सन्देश

सिम्पी, डॉ० अनिशा

शोध सार :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य जिस स्थान पर रहता है वहाँ की वायु, जल, मिट्टी वहाँ रहने वाले छोटे–बड़े जीव से उसका जीवन अवश्य प्रभावित होता है। प्रकृति का अर्थ है, वह सब कुछ जो इस पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से मौजूद है, जिसे मनुष्य ने नहीं बनाया है। इसमें पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, पहाड़, नदियाँ, हवा, पानी और अन्य प्राकृतिक उपादान शामिल हैं। ये सभी चीजें हमारे जीवन के लिए आवश्यक हैं। प्रकृति हमें विभिन्न प्रकार के संसाधन प्रदान कराती है। अगर सही शब्दों में कहे तो प्रकृति के बिना मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं है। वीरेन डंगवाल एक एसे कवि थे जिन्होंने अपने काव्य में प्रकृति में शामिल छोटी–छोटी चीजों पर अपनी कविता लिखी है। उनकी कविताओं को देखा जाएं तो वीरेन जो एक प्रकृति प्रेमी कवि थे। उन्होंने अपनी कविता में प्रकृति की चीजों का वर्णन करके मानव के जीवन के साथ जोड़ा है। वीरेन डंगवाल की कविताएँ प्रकृति के विभिन्न रूपों को उजागर करती है, उनकी कविताएं प्रकृति के सौन्दर्य और विनाश दोनों का वर्णन करती है। पर्जन्य, वन्या, वरुण जैसी कविताओं में उन्होंने प्रकृति के विभिन्न रूपों जैसे पेड़, फूल, नदियाँ, पहाड़ आदि का वर्णन किया है, वीरेन की कविताएं लोगो को सन्देश देते हुए चलती है।

मूल शब्द : प्राकृतिक उपादान, जीवन और मृत्यु, फल–फूल, जीवन चक्र, प्रदूशण, मानवीय भावना, पर्यावरण संरक्षण, गरीबी, भुखमरी।

शोध आलेख :

इनकी कविताओं में 'मानवता' एक महत्वपूर्ण विषय है, उनकी कविताओं में समाज में रहने वाले लोगों, विशेषकर महिलाओं और गरीबो के संघर्ष को उजागर करती है। प्रकृति के माध्यम से मानव को सन्देश देने का प्रयास करती है। कवि अपनी एक कविता 'जल की दुनिया में भी बहार आती है' के माध्यम से मानव को संदेश देते हुए लिखते है कि–

''जब आती हवा हाँकती लेकर काले–काले जलद यूथ
प्राणो को हरा–भरा करती
बेताब बनाती बूढ़े भारी पेड़ों तक को
धरती के जर्रे–जर्रे को
जीवन के निरूपमेय रस से भरती
अजब संगीत सुनाती है।''[1]

कवि ने यहां पर कविता में प्रयोग तो हवा, पानी, पेड़ों का किया है लेकिन कवि इन सभी के माध्यम से मानव को सन्देश देने का प्रयास कर रहे हैं। कवि ने मानवता के लिए यह सन्देश दिया है कि जीवन की निरन्तरता के साथ पानी के बहाव को जोड़ा है। जिस प्रकार पानी बहता रहता है, उसी प्रकार हमारा जीवन भी ऐसे ही पानी की तरह चलता रहता है। यह कविता हमें सिखाती है कि जल, जो जीवन का महत्वपूर्ण आधार है। यह पानी केवल मनुष्य के लिए नही बल्कि धरती पर रहने वाले सभी जीवों के लिए भी आवश्यक है। जल के दवारा ही हवा को ताजा किया जाता है। पेड़ो को हरा–भरा रखता है, और धरती के हर एक कण को जीवन प्रदान करता है। यह कविता मनुश्य को यह याद दिलाती है कि जीवन में निराशा के क्षणों में भी, हमें आशावादी बने रहना चाहिए। मनुष्य को इस बात का एहसास कराया जाता है कि पानी का जीवन में कितना महत्व है। पानी के बिना मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं है। प्राकृतिक चीजों के दवारा कवि अपनी एक और कविता के माध्यम से 'उठा लंगर खोल इंजन' मनुष्य को जीवन में रास्ता दिखाने का प्रयास करते हुए लिखते हैं कि –

''हवाएँ रास्ता बतलाएंगी
पता देगा अडिग ध्रुव
प्रेम अपना
दिशा देगा –
नहीं होगे जबकि हम तब भी हमेशा दिशा देशा
लिहाजा,
उठा लंगर खोल इंजन छोड़ बन्दरगाह।''[2]

वीरेन डगवाल की कविता 'उठा लंगर खोल इंजन' के माध्यम से कवि हमें यह बताने का प्रयास कर रहे है कि इस कविता में कवि अपने बेटे को जो जहाजों में काम करता है, उसे बंदरगाह छोड़ने और यात्रा पर निकलने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। कवि का बेटा जब जहाज में उतरेगा और उस पानी की जहाज को चलाएगा तभी उनका आत्मविश्वास बनेगा। समुन्द्र में जो हवा चलती है उनके माध्यम से वह अपना रास्ता खुद निकाल लेंगें। कि किस तरफ तुझे जाना है। इस कविता के माध्यम से मानवता को यह संदेश दिया गया है कि हमें प्रेम, साहस और दृढ़ संकल्प के साथ जीवन की हर चुनौती का सामना करना चाहिए। इस कविता के माध्यम से कवि जीवन की यात्रा में प्रेम, साहस और दृढ़ संकल्प के महत्व को दर्शाते हैं और जीवन की यात्रा में हमें हमेशा आगे बढ़ते रहना चाहिए। प्रकृति और मनुष्य का सम्बन्ध पुराने समय से ही रहा है। जब तक मनुष्य जीवित रहेगा तब तक यह प्रकृति हमारे साथ–साथ चलेगी। जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए वीरेन डंगवाल अपनी एक कविता 'वृक्ष के पत्र' में बताते है कि ''चिट्यिाँ लिक्खी

हवा में डाल दी
बे–पता थी
उनका जो होता, हुआ।"[3]

'वृक्ष के पत्र' नामक कविता के माध्यम कवि यह बताने का प्रयास कर रहे है कि एक पेड़ जब अंकुरित होता है फिर वह बड़ा होता है बड़े होकर उस पर फल–फूल, पत्तियों का आगमन होता है। इन सभी प्रक्रियाओं के बाद पेड़ में पतझड़ भी आती है।

फिर मौसम के हिसाब से पेड़ों पर दोबारा पत्तों का आगमन होता है। यह प्रक्रिया कवि ने एक पेड़ की बताई है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य के जीवन चक्र को एक पेड़ के साथ जोड़ा है, वृक्ष के माध्यम से कवि ने मनुष्य के जीवन को एक पेड़ की तरह माना है। जिस प्रकार एक वृक्ष के पत्ते गिरते है। इन पत्तों का गिरना, फिर नए पत्तों का आना इस क्रम को कवि ने मनुष्य के जीवन चक्र के साथ जोड़ा है। इस कविता के माध्यम से मानवता का यह सन्देश है कि हमें प्रकृति के साथ सद्भाव से रहना चाहिए उसके साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए। कवि का मानना है कि मनुष्य का जीवन भी वृक्ष के तरह चलता है मनुष्य का जन्म होता है। जीवन में चुनौतियों का सामना करके फिर एक दिन मृत्यु हो जाती है। मनुष्य को इस बात का पता है प्रकृति के बिना मनुष्य के जीवन का कोई महत्व नहीं हैं फिर भी मनुष्य प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करता है। प्राकृतिक चीजों को नुकसान पहुंचाने का प्रयास करते हैं। वीरेन डंगवाल अपनी एक कविता 'कानपुर' में प्रकृति प्रदूषण को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि–

''पूरे शहर पर जैसे एक पतली–सी परत चढ़ी है धूल की।
लालइमली एल्गिन म्योर एलेनकूपर
ये इन मिलों के नाम हैं
जिनकी चिमनियों ने आहे भरना भी बन्द कर दिया है।''[4]

कवि 'कानपुर' कविता के माध्यम से यह बात स्पश्ट करने का प्रयास करते हैं कि मनुष्य जो दिन–प्रतिदिन अपने दैनिक उपयोग के लिए गाड़ियों का इस्तेमाल, चिमनियों का प्रयोग, मशीनों का उपयोग आदि वस्तुओं को बढ़ावा दे रहे हैं। इनके बढ़ते प्रयोग के कारण प्रकृति को भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। चारों तरफ धरती पर प्रदूषण ही प्रदूषण दिखाई दे रहा है। इस प्रदूषण को फैलाने में, प्रकृति को नुकसान पहुँचाने में, मनुष्य का महत्वपूर्ण योगदान है। वीरेन डंगवाल की कविता 'कानपुर' में कवि ने वायु प्रदूषण के लिए मानव को जिम्मेदार ठहराया है और एक चेतावनी दी है चेतावनी के माध्यम से मनुष्य को सन्देश दिया है कि अगर हमने अपनी आदतो में सुधार नहीं किया प्रकृति को सम्भाल कर नही रखा तो प्रकृति के विनाश को हमारी आने वाली पीढ़ी को झेलना पड़ेगा। प्रकृति के साथ हमारी यादें जुड़ी होती है जब कभी हम किसी पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम करते हैं तो हमें छाया का एहसास होता है। इस ठंडक के एहसास को हम कभी इस पेड़ के पास से गुजरते हैं तो अचानक हमें उस पल की याद आ जाती है। ऐसे ही पलों का कवि ने अपनी एक कविता 'केले का पेड़ हाथी की याद' में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि –

''फूल खिलेगा फिर से वह साँवला–बँजनी
सिकुड़े बक्कल वाला
रक्तिम घाव छिपाए
भीतर की परतों में
नोकीला–नतशिर केले का फूल सजीला।''[5]

इस कविता के माध्यम से कवि ने बताया कि एक केले का पेड़ था जिसके नीचे हाथी बैठकर विश्राम किया करता था। हाथी उस पेड़ के नीचे बैठकर वहा खेलते हुए बच्चों को देखा करते थे। यह कविता हाथी के अतीत के दिनों को याद करते हुए वर्तमान से जोड़ती है। केले का पेड़ और हाथी की यादें, दोनों ही मानवीय भावनाओं और यादों से जुड़ी है। कविता हमें याद दिलाती है कि चीजें हमे अतीत की भावनाओं और घटनाओं से कैसे जोड़ सकती हैं। केले का पेड़ हाथी को वर्तमान और अतीत से जोड़ता है। हाथी अपने अतीत को याद कर सकता है और वर्तमान को जी सकता है। इस कविता के माध्यम से कवि मनुष्य को यह सन्देश देना चाहता है कि हमें बिना वजह के पेड़ों की कटाई नहीं करनी चाहिए उनके साथ मनुष्य की यादे जुड़ी होती है। जो मनुष्य को अतीत और वर्तमान से जोड़ने का कार्य करती हैं। इस कविता के माध्यम कवि प्रकृति को बचाने का आहवान करते है। किन्तु मनुष्य को कितना भी समझाओं फिर भी बातों पर विशेष ध्यान नहीं देते है। उनको स्वयं भी पता है कि प्रकृति के बिना मनुश्य का कोई महत्व नहीं है। फिर भी वह प्रकृति को प्रदूशित करता रहता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए कवि अपनी कविता 'कानपुर' में लिखते है कि –

''परमट में कन्नौजिया महादेव भाँग के ठेले और आलू की टिक्की,
सरसैयाघाट पर कभी विद्यार्थी जी भी आया करते थे
अब सिर्फ कुछ पुराने तख्त पड़े है रेत पर, हारे हुए गंगा सेवकों के,
जाजमऊ के गंगा घाट पर नदी में सीझे हुए चमड़े की गन्ध और रस।''[6]

'कानपुर' कविता में कवि इस शहर के प्रदूषण का वर्णन करते है

जिसमें दिखाया गया है कि कैसे विकास की अंधी दौड़ में हमने नदियों, हवा और भूमि को दूषित कर दिया है। इस कविता के माध्यम से कवि यह भी दर्शाते है कि प्रदूषण केवल एक शहर या क्षेत्र की समस्या नहीं हैं, बल्कि यह मानव के लिए एक गंभीर खतरा है। यह कविता आधुनिकता और प्रदूशण के बीच संघर्ष को दर्शाती है। कविता में 'कानपुर' की प्रदूशित नदियाँ, जहरीली हवा और गंदी बस्तियाँ आधुनिकता के नकारात्मक पहलुओं को उजागर करती है। प्रदूषण ने लोगों के जीवन को प्रभावित किया है जिससे वे बीमार हो रहे और उनका जीवन खतरे में पड़ रहा है। मानव ने गंगा नदी को भी प्रदूषित करने में कोई कमी नहीं की हैं। गंगा नदी को गंधा कर दिया है। गंगा नदी को खराब करने के विषय में उन्होंने एक अन्य कविता में भी जिक्र किया है। कवि 'गंगा–स्तवन' कविता में लिखते है–

''गंगा के जल में ही बनती हैं।
हरसिल इलाके की कच्ची शराब
''घुमन्त् भोटियों ने खोल दिए है कस्बे के खोखे
जिनमे वे बेचते हैं।
दालें – सुई – धागा – प्याज – छतरियाँ – पॉलिथीन
वगैरह।''[7]

'गंगा–स्तवन' कविता गंगा नदी के प्रति श्रदा और प्रेम व्यक्त करती है। दूसरी ही तरफ गंगा नदी को प्रदूषित करने में मनुष्य का सबसे बड़ा योगदान बताया है। गंगा नदी सभी लोगों की जीवनदायिनी नदी है और जिसके किनारे बसे लोगों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कवि नदी के माध्यम से मानव को संदेश देने का प्रयास कर रहे है। नदी के प्रति आदर और प्रकृति के संरक्षण के महत्व को दर्शाते है। कवि गंगा नदी के प्रति प्रेम और आदर व्यक्त करके डंगवाल ने प्रकृति के संरक्षण और पर्यावरण के प्रति जागरूक होने का सन्देश दिया है। कवि की कही बात सभी लोगों को समझ में नहीं आती कुछ उसे अनसुना कर देते हैं। उन लोगों को कवि नींद से जगाने के लिए 'हमारी नींद' कविता में लिखते है कि

''मेरी नींद के दौरान
कुछ इंच बढ़ गये पेड़
कुछ सूत पौधे
अंकुर ने अपने नाम मात्र कोमल सींगों से।''[8]

कवि लोगों को यह समझाना चाहते है कि हमारे समाज के लोग ऐसे आखें बन्द करके सो रहे है। उनको किसी भी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है। समाज में क्या हो रहा है। किसी को कोई मतलब नहीं है। कवि लोगों को प्रकृति से जोड़कर लोगों को सन्देश देते है कि उनकी सुप्त अवस्था के दौरान प्रकृति में कितना बदलाव आ गया है। पेडों का आकार कितना बड़ा हो गया है और कितने नए पेड़ और अंकुरित हो गए है। इस कविता के माध्यम से कवि मानव को यह संदेश देना चाहता है कि मानव ऐसे ही कब तक सोता रहेगा। हमें नींद से जागना होगा, अन्याय के खिलाफ आवाज उठानी होगी। कवि लोगों को प्रकृति के साथ जोड़कर लोगों को प्रतिरोध के लिए प्रेरित करते है। उनकी एक कविता में वे लिखते हैं कि–

''वैसे इन मल्लाहों में है भुजबल इतना
एक डाँड में बीस हाथ गंगा की धारा
कर जाते है पार, चट्ट कर जाते पूरी
बोतल फिर भी पलक नहीं ये झपकाते हैं
और अक्ल भी बड़ी तेज है सूँघ हवा को
बतला सकते है बरसेगा कब पानी।''[9]

कवि 'मल्लाह' कविता के माध्यम से यह बताने का प्रयास करते है कि मल्लाह नदी पार कराने का काम करता है कवि हवा, लहरों के द्वारा मल्लाह के संघर्ष को उजागर करते हैं। कवि बताते है कि वह मजबूर व्यक्ति जो लहरों से रोज लड़ता है। लड़कर थक कर बैठ जाता है। वह हवा को सूँघ कर बता देता है कि आज बारिश होगी या नहीं। उनको पानी, हवा, लहरों का इतना ज्ञान हो गया था कि वो समुन्द्र की प्रत्येक घटना का पहले ही पता लगा लेते थे। मनुष्य को कवि ने इन लहरों के माध्यम से प्रकृति के साथ जोड़कर मनुष्य के जीवन से जोड़ा है। मनुष्य को सन्देश दिया गया है कि जिस प्रकार मल्लाह की जिंदगी में कितनी भी कठिनाइयाँ आई उन्होंने हार नहीं मानी वह उठकर हर बार फिर से प्रयास करने में लग जाता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी जीवन में हार नहीं माननी चाहिए जीवन में कितनी भी कठिनाइयाँ आएँ उनका डटकर सामना करों और जीवन में आगे बढ़ते रहों। कवि एक अन्य कविता 'रामसिंह' के माध्यम से बताने का प्रयास करते है कि कैसे रामसिंह से अपने बीते दिनों को याद करने के लिए कहा जाता है। प्रकृति के माध्यम से 'रामसिंह' कविता में लिखते है कि –

''ठीक है अब जरा आँखे बन्द करो रामसिंह
और अपनी पत्थर की छत से
ओस के टपकने की आवाज को याद करो
सूर्य के पत्ते की तरह काँपना
हवा में आसमान का फड़फड़ाना।''[10]

इस कविता में रामसिंह एक गरीब व्यक्ति है जो देश की सेवा करने में योगदान दे रहा है। कवि ने रामसिंह जैसे लोगों के जीवन, संघर्शो और भावनाओं को व्यक्त किया है। कवि ने

रामसिंह के माध्यम से साधारण व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त करते हुए बताते है कि रामसिंह देश की सेवा करता है जो अपने परिवार से दूर काम करने जाता है। कवि ने प्रकृति के माध्यम से रामसिंह की गरीबी का चित्रण किया है। वह उन्हें याद करने को कहते है उन दिनों को जब उनकी छत से पानी टपकता था। कवि उन दिनों को याद करने के लिए कहते हैं जब मनुष्य रामसिंह भुखमरी का शिकार थे। उनके घर खाने को कुछ नहीं है। कवि ने यहां मौसम और पहाड़ से लड़ना मनुष्य को चुनौतियों से लड़ने की बात कह रहे है। कवि प्रकृति के माध्यम से यह सन्देश देने की बात कर रहे है कि जिस प्रकार पेड़, पहाड़, पर्वत, नदिया आदि सभी प्रकृति चीजें सभी कठिनाइयों को झेलती है। और डटकर सभी चुनौतियों का सामना करते है उसी प्रकार मनुष्य को भी जीवन में कभी हारना नहीं चाहिए सभी चुनौतियों का सामना करना चाहिए। कवि अपनी 'हाथी' कविता में मनुष्य की गरीबी का चित्रण करते हुए लिखते है कि –

''पकडे जाने के बाद
हाथी के बदन, ताकत और
उन दाँतों का इस्तेमाल मालिक करते हैं
जिन्हें हाथी ने बनाया था
बहुत मेहनत और प्यार के साथ
पकडे जाने से पहले।''[11]

कवि की एक हाथी नामक कविता है जिसमें वह हाथी सुबह रोज स्नान करता हैं। अपने दोस्त हाथियों के साथ कसरत करता है। उनका जो मन करता है वहीं करता है। फिर वह उसके मालिक के दवारा पकड़ लिया जाता है। जब वह आजाद होता है तब वह बहुत खुश होता है। हाथी जैसे शक्तिशाली जीव भी अपनी ताकत का इस्तेमाल नहीं कर पाता है। वह अपने मालिक के इशारे पर नाचता है। उसी प्रकार यहाँ पर कवि हाथी के माध्यम से मनुष्य को जोड़ते हैं। जो स्थिति यहाँ पर हाथी की वही स्थिति एक गरीब व्यक्ति की है। गरीब व्यक्ति जब अपने घर में होता है मौज–मस्ती करता है। जैसा भी है वह अपने माहौल में खुश होता है। लेकिन जब उसे शोषक वर्ग का सामना करना पड़ता है तो मनुष्य की स्थिति भी कुछ ऐसी ही हो जाती है। जैसी हाथी की है। वह मनुष्य को इस कविता माध्यम से सन्देश देना चाहते है कि तुम हाथी की तरह शोशक वर्ग के लोगों के पंजे में दबे मत रहो। उठो आवाज उठाओं। अपनी शक्तियों को समझों और उनका सही समय पर इस्तेमाल करो हाथी से ही सम्बन्धित कवि की एक अन्य कविता में कवि मनुष्य को सन्देश देते हुए लिखते है –

''इतने भले नहीं बन जाना साथी
जितने भले हुआ करते हैं सरकस के हाथी
गदहा बनने में लगा दी अपनी सारी कुवत
सारी–प्रतिभा
ऐसा भी जिया जीवन तो क्या जिया ?''[12]

कवि यहाँ पर हाथी को सम्बोधित करते हुए प्रकृति के प्रति मानव को यह सन्देश दिया गया है कि हमें प्रकृति के साथ एक संतुलित संबंध बनाए रखना चाहिए। हमे अत्यधिक भले या आज्ञाकारी नहीं बनना चाहिए जैसे सर्कस के हाथी होते है जो अपनी आजादी खोकर दूसरों के मनोरंजन का साधन बनते हैं। कवि सर्कस के हाथियों का उदाहरण देते हुए यह दर्शाने का प्रयास कर रहे है कि अत्यधिक आज्ञाकारिता और भलापन मनुष्य को अपनी पहचान और स्वतंत्रता से दूर कर सकता है। कवि हाथी के माध्याय से यह भी समझाना चाहते है कि जीवन में हमे अपने उद्देश्य और लक्ष्य को समझना चाहिए न कि दूसरों के लिए जीना चाहिए। कवि का मानना है कि मनुष्य को जीवन के अनुभवों से सीखकर अपनी प्रतिभा का उपयोग करके और दूसरों को लेकर तथा दूसरों को देकर, जीवन जीना चाहिए।

निष्कर्ष :

अंततः कह सकते है कि वीरेन डंगवाल एक प्रकृति प्रेमी कवि थे। कवि ने अपने काव्य में जितनी भी कविता प्रकृति से सम्बन्धित लिखी है उनमें कुछ ना कुछ सन्देश मनुष्य को अवश्य दिया है। वे प्रकृति को केवल एक दृश्य के रूप नहीं देखते बल्कि मानव की भावनाओं और अनुभवों को जोड़कर देखते थे। डंगवाल की कविताएं मानवीय संवेदनाओं, जैसे खुशी, दुख, प्रेम, डर को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का उपयोग करती है। वे पाठकों को अपने आसपास की दुनिया में सुंदरता और अर्थ खोजने, प्रकृति के संरक्षण और पर्यावरण के प्रति जागरूक होने के लिए प्रेरित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. वीरेन डंगवाल, जल की दुनिया में भी बहार आती है (स्याही ताल) पृ० 52
2. वीरेन डंगवाल, उठा लंगर खोल इंजन (स्याही ताल) पृ० 55
3. वीरेन डंगवाल, वृक्ष के पत्र (स्याही ताल) पृ० 61
4. वीरेन डंगवाल, कानपुर (स्याही ताल) पृ० 75, 76
5. वीरेन डंगवाल, केले का पेड़ हाथी की याद (स्याही ताल) पृ० 89
6. वीरेन डंगवाल, कानपुर (स्याही ताल) पृ० 79
7. वीरेन डंगवाल, गंगा–स्तवन (स्याही ताल) पृ० 98

8. वीरेन डंगवाल, हमारी नींद (दुश्चक्र में स्रश्टा) पृ० 9
9. वीरेन डंगवाल, मल्लाह (कविता वीरेन) पृ० 43
10. वीरेन डंगवाल, रामसिंह (कविता वीरेन) पृ० 41
11. वीरेन डंगवाल, हाथी (कविता वीरेन) पृ० 59
12. वीरेन डंगवाल, इतने भले नहीं बन जाना साथी (कविता वीरेन) पृ० 33

सिम्पी (शोधार्थी)
शोध निर्देशक – डॉ० अनिशा
एम०डी०यू०–सी०पी०ए०एस०, गुरुग्राम
मेल – SIMPYPunia663@gmaill.com
मो०– 9996645663 7404829844

6

विकसित भारत 2047 के लक्ष्य और ई–गवर्नेंसः समावेशिता, पारदर्शिता और नवाचार की ओर

प्रो. (डॉ.) तपन कुमार शांडिल्य

सारांश

भारत वर्ष 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने की दिशा में तेजी से अग्रसर है। इस परिवर्तनकारी यात्रा में ई–गवर्नेंस (म–ळवअमतदंदबम) एक प्रभावशाली उपकरण के रूप में उभर कर सामने आया है, जो शासन को अधिक पारदर्शी (जतंदेचंतमदज), प्रभावी (मपिबपमदज), उत्तरदायी (बबवनदजंइसम) तथा नागरिक–केंद्रित (बपजप्रमद–बमदजतपब) बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है। यह शोध आलेख "विकसित भारत 2047" के व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति में ई–गवर्नेंस की भूमिका का विश्लेषण करता है।

इस अध्ययन का उद्देश्य ई–गवर्नेंस के विभिन्न पहलुओं को समझना, इसके प्रभावों का मूल्यांकन करना तथा इसके समक्ष विद्यमान चुनौतियों और संभावनाओं का विश्लेषण करना है। लेख में विशेष रूप से डिजिटल इंडिया, राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना (छमळच), Common Service Centres (CSCs), UMANG, DigiLocker, RTPS rFkk e-Office जैसी पहलों को केस स्टडी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

विभिन्न शोध अध्ययनों, नीतिगत दस्तावेजों, सरकारी रिपोर्टों तथा UN E-Government Survey 2022 जैसे अंतरराष्ट्रीय स्रोतों के आधार पर यह अध्ययन दर्शाता है कि ई–गवर्नेंस भारत के सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक ढाँचे में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। हालांकि, डिजिटल डिवाइड, डिजिटल साक्षरता की कमी, साइबर सुरक्षा और भाषाई विविधता जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, जिन्हें रणनीतिक दृष्टिकोण से संबोधित करने की आवश्यकता है।

अंततः यह अध्ययन निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि यदि ई–गवर्नेंस को नीति, प्रशासन और समाज के प्रत्येक स्तर पर समेकित किया जाए, तो यह "विकसित भारत 2047" की संकल्पना को वास्तविकता में बदलने का एक सशक्त माध्यम बन सकता है।

मुख्य शब्द कुंजीः ई–गवर्नेंस, विकसित भारत 2047, डिजिटल इंडिया, सुशासन, सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल समावेशन

1. प्रस्तावना

भारत वर्ष 2047 में अपनी स्वतंत्रता की शताब्दी मनाएगा। इस ऐतिहासिक अवसर को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने "विकसित भारत 2047" की परिकल्पना प्रस्तुत की है, जिसका उद्देश्य भारत को एक समावेशी, आत्मनिर्भर, नवाचार–आधारित, सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण और पर्यावरणीय रूप से संतुलित विकसित राष्ट्र बनाना है। यह परिकल्पना केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, डिजिटल सशक्तिकरण, शासन की पारदर्शिता और जलवायु उत्तरदायित्व जैसे बहुआयामी पहलुओं को भी सम्मिलित किया गया है।

इन व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति में ई–गवर्नेंस एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उभर कर सामने आया है। ई–गवर्नेंस का आशय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (प्ब्ज्) के माध्यम से सरकारी सेवाओं के डिजिटलीकरण तथा नागरिकों तक उनकी पहुँच को सरल, सुलभ और पारदर्शी बनाना है। यह केवल सेवा वितरण को आधुनिक नहीं बनाता, बल्कि शासन प्रणाली को डेटा–आधारित, नागरिक–केंद्रित और परिणामोन्मुखी भी बनाता है।

पिछले एक दशक में भारत ने डिजिटल इंडिया, राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना (छमळच) तथा विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे न्ड ।छळ, क्पहपस्वबामत और ब्ै के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन देखा है। इन पहलों ने सरकार और नागरिकों के बीच की दूरी को कम किया है तथा सेवाओं की गुणवत्ता और गति में उल्लेखनीय सुधार किया है।

इसी संदर्भ में यह शोधपत्र विश्लेषण करता है कि किस प्रकार ई–गवर्नेंस "विकसित भारत 2047" की परिकल्पना को साकार करने में एक प्रभावी उपकरण बन सकता है।

2. साहित्य समीक्षा

ई गवर्नेंस पर आधारित विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल प्रौद्योगिकी ने प्रशासनिक व्यवस्था के स्वरूप को महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित किया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग ने शासन प्रणाली को अधिक पारदर्शी, जवाबदेह तथा नागरिक केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ई गवर्नेंस का उद्देश्य केवल सरकारी सेवाओं का डिजिटलीकरण करना नहीं है, बल्कि शासन की प्रक्रिया को अधिक कुशल, सुलभ और समावेशी बनाना भी है। विभिन्न वैश्विक तथा भारतीय अध्ययनों में यह पाया गया है कि डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से नागरिकों और सरकार के बीच संवाद को सुदृढ़ किया जा सकता है तथा सेवा वितरण की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है। इस संदर्भ में उपलब्ध साहित्य ई गवर्नेंस की अवधारणा, उसके विकास, चुनौतियों तथा संभावनाओं पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

2.1 वैश्विक परिप्रेक्ष्य

संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित UN E Government Survey 2022 ई गवर्नेंस के वैश्विक परिदृश्य का व्यापक विश्लेषण

प्रस्तुत करता है। इस रिपोर्ट के अनुसार डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग प्रशासनिक सुधारों को गति देने और नागरिक सेवाओं को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। इस सर्वेक्षण में भारत को ई गवर्नमेंट डेवलपमेंट इंडेक्स के अंतर्गत उच्च प्रदर्शन करने वाले देशों की श्रेणी में स्थान प्राप्त हुआ है, जो यह दर्शाता है कि देश में डिजिटल सेवाओं के विस्तार और तकनीकी अवसंरचना में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि भारत ने ऑनलाइन सेवा सूचकांक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किया है और मोबाइल आधारित सेवाओं के माध्यम से नागरिक सहभागिता को बढ़ावा दिया है। इसके अतिरिक्त डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से प्रशासनिक सेवाओं को सरल और पारदर्शी बनाने के प्रयासों को भी वैश्विक स्तर पर सराहा गया है।

2.2 भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय संदर्भ में ई गवर्नेंस की अवधारणा को कई विद्वानों ने नागरिक केंद्रित प्रशासनिक परिवर्तन के रूप में देखा है। डवदहं के अनुसार ई गवर्नेंस केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं है बल्कि यह प्रशासनिक संरचना और कार्यप्रणाली में एक व्यापक सुधार की प्रक्रिया है। उनके अनुसार डिजिटल माध्यमों के उपयोग से सरकारी सेवाओं को नागरिकों के निकट लाया जा सकता है और पारंपरिक नौकरशाही संरचनाओं में मौजूद जटिलताओं को कम किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से प्रशासनिक जवाबदेही को भी सुदृढ़ किया जा सकता है और नागरिकों की शासन प्रणाली में सहभागिता को बढ़ाया जा सकता है।

Heeks ने ई गवर्नेंस के कार्यान्वयन में दो महत्वपूर्ण चुनौतियों की पहचान की है। पहली चुनौती डिजिटल डिवाइड से संबंधित है, जो समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी तक पहुँच की असमानता को दर्शाती है। दूसरी चुनौती डिजाइन रियलिटी गैप है, जिसमें नीतियों की अवधारणा और उनके वास्तविक क्रियान्वयन के बीच अंतर देखने को मिलता है। भ्ममो के अनुसार इन चुनौतियों से निपटने के लिए नीतियों को स्थानीय सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप डिजाइन करना आवश्यक है। इसके साथ ही चरणबद्ध कार्यान्वयन और विभिन्न हितधारकों की सक्रिय सहभागिता को भी महत्वपूर्ण माना गया है।

2.3 राष्ट्रीय नीतिगत पहलें और केस स्टडी

भारत सरकार ने वर्ष 2006 में राष्ट्रीय ई गवर्नेंस योजना प्रारंभ की, जिसका उद्देश्य सरकारी सेवाओं को नागरिकों तक सुलभ, किफायती और पारदर्शी तरीके से पहुँचाना था। इस योजना के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में कुल 27 मिशन मोड परियोजनाएँ प्रारंभ की गईं, जिनका उद्देश्य प्रशासनिक प्रक्रियाओं को डिजिटल माध्यम से अधिक प्रभावी बनाना था। इस योजना के माध्यम से कई महत्वपूर्ण डिजिटल प्लेटफार्म विकसित किए गए जिन्होंने सेवा वितरण प्रणाली को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया। कॉमन सर्विस सेंटर ग्रामीण क्षेत्रों में ई गवर्नेंस सेवाओं की अंतिम पंक्ति तक पहुँच सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये केंद्र नागरिकों को आधार सेवाएँ, बैंकिंग सुविधाएँ, पेंशन पंजीकरण, बीमा सेवाएँ और अन्य सरकारी योजनाओं से जोड़ने का कार्य करते हैं। इन केंद्रों के माध्यम से ग्रामीण उद्यमिता को भी बढ़ावा मिला है तथा डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण समुदायों को तकनीकी रूप से सशक्त बनाया गया है। झारखंड जैसे आदिवासी बहुल राज्यों में कॉमन सर्विस सेंटरों ने डिजिटल बैंकिंग, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं और पेंशन वितरण को सरल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। क्पहपच्ंल जैसी सेवाओं के माध्यम से महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को भी प्रोत्साहन मिला है।

इसके अतिरिक्त UMANG एप्लीकेशन एक ऐसा बहुसेवा डिजिटल मंच है जो विभिन्न सरकारी विभागों की सेवाओं को एक ही प्लेटफार्म पर उपलब्ध कराता है। इसके माध्यम से नागरिक पेंशन, पासपोर्ट, कर्मचारी भविष्य निधि और अन्य सेवाओं का लाभ ऑनलाइन प्राप्त कर सकते हैं। क्पहपस्वबामत भी ई गवर्नेंस की एक महत्वपूर्ण पहल है जो नागरिकों को उनके दस्तावेजों के सुरक्षित डिजिटल भंडारण की सुविधा प्रदान करता है। इससे प्रशासनिक प्रक्रियाओं में कागज के उपयोग में कमी आई है और दस्तावेजों के सत्यापन की प्रक्रिया अधिक सरल और पारदर्शी हुई है।

2.4 हाल के शोध और रिपोर्ट

हाल के वर्षों में विभिन्न सरकारी और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ई गवर्नेंस के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। नीति आयोग की Strategy for New India /75 रिपोर्ट में ई गवर्नेंस को प्रशासनिक आधुनिकीकरण की आधारशिला बताया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से नीति निर्माण अधिक डेटा आधारित हो गया है और योजनाओं के कार्यान्वयन की निगरानी अधिक प्रभावी ढंग से की जा रही है। इसके साथ ही डलळवअ जैसे डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से नागरिकों की नीति निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता भी बढ़ी है।

इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा प्रकाशित Digital India प्रगति रिपोर्टों में भी डिजिटल शासन की

उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है। इन रिपोर्टों के अनुसार DigiLocker के करोड़ों उपयोगकर्ता हैं और UMANG प्लेटफार्म पर हजारों सरकारी सेवाएँ उपलब्ध कराई जा चुकी हैं। इसके अतिरिक्त भारतनेट परियोजना के माध्यम से लाखों ग्राम पंचायतों को ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क से जोड़ा गया है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं की पहुँच का विस्तार हुआ है। इन पहलों ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं को अधिक पारदर्शी, प्रभावी और नागरिक अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

3. उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य विकसित भारत 2047 की परिकल्पना के संदर्भ में ई–गवर्नेंस की भूमिका का समग्र विश्लेषण करना है। वर्तमान समय में शासन व्यवस्था में डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, जिससे प्रशासनिक प्रक्रियाएँ अधिक पारदर्शी, प्रभावी और नागरिक–केंद्रित बन रही हैं। इस अध्ययन का पहला उद्देश्य यह समझना है कि ई–गवर्नेंस किस प्रकार विकसित भारत 2047 के लक्ष्यों जैसे समावेशी विकास, पारदर्शिता, दक्षता और उत्तरदायी शासन को प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

दूसरा उद्देश्य भारत में ई–गवर्नेंस की प्रमुख उपलब्धियों और उससे संबंधित चुनौतियों का अध्ययन करना है। इसमें डिजिटल अवसंरचना, सेवा वितरण प्रणाली, डिजिटल साक्षरता, तथा तकनीकी असमानताओं जैसे पहलुओं का विश्लेषण किया जाएगा।

तीसरा उद्देश्य नीति–निर्माताओं और प्रशासनिक संस्थाओं के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना है, ताकि ई–गवर्नेंस की प्रभावशीलता को और अधिक सुदृढ़ किया जा सके तथा डिजिटल शासन के माध्यम से नागरिकों को बेहतर और सुलभ सेवाएँ प्रदान की जा सकें।

4. शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसका उद्देश्य भारत में ई–गवर्नेंस की भूमिका, उसके प्रभाव तथा विकसित भारत 2047 की परिकल्पना में उसके योगदान का अध्ययन करना है। इस शोध में मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इन स्रोतों में विभिन्न सरकारी रिपोर्टें, नीतिगत दस्तावेज, नीति आयोग के रणनीतिक प्रकाशन, UN E–Government Survey, डिजिटल इंडिया से संबंधित आधिकारिक रिपोर्टें तथा ई–गवर्नेंस पर आधारित शैक्षणिक शोध पत्र शामिल हैं। इन स्रोतों के माध्यम से ई–गवर्नेंस की नीतियों, कार्यक्रमों और उनके प्रभावों का समग्र विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन में केस स्टडी दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसके अंतर्गत भारत सरकार की प्रमुख ई–गवर्नेंस पहलों जैसे UMANG DigiLocker Common Service Centres RTPS और MyGov प्लेटफॉर्म का विश्लेषण किया गया है। इन पहलों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि डिजिटल प्रौद्योगिकी किस प्रकार सरकारी सेवाओं की उपलब्धता, पारदर्शिता और दक्षता को बढ़ाने में सहायक बन रही है।

इस शोध में विषयगत विश्लेषण की पद्धति का भी उपयोग किया गया है, जिसके माध्यम से ई–गवर्नेंस के प्रमुख आयामों जैसे पारदर्शिता, सेवा सुलभता, नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक नवाचार का अध्ययन किया गया है। इसके आधार पर अध्ययन में नीतिगत निष्कर्ष और सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

5. विश्लेषण एवं चर्चा

ई–गवर्नेंस ने भारत में प्रशासनिक प्रणाली को अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और नागरिक केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डिजिटल तकनीकों के माध्यम से सरकारी सेवाओं की उपलब्धता और दक्षता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। यह खंड ई–गवर्नेंस की प्रमुख उपलब्धियों, विकसित भारत 2047 के लक्ष्यों के साथ इसके संबंध तथा इसके समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

5.1 ई–गवर्नेंस की प्रमुख उपलब्धियाँ

भारत में डिजिटल शासन की विभिन्न पहलों ने सेवा वितरण प्रणाली को अधिक सरल और सुलभ बनाया है। सरकारी योजनाओं और सेवाओं को डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से नागरिकों तक पहुँचाने से प्रशासनिक प्रक्रियाओं में पारदर्शिता और दक्षता बढ़ी है। निम्नलिखित तालिका ई–गवर्नेंस की प्रमुख उपलब्धियों को दर्शाती है।

सेवावितरण के क्षेत्र में UMANG और क्पहपस्वबामत जैसे प्लेटफार्मों ने नागरिकों को विभिन्न सरकारी सेवाएँ ऑनलाइन उपलब्ध कराई हैं, जिससे सरकारी कार्यालयों पर निर्भरता कम हुई है। पारदर्शिता के क्षेत्र में RTI Online और CPGRAMS जैसी प्रणालियों ने नागरिकों को शिकायत दर्ज करने और सूचना प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की है। इसी प्रकार DBT और जन धन योजना के माध्यम से सरकारी लाभ सीधे लाभार्थियों के बैंक खातों में पहुँचने लगे हैं, जिससे बिचौलियों की भूमिका कम हुई है। कॉमन सर्विस सेंटर और डिजिटल ग्राम योजनाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता और सेवा उपलब्धता को बढ़ावा दिया है।

5.2 विकसित भारत 2047 और ई–गवर्नेंस

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना में ई–गवर्नेंस को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जा रहा है। समावेशी विकास के दृष्टिकोण से कॉमन सर्विस सेंटर और डिजिटल ग्राम योजनाओं ने ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं की पहुँच को बढ़ाया है। इससे उन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को भी सरकारी योजनाओं का लाभ मिल रहा है जहाँ पहले प्रशासनिक पहुँच सीमित थी।

तकनीकी नवाचार के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, ई–ऑफिस और डिजिटल डैशबोर्ड जैसे उपकरण प्रशासनिक दक्षता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इन तकनीकों के माध्यम से सरकारी विभागों के कार्यों की निगरानी अधिक प्रभावी तरीके से की जा रही है। इसके अतिरिक्त पेपरलेस प्रशासन को बढ़ावा देने से पर्यावरणीय स्थिरता की दिशा में भी सकारात्मक कदम उठाए जा रहे हैं। सामाजिक न्याय के क्षेत्र में ऑनलाइन छात्रवृत्ति पोर्टल, ज्च्ै और अन्य डिजिटल सेवाओं ने वंचित वर्गों के लिए अवसरों की समानता सुनिश्चित करने में योगदान दिया है।

5.3 प्रमुख चुनौतियाँ

हालाँकि ई–गवर्नेंस के अनेक सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं, फिर भी इसके प्रभावी कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ मौजूद हैं। इन चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

डिजिटल डिवाइड के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच डिजिटल सेवाओं की पहुँच में असमानता बनी हुई है। इसी प्रकार डिजिटल साक्षरता की कमी भी ई–गवर्नेंस के प्रभावी उपयोग में बाधा उत्पन्न करती है। साइबर सुरक्षा से संबंधित खतरे और डेटा गोपनीयता के मुद्दे भी महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में सामने आते हैं। इसके अतिरिक्त भारत की भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए डिजिटल प्लेटफार्मों को क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। इन चुनौतियों का समाधान प्रभावी नीति निर्माण, तकनीकी निवेश और जन जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से किया जा सकता है।

6. निष्कर्ष

ई–गवर्नेंस आधुनिक शासन व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतीक बनकर उभरा है। यह केवल प्रशासनिक प्रक्रियाओं के डिजिटलीकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि शासन की कार्यप्रणाली, दृष्टिकोण और नागरिकों के साथ उसके संबंधों में व्यापक परिवर्तन लाता है। डिजिटल तकनीकों के उपयोग से सरकारी सेवाएँ अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और नागरिक केंद्रित बन रही हैं। इससे न केवल प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि हुई है, बल्कि नागरिकों की शासन प्रणाली में सहभागिता भी बढ़ी है।

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना के संदर्भ में ई–गवर्नेंस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह शासन और नागरिकों के बीच की दूरी को कम करने के साथ साथ सेवा वितरण को अधिक प्रभावी और सुलभ बनाता है। UMANG DigiLocker Common Service Centres RTPS तथा अन्य डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से सरकारी सेवाएँ अब सीधे नागरिकों तक पहुँच रही हैं। इन पहलों ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाने के साथ साथ भ्रष्टाचार को कम करने और जवाबदेही को सुदृढ़ करने में भी योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से नागरिकों को नीति निर्माण और शासन प्रक्रिया में सहभागी बनने का अवसर भी प्राप्त हो रहा है।

हालाँकि ई–गवर्नेंस के विस्तार के साथ कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। डिजिटल डिवाइड के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच तकनीकी पहुँच में असमानता बनी हुई है। इसी प्रकार डिजिटल साक्षरता की कमी और साइबर सुरक्षा से जुड़े जोखिम भी प्रशासनिक प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए मजबूत डिजिटल अवसंरचना, व्यापक डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों और प्रभावी साइबर सुरक्षा तंत्र की आवश्यकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि यदि ई–गवर्नेंस को प्रभावी नीतियों, तकनीकी नवाचार और नागरिक सहभागिता के साथ आगे बढ़ाया जाए, तो यह विकसित भारत 2047 की परिकल्पना को साकार करने में एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है। डिजिटल शासन के माध्यम से भारत एक अधिक समावेशी, पारदर्शी और उत्तरदायी प्रशासनिक व्यवस्था की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

7. सिफारिशें

ई–गवर्नेंस की प्रभावशीलता को बढ़ाने और विकसित भारत 2047 के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण नीतिगत सिफारिशें आवश्यक हैं। इन सिफारिशों का उद्देश्य डिजिटल सेवाओं की पहुँच को व्यापक बनाना, प्रशासनिक पारदर्शिता को सुदृढ़ करना और नागरिकों की सहभागिता को बढ़ावा देना है।

7.1 डिजिटल समावेशन

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में डिजिटल समावेशन अत्यंत महत्वपूर्ण है। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में अभी भी इंटरनेट कनेक्टिविटी, स्मार्टफोन की उपलब्धता और डिजिटल सेवाओं की जानकारी सीमित है। इसलिए मोबाइल आधारित सेवाओं को

प्राथमिकता दी जानी चाहिए ताकि नागरिक सरल माध्यम से सरकारी सेवाओं का लाभ प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही कॉमन सर्विस सेंटर और डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों को सुदृढ़ कर ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच को और अधिक व्यापक बनाया जा सकता है।

7.2 बहुभाषीय प्लेटफॉर्म

भारत की भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए ई–गवर्नेंस प्लेटफार्मों को क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराना आवश्यक है। वर्तमान में कई सरकारी पोर्टल मुख्यतः अंग्रेजी या हिंदी में उपलब्ध हैं, जिससे अनेक नागरिकों को सेवाओं का उपयोग करने में कठिनाई होती है। यदि डिजिटल सेवाएँ स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध होंगी तो नागरिकों की सहभागिता बढ़ेगी और सेवा वितरण अधिक प्रभावी बनेगा।

7.3 साइबर सुरक्षा

जैसे जैसे सरकारी सेवाएँ डिजिटल माध्यम से उपलब्ध हो रही हैं, साइबर सुरक्षा का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। नागरिकों की व्यक्तिगत और संवेदनशील जानकारी की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सरकारी संस्थानों में डेटा संरक्षण तंत्र को मजबूत किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक प्रमुख सरकारी विभाग में कंज च्तवजमबजपवद वचिबमते की नियुक्ति की जा सकती है जो डेटा प्रबंधन और साइबर सुरक्षा से संबंधित नीतियों की निगरानी करेंगे।

7.4 नागरिक सहभागिता

ई–गवर्नेंस की सफलता नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर भी निर्भर करती है। डलळवअ जैसे डिजिटल प्लेटफार्मों को अधिक इंटरैक्टिव और सहभागी बनाया जाना चाहिए ताकि नागरिक अपनी राय, सुझाव और प्रतिक्रियाएँ सीधे सरकार तक पहुँचा सकें। इससे नीति निर्माण प्रक्रिया अधिक पारदर्शी और सहभागी बन सकती है तथा शासन व्यवस्था में नागरिकों का विश्वास भी मजबूत होगा।

संदर्भ

1- Government of India- (2020)- Digital India programme: Impact assessment report- Ministry of Electronics and Information Technology-

2- Government of India- (2022)- Economic survey 2021–22- Ministry of Finance-

3- Heeks] R- (2002)- E–government in developing countries: Realising the benefits- Manchester UK: Institute for Development Policy and Management] University of Manchester-

4- International Telecommunication Union- (2022)- Measuring digital development: Facts and figures 2022- ITU-

5- Ministry of Electronics and Information Technology- (2021)- India enterprise architecture framework (IndEA)- Government of India-

6- Ministry of Electronics and Information Technology- (2023)- Digital India programme: Progress and achievements report- Government of India-

7- Ministry of Rural Development- (2022)- Common service centres and digital inclusion in rural India- Government of India-

8- Ministry of Women and Child Development- ¼2023½- Poshan Abhiyaan progress report- Government of India-

9- Monga] A- (2008)- E&government in India: Opportunities and challenges- Journal of Administration and Governance 3(2) 52–61

10- MyGov India- (2023)- Citizen engagement through digital participation platforms- Government of India-

11- National e&Governance Division- (2023)- UMANG platform and integrated service delivery framework- Government of India-

12- National Informatics Centre- (2023)- Government e&governance services and digital platforms in India- Government of India-

13- NITI Aayog- (2018)- Transformation of aspirational districts programme: Programme framework- Government of India-

14- NITI Aayog- (2022)- Strategy for New India @75- Government of India-

15- Organisation for Economic Co&operation and Development- (2020)- Digital government review of public sector transformation- OECD Publishing-

16- Press Information Bureau- (2023)- Achievements of Digital India initiative- Government of India-

17- United Nations Development Programme- (2021)- Digital governance and inclusive development- UNDP-

18- United Nations- (2022)- United Nations e&government survey 2022: The future of digital government- United Nations Department of Economic and Social Affairs-

19- World Bank- (2020)- GovTech maturity inde•: The state of digital government transformation- World Bank-

20- World Bank- (2021)- Digital government for development: Improving public service delivery- Washington] DC: World Bank-

प्रो. (डॉ.) तपन कुमार शांडिल्य
पूर्व कुलपति, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी
विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड।
प्रधानाचार्य, टी.पी.एस. कॉलेज, पटना।

7

A StudyonIndia EXIM Policy2025. Policy, Progress and Innovation

Dr. Santosh Kumar Sharma

ABSTRACT

This studyexplores the evolving landscape of India's Export-Import (EXIM) sector in the context of the EXIM Policy2021–2026,withafocusedout looktoward 2025.Itexamineskeypolicyinitiatives,structuralreforms,and institutional frameworks driving foreign trade. The research highlights India's progress in diversifying export markets, improvinglogisticsinfrastructure,andleveragingdigitalplatformssuchasICEGATEande-SANCHIT. Furthermore, the study evaluates innovative strategies including Production Linked Incentive (PLI) schemes, sector-specific export hubs, and sustainability-driven trade practices. By assessing trade performance indicators and policy outcomes, the paper presents a comprehensive view of India's ambitions to become a major global tradingpowerby2025.Thefindings underscore the need for integrated trade facilitation, skill development,and innovation to ensure inclusive and resilient growth in the EXIM sector.

Key Terms: Export-Import (EXIM) Policy, India Foreign Trade, EXIM 2025, Trade Facilitation, PLI Scheme, Digital Trade Platforms, Export Diversification, Trade Innovation, Logistics Infrastructure, Sustainability in Trade

INTRODUCTION

India's Export-Import (EXIM) sector plays a pivotal role in driving economic growth, enhancing global competitiveness, and creating employment opportunities. With the launch of the EXIM Policy 2021–2026, the Government of India has laid a strong foundation for transforming the foreign trade ecosystem by 2025. The policyfocusesonsimplifyingprocedures,promotingdigitalization,incentivizingmanufacturingthroughschemes like the Production Linked Incentive (PLI), and expanding India's presence in global value chains. This study aims to analyze the progress made so far, assess the impact of key policy reforms, and explore innovative approaches adopted tostreng then the EXIM frame work.In the contextofshifting global tradedynamics, India's EXIM strategy for 2025 is both timely and crucial for building a resilient and future-ready economy.

NEEDS OF THE STUDY

Changing Global Trade Dynamics

With evolving international trade relationships, understanding India's EXIM (Export-Import) policy is vital toevaluate its responsiveness to global economic shifts, tariffs, and trade agreements.

Alignment with National EconomicGoals

India'stargettobecomea$5trillioneconomyrequiresastrategic EXIMpolicythatsupportsexportgrowth,self-reliance (Atmanirbhar Bharat), and reduced trade deficits.

Policy Innovationand Technological Integration

The 2025 policy focuses on digitization, ease of doing business, and block chain-enabled trade areas that require academic and industrial attention for effective implementation.

Support for MSMEs and Startups

There is a critical need to analyze how then ewpolicy supports Micro, Smalland Medium Enterprises (MSMEs) and startups in reaching global markets.

Sustainability and GreenTrade

The inclusion of climate-conscious trade practices and eco-friendly logistics in the policy calls fordetailed research into their feasibility and effectiveness.

SCOPE OFTHE STUDY

Policy Frame work Analysis

Examine the structural changes in EXIM Policy 2025 compared to earlier versions (e.g., 2015-2020), including trade facilitation reforms, sectoral focus, and policy incentives.

Export Promotion Measures

Exploreexportpromotioncouncils,financialincentives,andtradefairs,andhowtheyhaveevolvedorbeen introduced under the 2025 policy.

Technological Advancements

Study how digital platforms,paper less documentation, and AI-drivencustoms clearan ceare being integrated intotrade processes.

Impact on Key Sectors

Assessthepolicy'sinfluenceonsectorslikepharmaceuticals,textiles,electronics,and agriculture.

Comparative Trade Position

Analyze how the policy positions India agains to ther developing economies likeVietnam, Indonesia, and Bangladesh.

Innovation in Policy Instruments

Under stand new policy instruments suchas Districts as Export Hubs (DEHs),e-commerce exports, and value-added exports.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY

Policy Guidance for Stakeholders

Helps policymakers, exporters, industrybodies,and trade facilitators to underst and the effectiveness and are as of improvement in the 2025 EXIM Policy.

Contributionto Trade Strategy Development

Chart1.1showsMonthly Export and Import Values

Month	TotalExports	TotalImports	TradeDeficit
April 2024	64.56	70.56	-6
May2024	68.29	78.58	-10.29
June2024	65.45	72.95	-7.5
July2024	62.42	74.05	-11.63
August2024	65.4	76.77	-11.37
September2024	65	72.33	-7.33
October2024	73.2	76.2	-3
November 2024	67.8	72.53	-4.73
December2024	68.5	72.13	-3.63
January 2025	68.1	76.77	-8.67
February2025	71.95	67.52	4.43
March 2025	73.61	77.23	-3.62
Total(FY2024-25)	820.93	915.19	-94.26

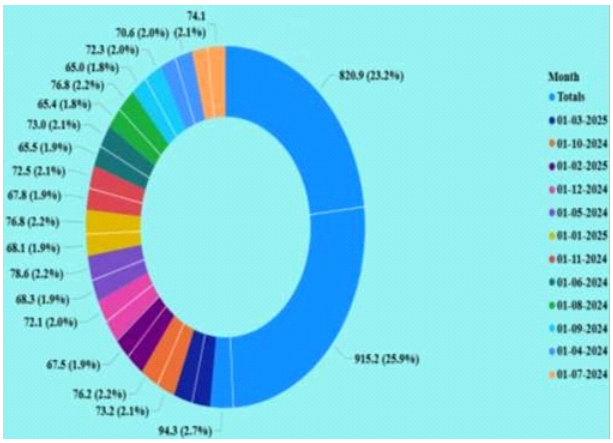

Top10CommoditiesExportedfromIndia

India's commodity exports, totaling $437.42 billion, are led by engineering goods and mineral fuels, as shown below: 1.2

Rank	Commodity	Export Value	HSNCode(2-Digit)	TopImporting Country
1	MineralFuels,Oils, and Products	75.4	27	UnitedStates
2	Engineering Goods	108	84, 85, 87	UnitedStates
3	Gemsand Jewellery	32.5	71	UnitedStates
4	Pharmaceuticals	30	30	UnitedStates
5	OrganicChemicals	15	29	UnitedStates
6	TextilesandApparel	13.5	50-63	UnitedStates
7	ElectricalMachinery,Equipment	40.2	85	UnitedStates
8	Machinery,Computers	32.5	84	UnitedStates
9	IronandSteel	12	72,73	UnitedArab Emirates
10	VehiclesandParts	10.5	87	UnitedStates

Table listing India's top 10 exported commodities for FY 2024-25, showing export values (USD billion), HSN codes,andtopimportingcountries.Engineeringgoods leadat $108B(HS 84,85,87),followedbymineral fuels at $75.4B (HS 27), mostly to the US.

Engineering goods,at$108billion,under score India'smanu facturing prowess,with theUSas the to pdestination for nine of the top ten commodities, highlighting market concentration risks.

Chart1.2showsCommoditiesExportedfrom India

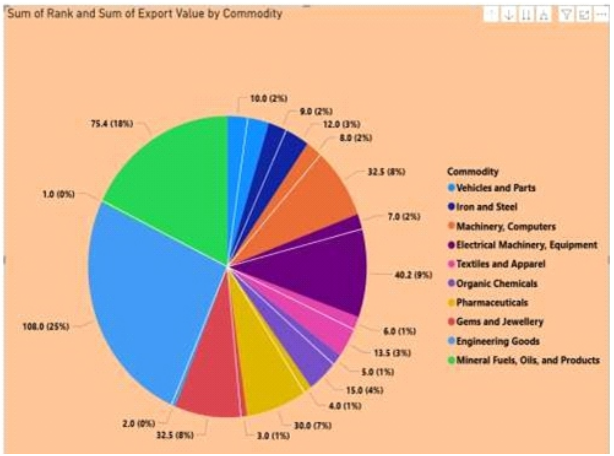

Top10CommoditiesImportedintoIndia

India'simports,at$678.69billion, are dominated byenergyandhigh-tech goods,asdetailedbelow:1.3

Table listing India's top 10 imported commodities for FY2024-25, showing values in USD billion, HSN codes, and top exporting countries. Includes Mineral Fuels ($220.6B, HS 27, Iraq), Electrical Machinery ($84.9B, HS 85, China), and Gems ($69.4B, HS 71, Switzerland), highlighting trade patterns.

Crude petroleum imports, at $220.60 billion from Iraq, reflect India's energy dependency, while China dominates electrical machinery imports at $84.90 billion, highlighting supply chain vulnerabilities.

Rank	Commodity	Import Value	HSNCode(2-Digit)	Top Exporting Country
1	MineralFuels,Oils(Crude Petroleum)	220.6	27	Iraq
2	Electrical Machinery, Equipment	84.9	85	China
3	Gems, Precious Metals (Gold)	69.4	71	Switzerland
4	Machinery,Computers	50.6	84	China
5	Coal,Coke,Briquettes	47	27	Australia
6	OrganicChemicals	29.81	29	China
7	Plastics,PlasticArticles	22.72	39	China
8	IronandSteel	20	72,73	South Korea
9	Fertilizers	15	31	China
10	Aircraft, Spacecraft	14	88	UnitedStates

Chart1.3 Commodities Imported in to India

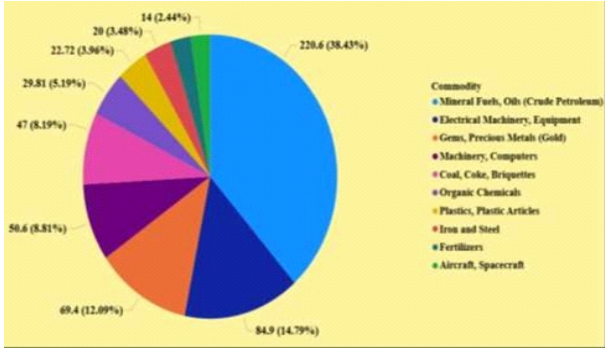

Top10CountriesforServicesExportsandImports

Servicestrade,at$387.50billionin exportsand$ 236.5billion in imports, isled by the following countries table: 1.4

Rank	Country	Services Exports	Primary Export Categories	Services Imports	Primary Import Categories
1	United States	110	Software/IT, BÑÏ, Consulting	35	Financial, Consulting
2	United Kingdom	30	Software/IT, BÂÑÏ	10	Financial, Education
3	Singapore	20	Software/IT, Financial	15	Financial, Transport
4	Germany	15	Software/IT, R&D	8	Consulting, R&D
5	Netherlands	12	Software/IT, Consulting	6	Financial, Consulting
6	Japan	10	Software/IT, BÑÏ	5	Consulting, Financial
7	Canada	8	Software/IT, BÑÏ	4	Education, Consulting
8	Australia	7	Software/IT, Education	3.5	Education, Financial
9	HongKong	6	Software/IT, Financial	4.5	Financial, Transport
10	UnitedArab Emirates	5	Software/IT, Consulting	5.5	Transport, Financial

TableshowingIndia'stop10countriesforservicesexportsan dimportsinFY2024-25.Columns:Rank,Country, Services Exports ($B), PrimaryExport Categories, Services Imports ($B), PrimaryImport Categories. US leads exports ($110B, IT/BPO) and imports ($35B, Financial). Data in USD billions.

The US dominatesservices exportsat $110 billion, particularlyin ITand BPO, while imports from the US ($35 billion) are led byfinancial and consulting services, underscoring India's integration into global service chains

Chart1.4 Shows Services Exports and Imports

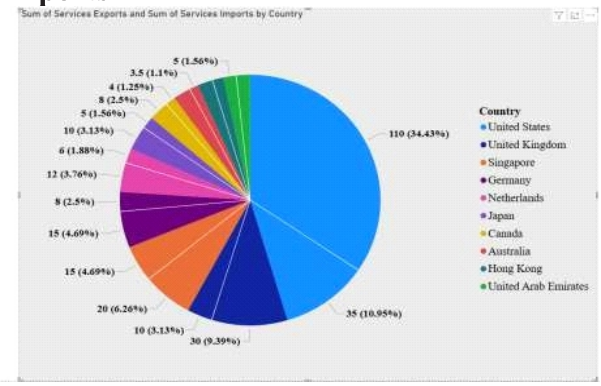

SupportingIndia's$2TrillionExport Dream

'Indias ambitious goal of achieving $2trillion in annual exports by 2030, atargetset by the Government of India to establish the country as a global trade powerhouse. In FY 2024-25, India's total exports (merchandise and services combined) reached $820.93 billion, comprising $437.42 billion in merchandise exports and $387.50 billion in services exports.To hit the $2 trillionmark in just six years, exports must grow at a compound annual growth rate (CAGR) of 19.5%, asteep challenge given the current growth rates of 0.08%former chand ise exports (nearly flat compared to $437.06 billion in FY 2023-24) and 12.45% for services exports.

The foundation for this dream lies in the robust per for manse of services exports, particularly in Computer Services (IT) ($182billion,17% CAGR)and Professional Consulting ($66billion, 17%CAGR), which outper formglobal growth rates (10% and 12%, respectively). These sectors, driven by demand from the United States (28% of services exports, $110 billion), benefit from India's cost-competitive workforce and digital infrastructure. Government initiatives, such as the Production Linked Incentive (PLI) scheme, with a $24 billion allocation for sectors like electronics and pharmaceuticals, aim to boost merchandise exports by incentivizing domestic manufacturing and reducing import dependency. For example, the PLI scheme has spurred electronics exports (part of engineering goods, $108 billion), positioning India as a manufacturing hub

However, significant challenges loom. Global economic uncertainties, including potential US tariffs (hinted for 2025), inflation, and geopolitical tensions, could dampen demand. India's heavy reliance on the US market for both services(28%) and commodities (e.g.,17% of engineering goods) posesa risk, as as low down in US demand could derail growth. The trade deficit of $94.26 billion, while improved from $121.62 billion in FY 2022-23, reflects persistent import dependency, particularly for crudepetroleum ($220.60billion)and electrical machinery ($84.90 billion from China).To mitigate these risks, India must diversify into emerging markets such as Africa (e.g., Nigeria for agricultural exports) and ASEAN (e.g., Singapore, $20 billion in services exports). Strengthening manufacturing through PLI and infrastructure investments, alongside trade agreements like the India-AustraliaECTAandIndia-UAECEPA, could bridge the gap.These effortsalign with India's strat egictrade policies, such as the Foreign Trade Policy2023,whichemphasizesexport diversificationand global value chain integration.

Critical Perspective:The19.5%CAGRrequired for$2trillionisambitious,given merchandise export stagnation and global headwinds. Services exports, while strong, cannot alone close the gap without accelerated manufacturing growth. Diversification to ASEAN and Africa is promising but requires faster implementation of trade agreements and infrastructure upgrades to compete with China's export dominance.

Opportunities in India

The FY2024-25tradedataunveilsawealthof opportunities for trade compliance professionals, startups, MSMEs, and SMEs in India's export-import ecosystem. These opportunities align with the high-demand sectors and government initiatives, offering pathways to capitalize on India's trade growth and $2 trillion export ambition.

1.Opportunities for Trade Compliance Professionals

• HSN Expertise as a Career Advantage: Proficiency in HSN classification positions professionals as key assets in customs brokerage, logistics, and corporate trade compliance. For example, accurately classifying HS 85 (electrical machinery, $84.90 billion imports) ensures compliance with India's 7.5% average import duty,saving firms millions. Professional scan offer consultancy services to MSMEs,which often lack in-house HSN expertise, charging $500–$2,000 per project.

• Navigating FTAs: India's FTAs with UAE, Australia, and ASEAN require precise HSN-based tariffconcessions. Professionals canassist firm sinleveraging these agreements,suchaszero-duty exports of pharmaceuticals (HS 30, $30 billion) to Australia.

• Digital Compliance Tools: Develop or implement HSN-based software for customs automation, addressingthe10% digital adoptionrate among MSMEs. Startups like ClearTax offer HSN look up tools, creating demand for tech-savvy compliance experts.

• Training and Certification: Offer HSN training programs through platforms like ni-msme or private consultancies, targeting the 5.7 crore registered MSMEs needing compliance skills.

2. Opportunities for Startups∴

• IT and Consulting Services: The $182 billion IT services export market (17% CAGR) offers startups opportunities to develop SaaS products(e.g.,AI-drivenanalytics, cyber security)forglobalSMEs, following models like Zoho. Importing software tools (e.g., from the US, $35 billion) enhances product development for export.

• E-commerce Platforms: Launch platforms for gems and jewellery ($32.50 billion exports) or pharmaceuticals ($30 billion), targeting US consumers via India MART or Trade India.

• Green Tech: Develop biofuel or renewable energy solutions for mineral fuels exports ($75.40 billion), aligning with the National Biofuel Policy and global sustainability trends.

• Logistics Tech: Create solutions for crude petroleum ($220.60 billion imports) supply chains, optimizing logistics from Iraq using HSN-based tracking systems.

3. OpportunitiesforMSMEsand SMEs

- Engineering Goods Exports: Manufacture precision components (e.g., auto parts, HS 87, $10.50 billion) for US markets, leveraging PLI scheme ($24 billion) and Export Promotion Capital Goods (EPCG) for duty-free machinery imports.
- Value-Added Imports: Import gold ($69.40 billion, Switzerland) or organic chemicals ($29.81 billion, China) for jewellery($32.50 billion exports) or pharmaceutical production ($30 billion exports), using Gold Monetization Scheme or PLI for Pharmaceuticals.
- Services Outsourcing: Offer BPO ($58 billion) or consulting ($66 billion) services to US/UK clients via GeM or NASSCOM, supported by Pradhan Mantri MUDRAYojana (PMMY) ($47.6 billion loans).
- Agricultural Exports: Expand into new markets (e.g., Nigeria, Switzerland) for processed foods, supported by Agricultural and Processed Food Products Export Development Authority (APEDA).

4.Government Support and Financing

- Financing Access:Address the$333billion MSME financing gap with PMMY,Credit Guarantee Fund TrustforMSMEs(CGTMSE),andSelf-Reliant India(SRI)Fund($910millioninvested).IFC's $267millioninvestmentsinShriram Finance and Federal Bank provide working capital loans.
- Export Incentives:Utilize Raisingand Accelerating MSME Performance (RAMP) ($85.49million) to reduce compliance costs and MSME SAMADHAAN for timely payments.
- Startup Support:Startup India offers tax exemptions and$1.5billionfunding,whileTREAD grants up to INR 30 lakh for women-led MSMEs (38% of MSMEs).
- Cluster Development: Microand Small Enterprises Cluter Development Programme (MSE-CDP) supports export-oriented units inTier-2/3 cities, reducing costs for BPO or engineering goods firms.
- **5. Critical Perspective**

The opportunities are vast, but challenges include US market reliance (28% services, 17% commodities), China import dependency(16.7%),andlow digital adoption (10%among MSMEs). Professionals and businesses must diversify toASEAN/ Africa, adopt HSN-based digital tools, and leverage FTAs to compete with China's export dominance.Bureaucraticdelaysandlow schemeawareness (20%GeMusage) require proactive

engagement with Udyam and trade councils like EEPC, GJEPC, and Pharmexcil.

6. Actionable Steps

- For Professionals: Obtain HSN certifications via WCO or ni-msme, offer consultancy on GeM, and develop HSN-based compliance software.· For Startups: Registeron Startup India, target US/UK for IT/ consulting, and importvia EPCGfor value addition.
- ForMSMEs/SMEs: JoinUdyam, list onGeM/IndiaMART, and accessPLI/PMMY for export financing.
- ForAll:AttendCII/FICCItradefairs,upskillviani-msme, and explore ASEAN/ Africamarkets.

FINDINGS

- Total Exports: $820.93billion (Merchandise:$ 437.42B; Services: $387.50B).
- TotalImports:$915.19billion→ TradeDeficit:$94.26 billion.
- Services exports grewby12.45%,whilemerchandise exports remained stagnant.
- February 2025 recordedar are trade surplus due to lower merchandise imports.
- Top Exported Commodities:Engineering goods($108B),Mineralfuels ($75.4B), Gems/ Jewellery ($32.5B).
- TopImport Commodities: Crude Petroleum ($220.6B), Electrical Machinery ($84.9B),Gold ($69.4B).
- High concentration of both exports and imports with USA (28%) and China (16.7%), exposing India to market risk and supply chain vulnerabilities.
- FocusonRoDTEP,creditaccessforMSMEs,digitaltrade,andinfrastructure development.
- Make in India , import substitution , and export promotion are recurring themes. PLIschemes, credit access mechanisms (PMMY,CG
- MSE), and start up incentives aim to strengthen domestic manufacturing.
- Services sector (especially IT and consulting) remains the strongest pillar of India's exports.
- HSN class ification, FTAutilization, digital tools, and training offer revenue streams for professionals.
- Startups/MSMEs can grow in engineering goods, digital platforms, logistics tech, and services out sourcing.
- Government schemes remain underutilized only10% MSMEs adopt digital tools, 20% use GeM portal.

SUGGESTIONS

- Reduce dependence on the US and China by expanding to Africa(e.g.,Nigeria)andASEAN(e.g., Singapore).
- Promotenon-traditional exports such asagro-tech,biofuels, and medical devices.
- Use PLI and EPCG schemes to scale up value-added manufacturing in engineering, electronics, and pharmaceuticals.
- Encourageimportsubstitutioninhigh-dependencyareaslike electricalmachineryand chemicals.
- EncourageMSMEstoengagein HSN-based training,FTA compliance,and customs automation.
- Promotewidespreaduseofdigitalcompliance tools,withincentivesfortechadoption.
- Fast-track the extension of Trade Infrastructure for Export Scheme(TIES).
- Develop logistics hubs and digital corridor saligned with India's major export clusters.
- Conduct mass-scale outreach for GeM,Udyam, Startup India, and other schemes.
- Create multilingual contentan dregional awareness programs forTier-2 and Tier-3cities.
- Simplify MSME creditaccess by expanding alternate lending plat forms and fintech tools.
- Enhance coordination between banks, NBFCs, and SIDBIforreal-time funding solutions.

CONCLUSIONS

India's $2 trillion export goal by 2030 is possible but challenging**,** requiring a 19.5% CAGR much higher than current rates, especially in merchandise exports. Services exports, especially IT and consulting, remain India's most competitive segment and will likely continue to drive trade growth. With out robust growth in manufacturing exports, India's overall trade ambitions will remain limited. The success of PLI schemes and infrastructure development is critical.

Heavy reliance on the US and China creates strategic vulnerabilities. India must de-risk by diversifying trade partners and sourcing markets. For MSMEs to scale exports, digital adoption of

compliance tools, logistics platforms,ande-commercemustincreasefromthecurrentlowbase.While India'sFTPandgovernmentschemes are well-intentioned, execution gaps especially in awareness, accessibility, and adoption must be addressed urgently.

REFERENCES

GovernmentofIndia,MinistryofCommerceandIndustry. (2023). Foreign Trade Policy 2023–2028.

DGFT.GovernmentofIndia.(2025).

DGFTimportpolicyrevisionsinBudget2025. India Exim Bank. (2025).

Exportforecastsandsectoralimpactanalysis. Exim Bank. (2025).

CommentaryonU.S.26%tariffimpact. Ramli, M. S. B. (2025).

Intelligent Automation for FDIFacilitation: Optimizing Tariff ExemptionProcesses with OCRand LLM. arXiv.

Niemi,M.,Nordfors,N.,&Tompsett,A.(2025). Tradeandpollution:EvidencefromIndia.arXiv.

Newspapers and media. (2025).

India-UKFTA,India–EFTATEPA,India-USBT Anegotiations.

Dr. Santosh Kumar Sharma (Ph.D)
M.COM, PGDIM MAT.MGMT.MBA, LLB,
LLM WITH Ph.D.
H.NO.5113SECTOR-3 FBD-
PIN CODE 121004
Mo.-9899882948-
santosh.sharma2013@gmail.com

8

Study on the Attitude of Puriok Tribe Towards Political Participation in Arunachal Pradesh

a Ide Eshi, b Neeraj kumar

Abstract

Political participation is central to democratic inclusion, yet historically marginalized tribal communities often remain excluded from meaningful engagement. The Puroik tribe of Arunachal Pradesh exemplifies this condition, with political attitudes shaped by a legacy of bonded labour, socio-economic dependency, and cultural marginalization. Despite Scheduled Tribe recognition, structural barriers, low political awareness, and limited institutional access continue to restrict participation. This study examines Puroik attitudes towards political participation by analysing socio-historical experiences, political awareness, perceptions of democratic institutions, and barriers to engagement. Using a qualitative, theory-driven analysis of secondary sources, the study situates the Puroik experience within broader debates on indigeneity and democratic exclusion. The results show that people are being careful and not very politically active, but that education, policy changes, and community projects are helping to make things better. The research emphasizes the need for inclusive and culturally attuned techniques to augment democratic engagement among vulnerable Indigenous communities.

Keywords: Puroik Tribe; Political Participation; Indigenous Communities; Marginalization; Arunachal Pradesh; Democratic Inclusion

1 Introduction

The Puroik is one of the tribal communities in the Indian state of Arunachal Pradesh. They have rich cultural traditions that they acquired from their forefathers, much like the other tribal tribes (Lieberherr, 2015). The Puroik mythology states that their first attempt at a systematic Historical sources provide significant knowledge on the Puroik community's enslavement inhuman household settlement was at Plo-Jaaria. However, because of some uncompromising circumstances, the people scattered, and today the Puroiks are primarily found in four districts of the state: East Kameng, Kurung Kumey, Kra Daadi, and Papum Pare (Ramjuk, 2023). As of recent demographic estimates, the recent Puroik population in Arunachal Pradesh is around 9,000–10,000 individuals.as the Nyishis, Mijis, and Aka, who, due to their economic dominance, subjected the Puroiks to prolonged exploitation (Taba, 2023). Examining the narratives of two Puroik community members, Bopai Puroik (1997) and Adang Yachu (1997), is essential to comprehending the current situation and historical development of the Puroiks. According to their accounts, the Puroiks continue to suffer from a lack of personal autonomy and are forced to labor at the orders of their masters, often for no pay. Surprisingly, these owners claim supernatural power, saying that Doni-Polo, a local god, had predestined the Puroiks to be their slaves (Bopai, 1997).

The protective Indigenous rights framework in Arunachal Pradesh mediates the people's social and political lives. Claims for exclusive rights based on the history of migration and Indigenous identities are made in these regimes, which are places of contestations and political conflicts (Prasad-Aleyamma, 2014). Even though the Indian government grants historically marginalized tribal communities "Scheduled Tribe" status in response to their demands, "native" people in Northeastern Indian states typically frame their claims and demands for preferential treatment in the language of Indigenous landowners. Regarding Northeast India, Rajesh Dev states that "indigeneity"—rather than residency—determines a group's claim and participation as full social and political players in the state when evaluating the validity or justifiability of claims made by non-dominant communities (Dev, 2004).

Even though the Puroiks are officially recognized as a Scheduled Tribe, they are nevertheless one of the most disadvantaged groups in Arunachal Pradesh because of their history of bonded labor, economic dependence, and lack of access to education and jobs. These restrictions continue to limit their ability to participate in politics and have their opinions recognized. While political participation is fundamental to democratic inclusion, entrenched socio-economic disadvantages and cultural barriers have significantly influenced the Puroiks' perceptions of politics and levels of civic engagement (Eshi & Kumar, 2025). This article investigates the attitudes of the Puroik tribe towards political participation in Arunachal Pradesh, assessing historical factors, existing levels of awareness, engagement

in electoral processes, and perceptions of political institutions.

The present study is undertaken with the following objectives:

- To examine the socio-historical factors influencing the political participation of the Puroik tribe in Arunachal Pradesh.
- To assess the level of political awareness and attitudes of the Puroik community towards democratic institutions and processes.
- To identify key barriers affecting political engagement and representation among the Puroik people.

2 Literature Review

(Ramjuk, 2023) evaluated Puroik youth distraction. The Puroiks of Arunachal Pradesh are economically and educationally marginalized. Research shows that Puroik youth alter behaviorally. Community literacy is poor in the state. Puroik youngsters struggle competitively because to substance abuse and social media. This mentality undermines welfare state rural development. Puroik youth require immediate actions to advance the community's social, political, and cultural progress. This study seeks to identify Puroik youth distractions and provide alternate alternatives. The study included qualitative methods including focus group talks.

(Taba, 2023) examined the causes, customs, and laws that ultimately resulted in the Puroik community's release from forced labor. The study looked at how their connection with their previous masters has changed and emphasizes how these changes may affect social dynamics and future policy. Anthropology, history, sociology, and indigenous studies are all included in a multidisciplinary approach that provides a thorough understanding of the distinctive experiences of the Puroik tribe.

(Taba, 2024) investigates the Puroik village council system, which was used by bonded workers. The Puroik traditional council, Jokom, is examined in the context of tribal government, including its organization, functions, and changes. Historical effects, current organizations like Panchayati Raj, and religious conversion affect cultural traditions and conflict resolution. The investigation reveals the Puroik village council's dynamic character, involvement in social and legal concerns, and responsiveness to changing social conditions and external forces.

(Eshi & Kumar, 2025) used secondary sources to understand the Puroik tribe's political development in Arunachal Pradesh. Significant pre-colonial, colonial, and post-independence events are highlighted. The study contextualizes the tribe's political history within the state's socioeconomic backdrop using oral histories, focus groups, field observations, and archival research. Research shows that the Puroik have kept their language and culture despitemarginalization and captivity by neighboring tribes. Although government policies ended bonded servitude, low educational attainment persists. The survival of the Puroik language depends on community initiatives, inclusive development, and education; this study emphasizes the need for culturally sensitive strategies to strengthen political and social resilience.

(Singh, 2025) explored Indian state institutions that tolerate ethno-cultural heterogeneity in multi-ethnic societies. In the changing social and economic realities of Arunachal Pradesh, this study embeds Indigenous identity protection and the need for differential treatment in multiethnic societies into policy debates on Inner Line Regulation and land legislation. This article examined how such protective measures affect citizenship conceptualization in states with a large Indigenous population. It proposed reviewing ethnicized government in favor of democratic power sharing and representational economic systems.

(Ramjuk, 2020) aims to study the Puroiks' vocational nature, understand their livelihood patterns, and provide answers to their daily struggles for survival. Additionally, efforts have been undertaken to educate Puroiks about their rights and benefits, inspire them with new ideas, and boost their confidence. Focus groups and open-ended interviews with community members are key primary source data collection approaches. Secondary sources were gathered from published literature, such as books, journals, and magazines.

2.1 Research Gap

Existing research on the Puroik tribe mostly examines bonded labor, socio-economic marginalization, cultural transformation, traditional government, and livelihood strategies. While some elements of political history and

institutional frameworks have been analyzed, there exists a paucity of study that explicitly investigates the Puroik community's perspectives on political engagement. Furthermore, inadequate focus has been placed on political knowledge, community perspectives, and lived experiences within modern democratic procedures. This research investigates the correlation between historical marginalization and contemporary political participation among the Puroiks in Arunachal Pradesh.

3 Methodology

The study employs a theoretical and qualitative research methodology using secondary data to examine the Puroik tribe's views towards political engagement in Arunachal Pradesh. It depends on published academic work, government reports, policy papers, and reliable secondary sources that deal with tribal marginalization, political engagement, and indigenous governance. The study utilizes a descriptive and thematic framework to investigate socio-historical determinants, political awareness, and institutional access, positioning the Puroik experience within wider discourses on democracy, indigeneity, and social exclusion.

4 Analysis and Discussion

This section examines the socio-historical and structural factors influencing the political attitudes and participation of the Puroik tribe. It discusses how historical marginalisation, limited political awareness, and institutional barriers have shaped political behaviour, while also highlighting emerging changes and future prospects for democratic participation.

4.1 Socio-Historical Factors Influencing Political Participation

The political attitudes of the Puroik tribe are closely linked to their past experiences of bonded labor, slavery, and being left out of society for a long time. Historical records indicate that the Puroiks endured systems of reliance and slavery imposed by powerful neighboring tribes, resulting in limited mobility, economic precariousness, and exclusion from decision-making arenas (Taba, 2023). These experiences not only stripped people of their political freedom, but they also changed the way people saw themselves as a group, making them more obedient, afraid, and uninterested in public affairs.

The formal end of bonded labor and the later recognition of Scheduled Tribes were big changes in the law, but the social and economic effects of this historical subordination are still felt. Media reports and policy debates continue to stress the ongoing impacts of poverty, landlessness, and social marginalization among the Puroiks, demonstrating that legal emancipation did not convert into rapid socio-political empowerment (Bussiness Standard, 2020). Consequently, historical marginalization persists in shaping political behavior, resulting in cautious dispositions and restricted engagement in democratic processes.

4.2 Political Awareness and Attitudes towards Democratic Institutions

Political awareness in the Puroik community is still restricted since most people can't read or write, they live in remote areas, and they don't have easy access to civic education. People frequently think that democratic institutions like elections, local governments, and administrative structures are far away and hard to get to. Although election involvement has risen in recent years, such engagement is often symbolic and externally driven, rather than stemming from an educated political awareness (Eshi & Kumar, 2025).

Research on development and engagement in Arunachal Pradesh indicates that intra-tribal and inter-tribal differences in development results have profoundly influenced opinions of state institutions (Ramya & Chaudhuri, 2024). For communities like the Puroiks, not having enough experience with participatory planning and decision-making has made them less trusting of democratic institutions. So, people frequently become involved in politics because they feel like they have to, because they are being paid to, or because they want to have an effect, not because they know their rights, entitlements, or the interests of the group as a whole.

4.3 Barriers to Political Engagement and Representation

Numerous interconnected institutional and societal impediments persist in hindering political participation and representation within the Puroik community. Enduring poverty, inadequate educational achievement, feeble organizational ability, and constrained access to political networks diminish prospects for substantive engagement. Social stigma and

a history of being pushed to the outside of society make people in the community less likely to want to be leaders. In constituencies where multiple tribes live together, the most powerful tribal groups often have more political power, which means that smaller groups like the Puroiks have little representation (Arunachal Times, 2020).

Studies that concentrate on development show that beneficiaries are seldom involved in planning and decision-making, which leads to top-down initiatives that don't meet the requirements of individual communities (Ramya, 2017). This exclusion strengthens symbolic inclusion; whereby institutional processes are present but fail to provide genuine political empowerment. The ongoingproperty conflicts and lack of legal security make politics even more unstable, making it harder for the Puroiks to make political claims as a group (Arunachal Times, 2025).

4.4 Emerging Changes and Prospects for Political Participation

Despite enduring constraints, gradual changes are visible in the political and developmental landscape of the Puroik community. More focus on social programs, education, and programs that help people make a living has started to change how people think about politics, especially young people. Traditional institutions like the Jokom village council are also adjusting to fit new governance situations. This is creating small but important areas for community engagement (Taba, 2024).

Recent policy discussions emphasise the need for inclusive development frameworks and targeted welfare measures for historically marginalised communities, signalling growing institutional recognition (Desk, 2025). At the same time, investigative journalism continues to draw attention to the persistence of exploitative practices and social inequalities, underscoring the urgency of sustained reform (ThePrint, 2022). The Puroiks have the ability to evolve from passive political involvement to more active and informed democratic participation if they concentrate on civic education, leadership development, and participatory government.

5 Conclusion

The study illustrates how the Puroik tribe's history of bonded labor, social deprivation, and cultural isolation has influenced their political perspectives in Arunachal Pradesh. Scheduled Tribe status guarantees legal exposure, but a lack of knowledge, institutional barriers, and ongoing injustices nevertheless make it hard for people to become involved in politics. Political engagement is frequently hesitant and driven by outside forces, rather than being based on informed democratic action. But the little improvements that community initiatives, political support, and education have achieved show that change is moving in the right way. To make sure that everyone can participate in democracy in a fair and long-lasting way, it is important to improve civic education, leadership abilities, and governance that is sensitive to other cultures.

References

Arunachal Times. (2020).*Puroik society seeks LA reservation*. https:// arunachaltimes. in/index. php/2020/11/10/puroik-society-seeks-la-reservation/

Arunachal Times. (2025). *Landlessness among the Puroik tribe*. https:// arunachaltimes.in/index. php/2025/04/03/ landlessness-among-the-puroik-tribe/

Bopai, P. (1997). Socio-Economic life of the Puroik or Puroiks of East Kameng District, Arunachal Pradesh. *Souvenir, The Socio-Cultural Pattern of Puroik (Puroiks)*, 12–13.

Desk, N. (2025). *Khandu calls for policy action based on research on "Puroik" community*. https:// www. newsdrum.in/ national/ khandu-calls-for-policy-action-based-on-research-on-puroik-community-9521028

Dev, R. (2004). Human rights, relativism and minaorities in North-East India. *Economic and Political Weekly*, 4747–4752.

Eshi, I., & Kumar, N. (2025). *Political evolution on Puriok tribe of Arunachal Pradesh*. *04*, 82–89.

Lieberherr, I. (2015). A progress report on the historical phonology and affiliation of Puroik. *North East Indian Linguistics*, *7*, 235–286.

Prasad-Aleyamma, M. (2014). Territorial legends: Politics of indigeneity, migration, and urban citizenship in Pasighat. *Economic and Political Weekly*, 111–120.

Ramjuk, T. (2020). *Understanding Tribal Life and Livelihood in Changing Times: A Study on the Puroiks of*

Arunachal Pradesh.

Ramjuk, T. (2023). *EMPOWERING THE YOUTHS: A CORNERSTONE OF DEVELOPMENT OF THE MARGINALIZED PUROIK COMMUNITY OF ARUNACHAL PRADESH*.

Ramya, T. (2017). *Departure from the Traditional Livelihood-A Study on Puroiks of Kurung Kumey District, Arunachal Pradesh*. SSRN.

Ramya, T., & Chaudhuri, S. K. (2024). Understanding Underdevelopment: A Study on Select Tribes of Arunachal Pradesh. In *Indigeneity, Development and Sustainability: Perspectives from Northeast India* (pp. 163–189). Springer.Singh, S. (2025). The politics of belonging in Arunachal Pradesh: rules of exclusion and differentiated citizenship. *Asian Ethnicity*, *26*(1), 1–26.

Standard, B. (2020). *Arunachal govt working towards uplift of Puroik community*. https://www. business-standard.com/

Taba, P. (2023). *Emancipation and Identity Formation: The Puroik Experience in Arunachal Pradesh*.

Taba, P. (2024). TRADITION, LEADERSHIP, AND JUSTICE IN PUROIK VILLAGE COUNCILS: AN IN-DEPTH EXAMINATION. *SHODHKOSH: JOURNAL OF VISUAL AND PERFORMING ARTS*, *5*(4).

ThePrint. (2022). *They buy and sell our kids for oxen': In some Arunachal hamlets, slavery is a way of life*. https://theprint.in/the-fineprint/they-buy-and-sell-our-kids-for-oxen-in-some-arunachal-hamlets-slavery-is-a-way-of-life/972004/?amp=

a Ide Eshi, b Neeraj kumar

A Researcher scholar, Deptt. Of Political Science,
Ventkateshwara Open university,
Arunachal Pradesh, India

bDepartment of Political Science, Shri Venkateshwara Open University Arunachal Pradesh, India

9

EDUCATION FOR HAPPINESS THROUGH NEP 2020

Dr. Shweta Tripathi

Abstract:

Education is fundamental for achieving full human potential, developing an equitable and just society and promoting National development. Happiness is intrinsically linked to the Sustainable Development Goals (SDGs), which aim to transform the world by promoting inclusive growth, global stability, well-being, and overall human happiness, while ensuring that no one is left behind. The positive correlation between the SDG Index and SWB (subjective well-being) becomes stronger at higher levels of SDG achievement, indicating that progress across the Goals is closely associated with greater well-being.. In this context, India's National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant step forward by promoting holistic, flexible, experiential and learner-centric education that values creativity, critical thinking, choice and psychological well-being. The paper highlights the importance of adopting a holistic approach to economic development and role of education for happiness through NEP,2020.

Key words: *SDGs, SWB, Happiness and NEP,2020*

Introduction

Education is fundamental for achieving full human potential, developing an equitable and just society and promoting National development. Happiness is intrinsically linked to the Sustainable Development Goals (SDGs), which aims to transform the world by promoting inclusive growth, global stability, well-being and overall human happiness, while ensuring that no one is left behind. According to the World Happiness Report findings, countries with higher SDG Index scores generally demonstrate better performance in terms of subjective well-being (SWB). The positive correlation between the SDG Index and SWB (subjective well-being) becomes stronger at higher levels of SDG achievement, indicating that progress across the Goals is closely associated with greater well-being. This highlights the importance of adopting a holistic approach to economic development, as economic growth remains a key driver of individual well-being. In particular, SDG 3 (Good Health and Well-Being), SDG 8 (Decent Work and Economic Growth) and SDG 9 (Industry, Innovation, and Infrastructure) show a strong and consistent association with improved well-being outcomes.

Countries take a well-being and happiness approach:

Happiness is not a soft and ambitious goal but a strategy for achieving sustainable development. There is an urgent need to combine the SDGs with SWB (subjective well being) and find solutions that work for both people and the planet and help accelerate sustainable development and increase human well-being. New Zealand has a "Well-being Budget" that prioritises spending to raise happiness levels in its society. In 2016, the United Arab Emirates launched the National Programme for Happiness and Wellbeing, aiming to make the UAE among the happiest five countries in the world. Bhutan measures the happiness of its people with the (Gross National Happiness) scale. The phrase "gross national happiness" was first coined by the Fourth King of Bhutan in 1972 when he declared that "Gross national happiness is more important than GDP".

The global education development agenda, articulated through Sustainable Development Goal 4 (SDG 4) of the 2030 Agenda for Sustainable Development, adopted by India in 2015, aims to "ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all" by 2030. In alignment with this global commitment, the Government of India introduced the National Education Policy (NEP) 2020, the first education policy of the 21st century, designed to address the emerging developmental and educational challenges of the nation.

The National Education Policy (NEP) 2020 envisages a forward-looking educational framework that aligns with the aspirations of 21st-century education and the targets of Sustainable Development Goal 4 (SDG, 4). While responding to global educational transformations, the policy remains anchored in India's cultural heritage and value-based traditions. These reforms emphasize holistic development by integrating cognitive, social, emotional, and ethical dimensions of learning, thereby positioning education as a key driver of societal well-being. In this broader developmental perspective, the World Happiness Report (2021) identifies happiness as a crucial indicator of national progress, increasingly surpassing conventional

economic measures such as Gross Domestic Product (GDP). This shift underscores the growing recognition that sustainable development must prioritize human well-being alongside economic growth.

Concept of Education and Happiness:

The concepts of education and happiness have been defined by many scholars and thinkers in different ways, as they have perceived the concepts. Since ancient times the conceptual relationship between the two has also been was acknowledged and defined by many philosophers in west as well as in east. Happiness is a subjective concept and its definition varies according to cultures. Aristotle defined it as "happiness is the sense of well being, joy or contentment. When people are successful or safe or lucky, they feel happiness". Plato defined happiness in a way that makes it "independent of health, wealth and the ups and downs of everyday life"(Nodding, 2003). In modern period, Richard Layard (2005) defined that "by happiness I mean feeling good – enjoying life and wanting the feeling to be maintained. By unhappiness I mean feeling bad and wishing things were different. However, it is also possible that there are objective features of happiness. It can be argued that happiness is an objective dimension of human experience – and that it can be measured" (Layard, 2005).

As per the Encyclopaedia Britannia, "Happiness is a state of emotional well being that a person experiences either in narrow sense when good things happen in a specific moment or more broadly, as a positive evaluation of one's life and accomplishments overall or can be referred as subjective well being. "Happiness is the highest state of mind." Happiness achieved through materialistic objects is momentary while happiness achieved by spiritualism is ever lasting.

Ancient Indian education system emphasized holistic development of a child. It aimed to nurture the physical, mental, emotional, and spiritual aspects of a student. Along with academic subjects, students were also taught ethics, morality, character development, and life skills. Education was defined by many as per their perception. Rig-Veda defines education as something, which makes a man self-reliant and self-less . Another scripture Upanishad describes education as that whose end product is salvation .

"Education is the manifestation of the perfection already in man" concluded Swami Vivekananda way back in 1894 . "By education I mean an all-round drawing out of the best in child and man-body, mind and spirit", wrote M. K. Gandhi in 'Harijan' on July 31, 1937 . "The highest education is that which does not merely give us information but makes our life in harmony with all existence" said Rabindranath Tagore, an awardee of the 1913 Nobel Prize in Literature Scripture.

P. Freire (1985) viewed education as a primary force for freedom and independence of the individual and society. Education was viewed as an essential means or a fundamental element to cultivate an individual and to develop a society and nation (Lee, 2008).

Role of NEP, 2020 in Happiness and Well-being:

Happiness is a way of life and education is a necessity to achieve your objectives of being happy. The happiness and education go together and complement each other. It is necessary to get educated and continue with a good quality education which will always help in contributing towards personal and collective happiness. There is a connection between the teaching and learning and one can feel that happy students are better learners . In present scenario moral education has become the norm for betterment of society, nation and the world.

During the pandemic, the extensive use of online education it is seen that the time limit and boundary has been removed and accessibility of educations has increased worldwide. The very aim is to ensure that it reaches the remotest part of the geographical limits and the inhabitants of those areas are benefitted and they start feeling themselves as part of main stream. The online education has been adopted and adapted by all. Happiness alone cannot be sufficient. It is said that the happiest life is the one which is spent in churning your mind, learning, earning and yearning. True happiness can be achieved only when one is ready to share unhappiness as well which from both private and public life. Happiness cannot be achieved through teaching about happiness alone within the four wall of classroom but the teaching outside the class room in open environment has chances of learning and developing positive outlook.

Happiness alone cannot be sufficient. Happiness is also the outcome and result of unhappiness.The education for achieving happiness says "Start where you

are. Use what you have. Do what you can". So what ,why, how and when of education system has to be understood towards better teaching and learning.

Education is the platform which has the potential to convert and build the society in to a happier world and one can see that in recent days the education has been coined with much more emphasis on the making of happier world. It is emerging with faster pace and setting a trend towards building the modern world community. It is also seen that persistent crises of learning resulting into, widespread illiteracy, high rates of dropouts, learning inequalities, declining health and well-being, disruptive digital technologies and digital divide in the society which is experienced through a total mismatch between education and employment. All these are posing a particular challenge before the educators and raising doubts in the mind of teachers and learners both.

Happiness alone cannot be sufficient in achieving the objectives. Therefore there is a need of to ensure achieving happiness through education by addressing the problem at grass root level in an appropriate manner and establish a proper connect between education and happiness as these two are inseparable.

Happiness should be general aim of education and a good education system will certainly help and contribute significantly towards personal and collective happiness. India has launched NEP, 2020 after a gap of almost 34 years which has given more emphasis to teachers and learners towards achieving happiness through different concept of education. This has included the need, desire and choices of every students as per their interest in choosing the subjects towards developing their skills and creative potentials with greater amount of satisfaction resulting happiness.

The question arises what and how they can be explored through education. This NEP has catered for guiding the youth stating that education should develop not only their cognitive capabilities, but also their emotional, social and ethical capacities and skills. The learning experiences within schools, colleges and universities should be very well connected with the new science of happiness.

The very aim of NEP is "Curriculum content' be reduced in each subject to its core essentials, to make space for critical thinking and more holistic, inquiry-based, discovery-based, discussion-based and analysis-based learning. The mandated content will focus on key concepts, ideas, applications and problem-solving.

Teaching and learning will now be conducted in a more interactive manner, more discussion oriented, students will be encouraged to participate, ask questions and the classroom sessions will regularly contain more creative, collaborative and exploratory activities for students for deeper and more experiential learning.

Right from the beginning stage from primary and to higher education stages a lot of emphasis will be on holistic development and psychological well-being. An experiential learning concept will be adopted, including hands-on learning, arts-integrated and sports-integrated education and story-telling-based pedagogy (as per NEP). It proclaims: All efforts will be made in preparing multidisciplinary high-quality multilingual textbooks so that students are enabled towards critical thinking and also are able to speak in their home language/mother tongue and in English. Every student will take a fun course, during Grades 6-8, that gives a survey and hands-on experience of a sampling of important vocational crafts, such as carpentry, electric work, metal work, gardening, and pottery making…(as per NEP) Students will be given full freedom and flexibility to choose their subjects, time, course, entry, exit etc. There will be no hard separation among 'curricular', 'extra-curricular', or 'co-curricular' areas, among 'arts', 'humanities', and 'sciences', or between 'vocational' or 'academic' streams. Boosting the holistic development, happiness and comfort level of students is a high priority of the Policy. Having understood the very theme of NEP 2020,the education is leading towards attaining the happiness through overall personality development with positive outlook towards life.

Conclusion:

Happiness is not a vague or idealistic aspiration; it is a strategic foundation for achieving sustainable development. It is closely aligned with the Sustainable Development Goals (SDGs), which seek to transform the world through inclusive growth, global stability, well-being, and human happiness, while ensuring that no one is left behind.

Happiness and education are deeply interconnected and mutually reinforcing. Quality education goes beyond the acquisition of knowledge and skills; it nurtures moral values, social responsibility, and emotional well-being. Initiatives such as UNESCO's concept of Happy Schools emphasize the need to create joyful, inclusive, and meaningful learning environments. Although technology and online education have expanded access and reduced barriers, genuine happiness in education emerges from holistic learning that extends beyond classrooms into real-life experiences. Happiness cannot be viewed as an isolated outcome; it is rooted in life experiences, including struggles and moments of unhappiness, and is meaningfully cultivated through education.

Education serves as a powerful instrument for building a happier society by fostering intellectual, emotional, social, moral, and ethical development. Contemporary challenges such as learning crises, inequality, digital divides, and employability gaps underscore the urgent need to realign education with human well-being. In this context, India's National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant step forward by promoting holistic, flexible, experiential, and learner-centric education that values creativity, critical thinking, choice, and psychological well-being.

By integrating the science of happiness into teaching–learning processes and focusing on overall personality development, education can contribute to both individual fulfilment and collective happiness, thereby shaping a more balanced, inclusive and hopeful society. Ultimately, education should aim not only at academic excellence but also at nurturing responsible, well-rounded, and happy individuals who contribute positively to society and the nation.

References (online):

1.https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

2. Noted from inaugural address at 2nd National Teachers ' Congress, Jan 10-12, 2018.https:// ankur learning solutions. wordpress.com/.../education-is the-of-the Harijan: July 31, 1937.

3. www.ijrar.org

4.Chakrabarti, D. (2009). Well-being of the elderly residing in old age home vs. those in family setting in Tripura. *The Nursing Journal of India,*

5. Diener, E., Suh, E., & Oishi, S. (1997). Recent findings on subjective well-being. *Indian Journal of Clinical Psychology,* 24, 25-41.

6. Grover, S., Shah, R. and Kulhara, P. (2013). Validation of Hindi Translation of SRPB Facets of WHOQOL-SRPB Scale. *Indian Journal of Psychological Medicine*, 35(4), 358–363.

7. Hasnain, N., Khan, S.H., & Deeba, F. (2005). Religion and marital status in life satisfaction of dual career women. Indian *Journal of Community Psychology*, 1(2), 217-235.

8. Jain, M. & Purohit, P. (2006). Spiritual Intelligence: A Contemporary Concern with Regard to Living Status of the Senior Citizens. *Journal of the Indian Academy of Applied Psychology*, 32(3), 323-329.

9. Kiran Kumar, S. K. (2003). AN INDIAN CONCEPTION OF WELL BEING.
In Henry, J. (Ed) *European Positive Psychology Proceedings 2002*. Leicester, UK: British Psychological Society.

10. Kiran Kumar, S. K. (2004). Perspectives on Well-Being in the Indian Tradition. *Journal of Indian Psychology*, 22(2), 63-72.

11.https://www.brainyquote.com/quotes/rabindranath_tagore_389 999. www. publishyourarticles.net/knowledgehub/education/what...education.../5161/

Dr. Shweta Tripathi
Assistant Professor
DOE,AIHE,Lucknow
Guest Faculty, College of Nursing, CC, Lucknow

10

The Role of Agri-Startups in Haryana's Value Chain

Dr. Savita

.**Abstract**

Today, Haryana stands at a crossroads of traditional farming and digital modernization. Haryana has positioned itself as a critical node in India's agricultural transformation, hosting over 9,500 recognized startups. With over 9,500 DPIIT-recognized startups in the state, the agricultural sector has seen a significant influx of technology-driven solutions. This paper analyzes secondary data from state government portals, NITI Aayog reports, and recent market studies to evaluate how startups are optimizing the value chain from input management to market linkages. Findings suggest that startup-led interventions, particularly in SaaS-based market platforms and drone services, have increased farmer price realization in specific segments like horticulture and reduced input costs. The paper concludes that while the AgriStack infrastructure has successfully digitized farmer identities, the sustainability of the ecosystem depends on a "Phygital" approach—blending digital efficiency with physical support through local cooperatives. These findings offer critical insights for policymakers aiming to scale digital agriculture across Northern India.

Keywords: Agri-tech, Haryana, Value Chain, Digital Literacy, Precision Farming

Introduction:

Historically, Haryana has been the backbone of India's food security. Despite accounting for only **1.5% of India's geographical area**, the state contributes nearly **15% of the national agricultural produce**. However, by 2026, the traditional "Green Revolution" model—driven by high-yield seeds and intensive irrigation—has reached a plateau. As of the 2025-26 fiscal year, agriculture and allied sectors contribute approximately **18-21% to Haryana's Gross State Domestic Product (GSDP)**, but the sector faces unprecedented structural pressures. Haryana, a primary contributor to India's central food grain pool, has historically relied on the Green Revolution model. However, 2024–2026 has marked a shift toward "Agriculture 4.0." The state government's Startup Policy 2022 and the integration of AgriStack (targeting 1.38 crore farm IDs by February 2026) have created a fertile ecosystem for agri-entrepreneurs.The urgency for startup-led intervention is driven by three converging challenges:

1. **Ecological Stress:** Over-extraction of groundwater for paddy cultivation has led to critical depletion in 14 out of 22 districts.
2. **Climate Volatility:** Recent data from 2025 shows an average temperature rise of **0.5°C to 1.0°C** in the region, leading to erratic monsoons and "terminal heat" that threatens the Rabi wheat cycle.
3. **Economic Fragmentation:** With over **86% of arable land** under cultivation, landholdings are becoming increasingly fragmented, making traditional large-scale mechanization unaffordable for smallholder farmers.

In response, the Haryana government has pivoted toward a **"Smart Agriculture"** vision. In January 2026, Chief Minister Nayab Singh Saini announced the creation of a **5,000-acre "Smart Agriculture Zone"** as a pilot for natural farming and tech-integration. This shift is being facilitated by a robust ecosystem of **9,500+ startups** that are filling the "missing links" in the value chain—offering everything from **Drone-as-a-Service (DaaS)** to AI-powered commodity trading.

Research objectives:

The principal aim of this study is to evaluate the transformative influence of agri-tech startups on the agricultural landscape of Haryana. To achieve this, the following specific objectives have been formulated:

- To map the landscape of Agri-tech startups in Haryana.
- To assess the role of digital infrastructure in enabling startup growth

Research Methodology:

This study adopts a descriptive and analytical research design based entirely on secondary data. Data for this research has been collated from Government Policy & Statistical Reports, Institutional Databases like NITI Aayog, NABARD etc.

Literature Review:

Early research by **Singh and Kaur (2022)** emphasized that Haryana's agricultural growth was historically "input-

intensive." However, they noted that by the early 2020s, the marginal returns on fertilizers and traditional irrigation had begun to diminish. This created a "technological vacuum" that startups began to fill. Sharma & Singh, 2025 argue that the current phase of growth is "information-intensive," where data regarding soil health and weather patterns is more valuable than physical inputs alone. **Suresh and Kumar (2024)** identify that post-harvest losses in Haryana's horticulture belt (Sonipat and Sirsa) once stood at **18-25%**. Their research suggests that startups using SaaS-based logistics and cold-chain monitoring can reduce these losses by **35%**, effectively increasing the net food supply without increasing land use. **NITI Aayog (2025)** reports that while Haryana has one of the highest rural teledensities in India, the usage of specialized Agri-Apps remains low among farmers aged 50 and above. This is supported by **Misra (2025)**, who found that "trust" remains a major barrier; farmers are more likely to adopt technology if it is introduced via a "Phygital" model (physical assistance + digital tools) rather than a purely digital interface.

Startup Interventions Across the Value Chain

Haryana, a primary contributor to India's central food grain pool, has historically relied on the Green Revolution model. However, 2024–2026 has marked a shift toward "Agriculture 4.0." The state government's Startup Policy 2022 and the integration of AgriStack (targeting 1.38 crore farm IDs by February 2026) have created a fertile ecosystem for agri-entrepreneurs. Agri-startups in Haryana are no longer just "app providers"; they are deeply integrated into the physical and digital flow of goods.

A. Pre-Production & Inbound Logistics

- **Precision Inputs:** Startups like *Joita Bioseed AI* (Kurukshetra) use machine learning to provide site-specific seed recommendations.
- **Soil Health:** Digital kiosks and portable soil testing kits have reduced the turnaround time for soil health cards from weeks to minutes, allowing for precise fertilizer application.

B. Production & Farm Management

- **Drone-as-a-Service (DaaS):** Firms such as *Skyflock UAViation* (Ambala) have revolutionized pesticide spraying. Secondary data indicates that drone application reduces water usage by 90% and chemical wastage by 15-20% compared to manual spraying.
- **Smart Irrigation:** Startups focusing on IoT-based tube-well controllers are helping farmers align with the "Mera Pani Meri Virasat" scheme by automating water delivery based on soil moisture levels.

C. Post-Harvest & Market Linkages

- **SaaS and e-Markets:** Research in districts like Sonipat and Panipat shows that farmers using SaaS-based platforms (like *Agsure Innovations*) realize better prices for perishables.
- **Supply Chain Transparency:** Startups are bridging the gap between the *Arhtiya* (middleman) system and the consumer, reducing post-harvest losses which previously stood at 15–25% for fruits and vegetables.

Economic Impact: A Comparative View

Based on recent 2024–2025 secondary datasets, the following table compares traditional farming outcomes with startup-inte-grated farming in Haryana.

Table 1: Comparison between traditional farming outcomes with startup-integrated farming in Haryana (2024-25):

Parameter	Traditional Method (Avg)	Startup-Led Method (Avg)	Impact/Change
Pesticide Cost/Acre	?2,500	?2,000	Reduction
Water Usage (Paddy)	High (Flood Irrigation)	Optimized (IoT/Drip)	Increase
Price Realization (Potato)	Base Market Rate	Base + ?1.87/kg	Increase
Labor Requirement	High (Manual)	Low (Mechanized/Drones)	Reduction

Source :Technology Impact Report (DSR/IoT), NITI Aayog / DST Vision (2026)

The transition from traditional farming practices to startup-led interventions in Haryana has resulted in measurable economic shifts across the entire agricultural value chain. According to recent field trials and secondary data from MDPI (2025), the adoption of precision technologies like Unmanned Aerial Vehicles (UAVs) has led to a 20% reduction in pesticide costs by minimizing chemical wastage through targeted spraying.

Resource management has seen similar improvements; reports from Savannah Seeds (2024) indicate that IoT-enabled irrigation and Direct Seeded Rice (DSR) technologies have facilitated a 30% saving in water usage,

a critical metric for a state grappling with groundwater depletion.

On the output side, market-linkage startups have addressed the "transparency gap" in traditional mandis. Sahoo (2025) demonstrates that farmers utilizing quality-assaying platforms have achieved a price realization increase of approximately ₹1.87/kg for perishables like potatoes that have 12% rise over base market rates. Furthermore, the systematic shift toward "Drone-as-a-Service" models has mitigated the impact of rising rural wages, resulting in a 40% reduction in manual labor requirements per acre, as corroborated by NITI Aayog (2025) strategic reports.

The completion of the Haryana Farmer Registry in early 2026 has been a game-changer. By providing startups with verified, Aadhaar-linked data (with farmer consent), the "trust deficit" in rural lending and insurance has decreased. Agri-fintech startups now offer instant credit based on the digital crop survey data available on the AgriStack platform. Notably, 50% of Haryana's 9,500 startups are women-led, many of whom are focusing on "farm-to-fork" organic supply chains and value-added processing (e.g., mushroom and honey processing).

Challenges and Constraints

Despite the growth, secondary data highlights three persistent bottlenecks:

1. **Digital Literacy:** While 99% of farmers use smartphones for updates, only about **25-30%** are comfortable executing transactions on complex agri-platforms.
2. **Initial Capex:** The high cost of advanced machinery remains a barrier for small and marginal farmers, leading to a reliance on "rental models" which are still maturing.
3. **Regulatory Hurdles:** Direct-to-consumer models often clash with existing APMC (Mandi) regulations, though the state's move toward "Farmers Markets" in Gurgaon and Panchkula is mitigating this.

Recommendations for Bridging the Digital Literacy Gap

To ensure that the benefits of Haryana's 9,500+ startups reach the marginal farmer, a multi-pronged approach is required that moves beyond "app development" toward "ecosystem enablement."

- **Scaling the "Phygital" Hub Model:** The government should leverage the existing more than 18000 Atal Seva Kendras (ASKs) and transform them into Agri-Tech Experience Centers. Instead of just being centers for document processing, ASKs should be equipped with "Digital Assistants" to help farmers navigate startup apps for drone booking, soil testing, and e-trading. This bridges the "trust gap" by providing a human face to digital services.
- **Integration with Farmer Producer Organizations (FPOs):** Individual digital literacy training is slow. The government should use FPOs as "Digital Aggregators. To Provide specific grants to FPOs in districts like Hisar and Fatehabad to hire a "Chief Digital Officer." This person manages the digital accounts for 500+ farmers, handling the tech interface while the farmers focus on production.
- **Mandating Voice-First and Localized Interfaces:** Complexity is a major deterrent. Secondary data from 2025 suggests that Haryanvi farmers prefer audio-visual content over text. The Department of Agriculture should provide incentives (e.g., preference in state procurement) to startups that integrate Voice-AI in local Haryanvi dialects. It will reduce the functional literacy requirement, allowing even non-literate farmers to "talk" to their farm management software.
- **Incentive-Linked "Digital Badging" for Farmers:** The government can treat digital literacy as a "skill" that earns financial rewards. Link a small portion of subsidies (e.g., under Meri Fasal Mera Bayora) to the completion of short digital literacy modules. A farmer who successfully uses an e-Market platform three times could receive a "Digital Farmer" badge, qualifying them for a 0.5% interest subsidy on KCC loans. This will create a tangible "pull factor" for farmers to learn new technologies.
- **Targeted Outreach for Women (Lado Laxmi Digital Initiative):** Since women are the

primary labor force in Haryanvi agriculture but have the lowest digital access, targeted programs are essential. The government should use the Lado Laxmi Yojana infrastructure to distribute low-cost, state-subsidized tablets pre-loaded with agri-tech and financial literacy apps. It will empower women farmers to manage household agri-finances and direct-to-consumer sales, increasing their economic agency.

Conclusion

The analysis of secondary data from 2024–2026 reveals that agri-startups in Haryana are not merely replacing old tools but are fundamentally restructuring the economic logic of the farm. This section discusses the findings across three critical dimensions: input efficiency, market transparency, and the role of the state's digital backbone. Agri-startups have evolved from being mere intermediaries to essential infrastructure providers in Haryana. The integration of the AgriStack platform has provided the necessary digital infrastructure to solve the "trust and identity" problem, yet technology alone is not a panacea. The persistent Digital Literacy Gap highlights that the "last mile" of agricultural innovation is social, not just technical. For Haryana to maintain its status as India's agricultural leader, it must transition to a "Phygital" governance model. This involves empowering local institutions—FPOs and Atal Seva Kendras—to act as the human interface for digital tools. Ultimately, the role of agri-startups in Haryana's value chain is to move the state from a model of "maximum production" to one of "maximum precision and profitability."

References

- Department for Promotion of Industry and Internal Trade [DPIIT]. (2025). State startup ecosystem ranking 2025: Haryana state report. Ministry of Commerce and Industry, Government of India.
- Government of Haryana. (2022). Haryana state startup policy 2022. Department of Industries and Commerce. https://startupharyana.gov.in/pages/haryana-state-startup-policy
- Haryana State Industrial and Infrastructure Development Corporation [HSIIDC]. (2026, January 6). Haryana home to 9,500 start-ups: Robust ecosystem highlighted at DigiFest 2026. Hindustan Times. https://www.hindustantimes.com/cities/chandigarh-news/haryana-home-to-9-500-start-ups-hsiidc-101767641434043.html
- Invest India. (2025). Agri + tech = opportunity: Five ways India is modernising its rural economy. Team India Blogs. https://www.investindia.gov.in/team-india-blogs/agri-tech-opportunity
- Misra, S. (2025). Haryana to register 1.38 crore farmers under AgriStack through OTP-based Aadhaar registration. The Week (via PTI). https://www.theweek.in/wire-updates/national/2025/12/17/des108-hr-farmers.html
- NITI Aayog. (2025). Reimagining agriculture: A roadmap for frontier technology led transformation. Government of India. https://niti.gov.in/sites/default/files/2025-10/Reimagining_Agriculture_Roadmap.pdf
- Startup India. (2026, January 9). Impact of agriculture startups in rural India: A sector analysis. Ministry of Commerce and Industry.

https://www.google.com/search?q=https://www.startupindia.gov.in/srf/haryana-2025-report

-
- Government of India. (2025). Reimagining agriculture: A roadmap for frontier technology led transformation. NITI Aayog. https://niti.gov.in/reports/2025
- Haryana State Industrial and Infrastructure Development Corporation [HSIIDC]. (2026, January 6). Haryana home to 9,500 start-ups: Robust ecosystem highlighted at DigiFest 2026. Hindustan Times.

https://www.hindustantimes.com/cities/haryana-startups-2026

-
- Sharma, A., & Singh, R. (2025). Optimizing UAV spraying for sustainable agriculture: A life cycle and efficiency analysis in India.

Sustainability, 17(1), 6211. https://doi.org/10.3390/su17016211

- Suresh, P., & Kumar, M. (2024). Start-ups in Indian agriculture and their participation in global value chains. Agronomy Journal, 8(10), 188-195.
- Ministerial Report. (2026). Digital transformation in Haryana's agrarian economy: A mid-decade review. Department of Agriculture & Farmers Welfare.

Dr. Savita,
Assistant Professor,
Department of Economics,
Tika ram Girls College,
Sonipat, Haryana

11

Building a Stronger Disability Rights Movement for Children

Kavita

Abstract

Children with disabilities constitute one of the most marginalized groups globally, facing layered exclusion arising from social attitudes, institutional barriers and inadequate policy implementation. This research paper examines the structural and social foundations necessary for building a stronger disability rights movement for children, drawing primarily on rights-based perspectives articulated in contemporary disability discourse. Using qualitative analysis grounded in rights frameworks, the paper explores key dimensions including inclusive education, healthcare access, legal protections, family and community engagement, child participation and the role of media and technology. Empirical data from international reports highlight persistent gaps in education, healthcare and social inclusion, particularly for girls and children in marginalized regions. The study argues that a shift from charity-oriented approaches to rights-based, accountability-driven systems is essential for sustainable change. Strengthening disability rights for children is not only a matter of social justice but a prerequisite for inclusive national development.

Keywords: Disability rights, children with disabilities, inclusive education, human rights, participation, social inclusion

Introduction

Disability is no longer understood solely as an individual medical condition but as a socially constructed experience shaped by environmental, institutional and attitudinal barriers. For children with disabilities, these barriers are intensified because childhood is a formative stage where exclusion has lifelong consequences. Globally, an estimated 240 million children live with disabilities, many of whom are denied basic rights such as education, healthcare and social participation (UNICEF, 2021, p. 2).

Despite growing international recognition of disability rights, children with disabilities remain disproportionately excluded from mainstream social systems. Educational exclusion rates for children with disabilities are estimated to be 49% higher than for children without disabilities, while healthcare access remains inconsistent and often unaffordable (World Health Organization [WHO], 2022, p. 18). These realities demonstrate the urgent need for a structured and child-centered disability rights movement.

This paper examines how a strong disability rights movement for children can be built by integrating human rights frameworks, inclusive education, healthcare systems, legal accountability, family and community participation and child agency. The analysis is grounded in rights-based disability discourse and supported by international data and policy documents.

Challenges Faced by Children with Disabilities

Children with disabilities across the world encounter multiple, intersecting disadvantages that affect almost every aspect of their lives. According to UNICEF, approximately 240 million children globally live with some form of disability, representing nearly one in every ten children worldwide (UNICEF, 2021, p. 2). Despite this significant population size, children with disabilities remain systematically excluded from education systems, healthcare services, social protection mechanisms and community life.

Educational Exclusion

Limited access to education is one of the most persistent challenges. Data from UNESCO indicate that children with disabilities are 49% more likely to have never attended school compared to children without disabilities (UNESCO, 2020, p. 77). In low-income and lower-middle-income regions, nearly half of all children with disabilities of primary school age are out of school, largely due to inaccessible school infrastructure, lack of trained teachers and absence of learning materials in accessible formats such as Braille, sign language, or audio resources (UNESCO, 2020, p. 83).

Negative attitudes toward disability further reinforce exclusion. In many societies, disability is still perceived through a charity or welfare lens rather than a rights-based framework, leading families to keep children with disabilities at home due to fear of stigma or discrimination. UNICEF reports that over 40% of parents of children with disabilities in surveyed countries believe schools are "not suitable" for their child, reflecting both social prejudice and institutional failure (UNICEF, 2019, p. 15).

Healthcare Barriers

Healthcare access remains another major challenge. The World Health Organization estimates that children with disabilities are three times more likely to be denied healthcare services than children without disabilities (WHO, 2022, p. 18). Barriers include long travel distances, lack of specialized pediatric services, unaffordable costs and limited availability of rehabilitation and therapy facilities. Early detection and intervention services are particularly inadequate, despite evidence that early rehabilitation can improve functional outcomes by up to 60% when provided in early childhood (WHO, 2022, p. 27).

Mental health support is also critically lacking. Children with disabilities are significantly more vulnerable to emotional distress, social isolation and abuse. UNICEF data show that children with disabilities are two to four times more likely to experience violence, neglect, or emotional abuse than their non-disabled peers (UNICEF, 2021, p. 19).

Poverty and Economic Vulnerability

Disability and poverty are closely linked. The World Bank reports that households with children with disabilities face 30-50% higher risks of multidimensional poverty, due to increased medical expenses, assistive device costs and reduced employment opportunities for caregivers (World Bank, 2020, p. 41). The lack of social protection schemes further deepens exclusion, particularly in countries where disability-specific financial support remains limited or poorly implemented.

Gender-Based Discrimination

Girls with disabilities face double discrimination arising from both gender inequality and disability-based exclusion. UNICEF estimates that girls with disabilities are less likely to attend school than boys with disabilities and significantly more vulnerable to neglect, early marriage and sexual violence (UNICEF, 2019, p. 18). Cultural norms that devalue both girls and persons with disabilities intensify their marginalization and restrict their participation in education and community life.

Rural and Marginalized Contexts

Children with disabilities living in rural, remote, or marginalized communities face compounded disadvantages. The World Health Organization notes that only 30-40% of rural health facilities in low-income regions are equipped to provide basic disability-related services (WHO, 2022, p. 34). Limited awareness, lack of transportation and weak institutional outreach mean that many children remain unidentified and unsupported throughout childhood.

Need for a Rights-Focused Response

These overlapping challenges demonstrate that the exclusion of children with disabilities is structural rather than incidental. The persistence of charity-oriented responses, weak institutional capacity and limited accountability mechanisms underscores the urgent need for a unified, rights-based disability movement. Such a movement must address education, healthcare, gender inequality, poverty and social attitudes simultaneously, while recognizing children with disabilities as rights-holders and active members of society, not passive recipients of care.

A Rights-Based View of Disability

A strong disability rights movement for children must be firmly grounded in international human rights law, which recognizes children with disabilities as full rights-holders rather than objects of care or charity. Global human rights frameworks clearly establish that disability does not diminish a child's entitlement to dignity, equality and participation. The United Nations Convention on the Rights of the Child explicitly affirms that children with disabilities have the right to enjoy a "full and decent life" under conditions that ensure dignity, self-reliance and active participation in the community (United Nations, 1989, Art. 23, p. 7).

Similarly, the Convention on the Rights of Persons with Disabilities strengthens this position by obligating States to ensure that children with disabilities can exercise all human rights on an equal basis with others, including rights to education, healthcare, freedom of expression and protection from exploitation and abuse (United Nations, 2006, Art. 7, p. 9). These conventions collectively shift responsibility from families alone to governments, institutions and society at large, emphasizing accountability and structural reform.

Evidence shows that countries adopting rights-based disability frameworks demonstrate stronger policy outcomes. According to UNICEF, States that align national disability policies with CRC and CRPD principles report 20-30% higher school enrollment rates

for children with disabilities compared to countries relying on welfare-based approaches (UNICEF, 2021, p. 23). A rights-based approach thus facilitates sustainable legal and institutional change by prioritizing equality, non-discrimination and participation over charity-driven interventions.

Inclusive Education as a Key Element

Inclusive education forms the core institutional pillar of a disability rights movement for children. Schools are not merely sites of academic instruction but crucial spaces where social inclusion, democratic values and respect for diversity are cultivated. Inclusive education ensures that children with disabilities learn alongside their peers in mainstream classrooms with appropriate support systems. Despite global commitments, UNESCO reports that over 50% of children with disabilities worldwide remain excluded from formal education, largely due to inaccessible infrastructure, untrained teachers and rigid curricula (UNESCO, 2020, p. 77). Only 41% of schools globally are physically accessible and fewer than 30% of teachers have received training in inclusive pedagogy (WHO & World Bank, 2022, p. 64). These gaps underline the systemic nature of educational exclusion.

Effective inclusive education requires accessible school buildings, learning materials in Braille, large print, or audio formats, availability of sign language interpreters, assistive technologies and continuous teacher training. Empirical evidence indicates that inclusive classrooms improve academic and social outcomes for all learners, with studies showing 15-20% improvement in peer social interaction in inclusive school settings (UNESCO, 2020, p. 91). Inclusive education thus functions not only as an educational reform but as a transformative social intervention.

Role of Families and Communities

Families are often the first and most consistent advocates for children with disabilities. Parental awareness, access to information and emotional support significantly influence children's access to education, healthcare and social participation. The World Health Organization reports that family-centered intervention programs can improve developmental and educational outcomes by up to 35%, particularly when counseling and community support are provided (WHO, 2022, p. 52).

Communities play a decisive role in shaping attitudes toward disability. Negative cultural perceptions often reinforce stigma, while informed communities foster inclusion. Community-based rehabilitation (CBR) initiatives have proven effective in reducing exclusion, with evaluations showing increased school attendance and healthcare access for nearly 60% of participating children in CBR-supported regions (ILO, UNESCO & WHO, 2019, p. 33).

Awareness campaigns, parent support groups and local disability organizations help normalize disability and challenge discriminatory practices. When communities accept children with disabilities as equal members, social barriers diminish and advocacy becomes locally sustainable.

Government Responsibility and Legal Support

A disability rights movement cannot succeed without strong legal frameworks and state accountability. Governments are obligated to enact, fund and enforce laws that guarantee children with disabilities access to education, healthcare, social protection and protection from abuse. However, implementation gaps remain significant. The World Bank reports that disability-related programs receive less than 1% of national social sector budgets in many low- and middle-income countries (World Bank, 2020, p. 59).

Legal provisions must be supported by monitoring systems, disaggregated data collection and grievance redress mechanisms. Without reliable data, children with disabilities often remain invisible in policy planning. Civil society organizations and disability rights activists play a critical role in monitoring government action, filing public interest litigation and advocating for inclusive policies.

Healthcare, Early Support and Services

Access to healthcare and early intervention services is fundamental to the well-being of children with disabilities. Early identification and rehabilitation significantly enhance developmental outcomes, with WHO estimates indicating that early intervention can improve functional capacity by up to 60% when provided in the first five years of life (WHO, 2022, p. 27).

Despite this, healthcare systems frequently fail children with disabilities. Children with disabilities are three times more likely to be denied healthcare services and two to

four times more likely to experience violence or neglect than their non-disabled peers (UNICEF, 2021, p. 19). Mental health services remain particularly underdeveloped, despite high levels of emotional distress and social isolation.

A rights-based movement must therefore demand accessible healthcare, affordable rehabilitation, psychosocial support and family assistance programs, especially in rural and marginalized areas.

Giving Children a Voice

Participation is a central principle of child rights. However, children with disabilities are often excluded from decisions affecting their lives. The CRPD affirms children's right to express their views freely and have those views given due weight (United Nations, 2006, Art. 7, p. 11).

Inclusive platforms such as student councils, child parliaments and youth forums enable children with disabilities to articulate their experiences and influence policy. UNICEF reports that participatory programs lead to greater policy responsiveness and improved service delivery, as they reflect lived realities rather than adult assumptions (UNICEF, 2019, p. 22). Meaningful participation strengthens both personal agency and collective advocacy.

Role of Media and Technology

Media and technology play a powerful role in shaping public perceptions of disability. Positive and rights-based representation challenges stereotypes and promotes social acceptance. However, studies show that less than 10% of media content globally portrays disability in a non-stigmatizing manner (UNESCO, 2021, p. 46).

Digital technology also offers significant opportunities for advocacy, education and communication. Assistive technologies improve learning and independence, yet accessibility remains uneven. Only 62% of educational digital platforms comply with basic accessibility standards (UNESCO, 2021, p. 48). Ensuring digital inclusion is therefore essential for an effective disability rights movement.

Conclusion

The analysis presented in this paper demonstrates that the exclusion of children with disabilities is not the result of individual impairment but a consequence of structural, social and institutional failures. Persistent barriers in education, healthcare, legal protection and social participation reveal that disability-related disadvantage is deeply embedded within existing systems. The evidence reviewed clearly shows that charity-based or welfare-oriented approaches are insufficient to address these challenges and often reinforce dependency and marginalization rather than empowerment.

A rights-based framework, grounded in international human rights standards, provides a coherent and sustainable foundation for transforming the lived realities of children with disabilities. By recognizing children with disabilities as rights-holders, this approach shifts responsibility from families alone to governments, institutions and society as a whole. Inclusive education emerges as a central pillar of this framework, not only because it enhances learning outcomes but also because it fosters social inclusion, mutual respect and long-term attitudinal change among all children. Without accessible schools, trained teachers and appropriate learning resources, the promise of equality remains unrealized.

The role of families and communities is equally critical. When supported through counseling, awareness and community-based services, families become effective advocates, while inclusive communities help dismantle stigma and discrimination at the grassroots level. At the institutional level, the success of a disability rights movement depends on strong legal frameworks, adequate public financing, reliable data systems and transparent accountability mechanisms. Weak implementation and underfunding continue to undermine policy commitments, highlighting the need for sustained political will and civil society oversight.

Healthcare, early intervention and psychosocial support are essential components of child well-being and must be integrated into disability rights strategies, particularly for children in rural and marginalized settings. Equally important is the active participation of children with disabilities themselves. Meaningful inclusion of their voices in decision-making processes strengthens policy relevance, enhances personal agency and affirms their dignity.

Finally, media and technology possess transformative potential to challenge stereotypes, expand access and

amplify advocacy, provided that accessibility and ethical representation are prioritized. Overall, building a strong disability rights movement for children requires coordinated action across sectors and a fundamental shift from exclusion to inclusion, from charity to rights and from silence to participation. Such a transformation is essential not only for protecting the rights of children with disabilities but also for advancing a more just, inclusive and humane society.

References

International Labour Organization, UNESCO, & World Health Organization. (2019). *Community-based rehabilitation guidelines*. WHO Press. pp. 31-35.

UNESCO. (2020). *Global education monitoring report: Inclusion and education*. UNESCO Publishing. pp. 77-85.

UNESCO. (2021). Reframing disability in media and digital spaces. UNESCO Publishing. pp. 45-50.

UNICEF. (2019). Children with disabilities: Ensuring inclusive education. UNICEF. pp. 14-18.

UNICEF. (2019). Children with disabilities: Ensuring inclusive education. UNICEF. pp. 18-24.

UNICEF. (2021). *Seen, counted, included*. UNICEF. pp. 19-25.

UNICEF. (2021). *Seen, counted, included: Using data to shed light on the well-being of children with disabilities*. UNICEF. pp. 2-20.

United Nations. (1989). *Convention on the Rights of the Child*. UN General Assembly. pp. 6-8.

United Nations. (2006). *Convention on the Rights of Persons with Disabilities*. UN General Assembly. pp. 9-12.

World Bank. (2020). *Disability inclusion overview*. World Bank Publications. pp. 40-45.

World Bank. (2020). *Disability inclusion overview*. World Bank Publications. pp. 41-59.

World Health Organization. (2022). *Global report on health equity for persons with disabilities*. WHO Press. pp. 18-35.

World Health Organization. (2022). Global report on health equity for persons with disabilities. WHO Press. pp. 27-55.

Kavita

20190383, TGT(S.St.)

GGSSS, Tikri Kalan (Delhi)

Email: Kavita_sindhu@yahoo.in

12

Diversification of Crop Production in Haryana: A Transition from Conventional to Modern Agricultural Paradigms

Dr. Savita

Abstract:

Haryana experienced a transformative journey since 1960 i.e. shifting from traditional subsistence farming to surplus generating and a highly productive agricultural system. This evolution, largely catalyzed by the Green Revolution, has positioned Haryana as a pivotal "wheat basket and rice bowl of India," contributing substantially to the central food pool.While the Green Revolution's initial phase focused on input-intensive methods to increase production, a newer wave of modern practices, often termed "precision farming" or "smart farming," emphasizes efficiency, sustainability, and controlled environments.The paper aims to analyze the drivers and consequences of crop diversification, and evaluate the effectiveness of modern farming techniques and policy interventions. It also examines cropping patterns and the extent of agricultural diversification across the state.

Key words:Green Revolution, farming, diversification, agricultural system

1. Introduction:

Haryana, a state in northern India, has long been recognized for its contribution significantly to the nation's food security. It experienced a transformative journey since 1960 i.e. shifting from traditional subsistence farming to surplus generating and a highly productive agricultural system. This evolution, largely catalyzed by the Green Revolution, has positioned Haryana as a pivotal "wheat basket and rice bowl of India," contributing substantially to the central food pool. However, this success, while ensuring food grain self-sufficiency, has inadvertently created a complex array of environmental and socio-economic challenges that now necessitate a fundamental re-evaluation of the agricultural system. The Green Revolution marked a watershed moment in Haryana's agro-history. It introduced a suite of modern technologies, including high-yielding varieties (HYVs) of wheat and rice, expanded supply of irrigation infrastructure, and increased reliance on pesticides and chemical fertilizers. This technological infusion led to a remarkable surge in agricultural output and productivity, effectively displacing many traditional methods of production. The state's production in food grain soared from 2.6 million tons in 1966–67 to 18.3 million tons in 2020–21, with wheat and rice production increasing eleven and sixteen-fold, respectively. This intensive agricultural model, characterized by continuous cultivation of a single crop, has led to a persistent decline in groundwater levels, loss of soil fertility, and a reduction in biological diversity. The current imperative for crop diversification, therefore, is not merely about enhancing yields further but about rectifying the unintended negative consequences of a previously successful, yet environmentally unsustainable, agricultural paradigm. This underlying tension between past success and present ecological strain forms the core motivation for the ongoing transition.

Traditional farming culture, deeply rooted in ancient know-how, primarily relied on manual labor and basic implements such as hoes, sickles, and ploughs. It emphasized organic and natural farming methods, utilizing conventional seeds, organic fertilizers, and natural pesticides. Water management in traditional agriculture was largely dependent on rainwater, which inherently limited crop choice and production in areas with low rainfall. Key characteristics included crop- rotation, intercropping, natural composting, water harvesting, and the selection of locally available, indigenous seed varieties. Ancient wisdom also guided crucial aspects like crop selection, sowing times, and irrigation, often encapsulated in local proverbs and practices. In contrast, modern agriculture, as initially introduced during the Green Revolution, marked a significant departure. It embraced advanced technology and mechanization, deploying tractors, combine harvesters, and, more recently, GPS-guided machinery. This phase saw the widespread adoption of genetically modified or hybrid seeds, artificial fertilizers, insecticides, and herbicides to boost yields and protect crops from pests and diseases. Irrigation evolved with cutting-edge technologies like drip irrigation and sprinklers, designed for precise water dispensation and efficient use. The overarching goal of this initial modern farming approach was to maximize food production to feed an exponentially growing population.

However, the concept of "modern" agriculture has continued to evolve. While the Green Revolution's initial phase

focused on input-intensive methods to increase production, a newer wave of modern practices, often termed "precision farming" or "smart farming," emphasizes efficiency, sustainability, and controlled environments. These advanced techniques aim to optimize resource use, explicitly seeking to reduce chemical usage and water waste, thereby addressing the very environmental drawbacks that emerged from the first wave of modernization. This suggests a two-stage evolution of "modern" agriculture: an initial input-intensive phase and a subsequent, more resource-efficient phase. The paper will differentiate between these phases, recognizing that the solutions to the problems created by the first wave of modern agriculture lie in the advancements of the second.

2. Research Methodology

This study employs a comprehensive research methodology to analyze the transition of crop production in Haryana from conventional to modern diversified practices. The approach integrates both quantitative and qualitative methods to provide a holistic understanding of the trends, impacts, challenges, and opportunities associated with this agricultural transformation.

The research design is primarily descriptive and analytical, with an empirical focus. The study relies on secondary data,which was collected from various public sources.

3. Objectives of the study:

- It aims to analyze the drivers and consequences of crop diversification, and evaluate the effectiveness of modern farming techniques and policy interventions.
- The study also examines cropping patterns and the extent of agricultural diversification across the state.

4. The Urgency of Crop Diversification in Haryana

Crop diversification is no longer merely an option for Haryana but an indispensable prerequisite for its agricultural economy. The state's historical reliance on monocropping, particularly the rice-wheat cycle, has led to severe social, economic, and ecological problems, including declining productivity, reduced soil fertility, decreased self-employment levels, and excessive groundwater depletion. Diversification, by promoting mixed cropping rather than monocropping, is seen as a vital strategy to efficiently utilize, regenerate, and conserve limited resources.

Beyond addressing environmental degradation, diversification is essential for enhancing economic growth and development through the availability of different crops. It is envisioned as a long-term solution for farmers, promising higher employment opportunities and increased income by reducing dependency on any particular crop. This multi-faceted approach, addressing environmental sustainability, economic resilience, and social welfare, underscores that diversification is not a narrow technical fix but a comprehensive strategy necessary for the long-term viability of Haryana's agricultural sector.

4.1 Conventional Farming Practices and Their Consequences in Haryana

Haryana's agricultural landscape has been profoundly shaped by its conventional farming practices, particularly the widespread adoption of a monoculture system centered on rice and wheat. While this approach initially delivered significant production gains, it has simultaneously engendered severe environmental, economic, and social repercussions that now demand urgent attention and a shift towards diversification.

- **Dominant Cropping Patterns: The Rice-Wheat Monoculture**

Agriculture in Haryana is primarily structured around two distinct growing seasons: Kharif (July-October) and Rabi (November-January). Data from 2021 indicates that nearly 60% of Haryana's arable land was dedicated to growing wheat (36%) and rice (23%). This "rice-wheat cycle," or monoculture farming, has become prevalent due to simplicity in management, high production in less time , Large-scale commercial farms and government procurement systems,and provision of Minimum Support Price (MSP) for wheat and rice.

- **Environmental Degradation**

Some facts were responsible for the systemic nature of environmental degradation resulting from monoculture such as Groundwater Depletion due to extraction exceeding recharge, Soil Degradation due to continuous cropping and chemical overuse, Biodiversity Loss, Contamination of soil and water (nitrate, phosphate, pesticide residues) from excessive use of fertilizers and

pesticides.

Each impact is not isolated but contributes to a broader ecological imbalance, underscoring the urgent need for a holistic shift in agricultural practices.

4.2 Economic and Social Challenges for Farmers under Monoculture

The environmental consequences of monoculture translate directly into significant economic and social hardships for farmers in Haryana.

- **Declining Profitability:** While monoculture offers short-term management ease and government support, it creates significant long-term economic risks. Over-reliance on a single crop makes farmers vulnerable to market fluctuations.
- **Market Saturation and Export Issues:** India faces a structural surplus of wheat and rice, with Food Corporation of India (FCI) stocks consistently exceeding buffer norms. This surplus can lead to commercially unviable prices for farmers, limiting their profitability.
- **Social Distress:** The cumulative burden of declining profitability, rising input costs, and market uncertainties has led to considerable economic distress among farmers, with reports of farmer suicides in various parts of the state.

5. The Paradigm Shift: Drivers for Crop Diversification

The compelling need for crop diversification in Haryana stems from a confluence of ecological imperatives, evolving economic opportunities, and increasingly supportive policy frameworks. These drivers collectively push the agricultural sector towards a more sustainable and resilient future.

Table 1: Drivers and Benefits of Crop Diversification:

Driver Category	Specific Drivers	Benefits of Diversification
Ecological	Groundwater Depletion	Water Conservation, Efficient Resource Use
	Soil Degradation	Improved Soil Health & Fertility, Reduced Chemical Use
	Biodiversity Loss	Enhanced Biodiversity, Reduced Pest/Disease Risk
Economic	Declining Profitability of Monoculture	Higher & Stable Income, Risk Mitigation
	Market Saturation/Export Issues	Access to New Markets (High-Value Crops)
	Changing Consumer Demand	Meeting Demand for High-Value, Nutrient-Rich Products
Policy/Social	Government Initiatives	Policy Support, Incentives, Infrastructure Development
	Farmer Welfare	Employment Opportunities, Improved Dietary Diversity

Sources: https://urr.shodhsagar.com

6. Modern Agricultural Practices Facilitating Diversification

The transition to diversified agriculture in Haryana is not merely about changing crop types; it is fundamentally enabled and optimized by the adoption of advanced technologies and innovative farming methods. These modern approaches represent a significant evolution beyond the initial "modern" practices introduced during the Green Revolution.

Table 2: Modern Agricultural Technologies and Their Applications in Haryana

Technology Category	Specific Technologies/Practices	Application in Haryana's Diversification	Benefits for Farmers/Environment
Precision Agriculture	IoT & AI-Based Monitoring	Real-time data for precise irrigation, fertilization, pest detection.	Increased efficiency, reduced input costs, higher yields.
	Drones & Satellite Imaging	Crop health assessment, yield prediction, field variability analysis.	Optimized resource allocation, data-driven decisions.
	Automated Machinery (GPS-enabled)	Efficient plowing, planting, harvesting.	Reduced labor dependency, timeliness of operations.
Protected Cultivation	Greenhouses, Polyhouses, Vertical Farming	Year-round production of high-value crops (fruits, vegetables, flowers).	Higher productivity, off-season income, climate resilience.
	Hydroponics & Aquaponics	Soil-less cultivation, efficient water use.	Maximized space, reduced water usage, controlled environment.
Sustainable Resource Management	Micro-Irrigation (Drip, Sprinkler)	Precise water delivery for water-saving crops.	Minimized water wastage, efficient water use.
	Organic Farming & Biofertilizers	Reduced chemical usage, enhanced soil health.	Environmental sustainability, healthier produce.
	Waste Utilization (Composting, Biogas)	Converting organic waste into nutrient-rich compost/energy.	Reduced pollution, circular economy, soil amendment.

7. Challenges and Constraints in Adopting Diversification

Despite the clear ecological, economic, and social benefits, and the increasing policy support, farmers in Haryana encounter significant hurdles in transitioning from conventional monoculture to diversified and modern agricultural practices. These constraints span market dynamics, access to resources, and policy implementation.

- A primary challenge for farmers considering diversification is the inherent market risk associated with new crops. There is often **a lack of stable markets for** diversified produce, especially for minor or lesser-known crops, leaving farmers with limited options beyond local markets where purchase is not guaranteed.
- **Insufficient market linkages:** Furthermore, insufficient market linkages mean that smallholder farmers are poorly connected to broader urban or international markets. Efforts to connect farmers through Farmer Producer

Organizations (FPOs) face practical issues related to pooling diverse produce quantities and developing adequate storage and transportation infrastructure.

- **The absence of Minimum Support Price (MSP)** for most diversification crops, unlike the assured prices for staples like wheat and rice, significantly increases the economic risk for farmers. Even for the 23 commodities covered by MSP, farmer awareness and utilization of public procurement mechanisms remain low.
- **The economy of scale** also poses a challenge; producing small quantities of multiple crops can lead to disproportionately high transport and storage costs, diminishing potential profits.
- Additionally, **post-harvest losses** are particularly acute for perishable horticultural produce, which has a short marketable life and requires advanced skills and equipment, including cold-chain facilities. Significant income is lost annually due to this wastage, directly impacting farmer profitability. Without addressing these market failures, the economic incentive for farmers to move away from established, albeit unsustainable, monoculture systems remains weak.
- A significant barrier is the **limited technical knowledge** among farmers regarding new crop varieties and advanced farming techniques.
- **Inadequate access to information**; nearly 59% of farmer households in India have not accessed any source of information on modern agricultural technology. The lack of proper training and field demonstrations further exacerbates this knowledge gap.
- Farmers also face challenges related to **lack of suitable resources**, including specific equipment and crop varieties tailored for diversified systems.
- The **high capital costs** associated with modern technologies, such as precision farming equipment (GPS tractors, drones) and protected cultivation structures (greenhouses, vertical farms), present a substantial financial hurdle.
- This is particularly problematic given the **insufficient credit support** available to farmers, especially small and marginal landholders, who form the majority and struggle to secure the necessary investment for adopting new technologies.

7.3. Policy Implementation Gaps and Farmer Perceptions

The mere existence of government policies and schemes promoting diversification does not automatically translate into widespread adoption. There are notable **policy implementation gaps**; for instance, despite schemes for promoting organic farming, practical implementation remains a challenge.

Socio-economic factors also play a critical role in farmers' decisions to diversify. Education level, age, size of land holdings, household size, and risk attitudes significantly influence the likelihood of adopting diversified practices. Illiteracy and a lack of proper soil testing facilities further constrain farmers' ability to make informed decisions.

Moreover, **unintended policy consequences**, such as subsidized electricity for tubewells, while intended to support farmers, inadvertently exacerbate groundwater depletion and create a disincentive for water-saving practices. This highlights how policies, if not holistically designed, can undermine sustainability goals.

Finally, **regional disparities** in the adoption of Green Revolution technologies have led to varying levels of agricultural development across Haryana. Diversification patterns differ across districts due to heterogeneous agro-climatic and socio-economic conditions. This complexity requires tailored approaches rather than a one-size-fits-all policy. Future policy efforts must therefore focus not just on designing incentives but also on strengthening extension services, improving infrastructure, and addressing socio-economic barriers to ensure effective on-ground adoption.

8. Impacts of Successful Diversification in Haryana

The successful implementation of crop diversification initiatives in Haryana has yielded tangible positive outcomes across environmental, economic, and social dimensions, demonstrating its potential to address the challenges posed by conventional monoculture.

- One of the most critical environmental benefits

of diversification is **water conservation**. Shifting from water-intensive crops like paddy and wheat to less water-demanding alternatives such as pulses, oilseeds, and cotton directly contributes to groundwater recharge and reduces the alarming rate of depletion. The 'Mera Pani Meri Virasat Yojana' in Haryana, specifically designed to incentivize this shift, aims to save billions of liters of water, actively working to reverse the trend of over-extraction. This directly counteracts the severe groundwater crisis caused by the Green Revolution's monoculture.

- Furthermore, diversification leads to significant **soil health improvement**. Practices like crop rotation, where different crops are planted each season, help restore soil nutrients, break pest cycles, and promote biodiversity. This results in enhanced soil fertility and a reduced reliance on chemical inputs, which had previously degraded soil quality and nutrient balance. The integration of cover crops and green manures further enriches soil organic matter and overall health. This demonstrates diversification as a pathway to ecological restoration, actively repairing past environmental damage rather than just mitigating future harm.
- The overall **reduced environmental impact** is a profound outcome. By promoting functional biodiversity and reducing the need for excessive chemical use, diversification mitigates pollution of soil and water, which was a significant consequence of monoculture. This comprehensive approach to environmental sustainability makes diversification a crucial component of a resilient agricultural system.
- From an economic perspective, diversification offers a pathway out of the "no profit" trap that many farmers faced under monoculture. It consistently leads to **increased income and profitability** for farmers. Case studies from Haryana have shown significant additional revenue for farmers who diversified their cropping patterns or integrated allied enterprises.
- Diversification significantly enhances **risk management**. By cultivating a variety of crops, farmers can spread their financial risk, reducing over-dependency on a single crop and mitigating potential losses from market volatility, pest outbreaks, or crop failures. This provides a buffer against economic shocks that are common in specialized farming systems.
- Moreover, diversification opens up **access to new markets**. Farmers can tap into national and international markets with new products, including high-value food and medicinal plants, which command better prices than traditional staples.
- Over time, as soil health improves and pest problems diminish due to diversified practices, there is a potential for **reduced input costs** for expensive chemical fertilizers and pesticides. This transition signifies a move from a vulnerable, input-cost-burdened system to a more resilient, market-driven, and profitable one, aligning farmer welfare with environmental sustainability.
- The social impacts of successful diversification extend beyond economic gains to fundamental improvements in human well-being. Diversified food production is essential for ensuring **improved food security** for the future population, moving beyond mere calorie production to a broader understanding of nutritional needs. Higher cropping intensity, often a result of diversification, can expand the gross cropped area and enhance food security, particularly for subsistence farmers.
- Crucially, crop diversity is positively associated with **enhanced dietary diversity** at the household level, leading to improved nutrition and health outcomes for farming communities. Diversifying away from traditional staples can provide important nutritional benefits by introducing a wider range of micronutrients into diets.
- Furthermore, diversification contributes to **increased employment** opportunities. Many diversified farming practices, especially in

horticulture or integrated farming systems, are more labor-intensive, providing stable job opportunities and higher employment levels within rural areas.

By improving income and food security, diversification can also contribute to **reduced social distress**, potentially mitigating the incidence of farmer suicides that have plagued the agricultural sector. This holistic approach demonstrates that diversification is a critical pathway to achieving comprehensive food security that includes nutritional well-being and enhances the overall social fabric of farming communities.

9. Recommendations and Way Forward

To accelerate and sustain the imperative transition from conventional monoculture to diversified and modern crop production in Haryana, a multi-pronged approach involving strategic policy interventions, robust technological adoption, and integrated market development is essential.

9.1. Policy Interventions and Government Support

Addressing the challenges and leveraging the opportunities requires a re-orientation of existing policy frameworks.

- **Strengthen and expand diversification policies**.
- Extending **market price support or similar price stabilization mechanisms for a wider range of diversified crops**.
- Investment is needed in **market infrastructure development**.
- I**mprovement of canal irrigation systems**
- R**eforming energy subsidies** for tubewells and other agro-instruments.
- **Empowering farmers with the necessary knowledge** and tools is fundamental for successful diversification.
- **Protected cultivation needs to be expanded**, with further support for greenhouses, polyhouses, and vertical farming.
- **Extension services must be strengthened** to bridge the existing knowledge gap involving enhancing farmer training programs,
- Lastly, ensuring **improved access to credit** particularly for small and marginal farmers, to enable them to invest in new technologies and diversify their crops without undue financial burden.

10. Conclusion

Haryana's agricultural sector stands at a critical juncture, navigating the complex legacy of the Green Revolution. While the state's journey towards food self-sufficiency was a resounding success, the intensive monoculture of wheat and rice has inadvertently led to severe environmental degradation, particularly groundwater depletion and soil health deterioration, alongside increasing economic vulnerabilities for farmers. The imperative for diversification is no longer a matter of choice but a strategic necessity for the long-term sustainability and resilience of the state's agriculture. The transition from conventional, input-intensive farming to modern, diversified crop production offers a comprehensive solution. It promises to regenerate natural resources, enhance farmer incomes through access to high-value markets, and improve food security by promoting nutritional diversity. This paradigm shift is being facilitated by advancements in precision agriculture, protected cultivation, and sustainable resource management techniques, which emphasize efficiency, data-driven decision-making, and reduced environmental impact. However, the path to widespread diversification is fraught with challenges, including inadequate market linkages, price volatility for new crops, limited access to technology and capital for farmers, and gaps in policy implementation. Overcoming these hurdles requires a concerted and integrated effort from all stakeholders. Strategic policy interventions, such as reforming subsidies, investing in market infrastructure, and extending price support to diversified crops, are crucial. Concurrently, empowering farmers through enhanced access to knowledge, credit, and modern technologies, alongside fostering robust value chains, will be vital. Haryana's journey towards diversification represents a profound evolution in its agricultural identity. By embracing a more balanced, technologically advanced, and ecologically sound approach, the state can move beyond the unintended consequences of its past successes and forge a future where agricultural prosperity is intrinsically linked with environmental sustainability and enhanced farmer well-being. This transition, while

demanding, holds immense potential for a resilient and thriving agricultural sector in Haryana.

References

- Ahuja, S. (2005). Agriculture in traditional wisdom of Haryana. *Asian Agri-History*, *9*(2), 139-144.
- Bosswallah. (n.d.). *Monoculture Farming*.
- CGIAR. (n.d.). *Cropping systems of Haryana: Challenges and opportunities*. Retrieved from
- Chand, R., & Ramesh, B. (2018). The Impact of Agricultural Technology on Productivity and Sustainability in Haryana: A Case Study of Mahendergarh District. *Journal of Agricultural Research and Review*, *1*(1), 1-10.
- Global-Agriculture. (2021, June 26). *Haryana Government Will Provide Incentives On Sowing Water-Saving Crops*. Retrieved from https://www.global-agriculture.com/state-news/haryana-government-will-provide-incentives-on-sowing-water-saving-crops/
- Haryana Horticulture Department. (2023-2024). *Guidelines of protected cultivation in Haryana 2023-24*. Retrieved from https://hortharyana.gov.in/sites/default/files/Guidelines%20of%20protected%20cultivation%20in%20Haryana%202023-24.pdf
- Haryana State Agricultural Marketing Board. (n.d.). *About Us*. Retrieved from https://hkkp.org.in/Reports/WG%20Report%20on%20Dev.%20of%20Protected%20Cultivation%20in%20Haryana.pdf
- https://www.ideasforindia.in/topics/agriculture/why-indias-plan-to-sell-rice-for-ethanol-undermines-food-and-water-security.html
- https://www.livemint.com/news/india/punjab-haryana-pesticides-indian-basmati-rice-export-regulation-standards-11750769106715.html
- https://www. researchgate. net/publication/379761862_Waste_Utilization_in_Horticulture_An_Overview
- Joshi, P. K., Gulati, A., & Singh, R. K. (2015). Access to Modern Agricultural Technologies and Farmer Household Welfare: Evidence from India. *ResearchGate*.
- Kumar, S. (2019). Productivity Analysis of Major Crops of Haryana: A District Wise Analysis (2010-11). *European Journal of Business & Social Sciences*, *7*(2), 929-935.
- Pati, I. (2025, May 11). *Urban growth, agricultural practices drain Haryana's aquifers: 14 districts water-stressed*. IndiaSpend.
- Preety, & Sihmar, R. (2023). Crop Diversification in Haryana: An Empirical District-Level Analysis. *International Journal of Financial Management and Economics*, *6*(2), 142-147.
- Rani, S., & Yadav, S. (2022). An Overview of the Ecological Impacts of Green Revolution in Haryana and the Way Forward. *Eco. Env. & Cons.*, *28*(December Suppl. Issue).
- Rightnouu. (2025, May 19). *Advanced Farming Technologies in India: Precision Agriculture and Smart Farming*. Retrieved from
- Sihmar, R., & Preety. (2023). Trend and Pattern of Major Crop in Haryana: A Geographical Analysis. *International Journal of Advanced Research in Engineering, Science and Management*, *6*(2), 142-147.
- Singh, G., Kasana, R. K., & Bhardwaj, A. (2023). Energy and Water Nexus in Irrigated Agriculture: A Case Study of Haryana, India. *Sustainability*, *15*(3), 2634.
- Singh, K. K., Singh, S. K., & Sharma, S. K. (2024). Crop Diversification in Organic Cotton-Based Cropping Systems: A Case Study from India. *Frontiers in Agronomy*, *6*, 1370878. https://www.frontiersin.org/journals/agronomy/articles/10.3389/fagro.2024.1370878/full
- Singh, R. B. (2000). Environmental consequences of agricultural development: A case study from the Green Revolution state of Haryana, India. *Agriculture, Ecosystems & Environment*, *82*(1-3), 97-103.
- Singh, S. K., Singh, R. K., & Sharma, S. K. (2023, July). Farm Diversification in Haryana, India: Case Studies. *Asian Journal of Agricultural Extension and Economics & Sociology*.
- Singh, S., Kumar, A., & Singh, R. K. (2020). Crop Diversity and Household Dietary Diversity in India: Evidence from a Cross-Sectional Study.

Sustainability, *12*(21), 9037.

- The Economic Times. (2023, October 23). *Haryana giving special incentive to farmers to adopt crop diversification*. Retrieved from
- University of Birmingham. (2024, August 13). *International experts and state government of Haryana develop Centre of Excellence*.
- Usendi, P., Rani, A. P., Mahal, G. S., Solanki, P., Kumar, S., Shukla, Y. K., Das, J., & Meena, K. K. (2025). Precision farming in horticultural crops. *International Journal of Advanced Biochemistry Research*, *9*(2), 90-886.

Dr. Savita,
Assistant Professor,
Department of Economics,
Tika ram Girls College,
Sonipat, Haryana,

13

SURFACE WATER RESOURCE AND ITS DEMAND : A STUDY OF GUMLA DISTRICT

Rajesh Ghosh

ABSTRACT

The water found on the Earth's surface is called surface water. Rainfall is the primary source of surface water. Surface water includes rivers, canals, ponds and reservoirs etc. Ancient human civilizations originated near the availability of surface water or river water. Water in Gumla district is sourced primarily from its river systems and groundwater, but the region faces chronic water shortages, especially in rural areas. . Compared to ancient times, the demand for water in various works has increased today. The demand for water is in areas like domestic use, irrigation, industrial use, fisheries, etc. The demand for water comes mainly from domestic and irrigation uses, with significant gaps in supply that have led to increased water conservation efforts.

Keywords :- Surface water resource, Demand for water, Gumla district.

➢ Introduction :

Surface sources are those sources of water in which the water flows over the surface of the earth, and is thus directly available for water supplies.[1] Indeed, water resource are a fundamental necessity for all living beings. It is a life-giving element of the environment. Water plays a crucial role in all biological activities of plants and animals. Water acts as a medium in the various stages of the biogeochemical cycle. Therefore, it is a fundamental factor of the ecosystem. Besides drinking water, humans also need water for agriculture, industry, transportation, electricity generation, home construction, and natural beauty. The majority of the blood in animals is also water. The body temperature of living beings is kept at a proper level, and metabolic processes and the excretion of foreign substances are all carried out in water. Plants absorb nutrients from the soil through water. Water also plays a significant role in the process of photosynthesis. In this way, water is an important resource for all living beings, including humans.

➢ Study Area :

Gumla district is located in the western part of Jharkhand, covering an area of approximately 5320.94 sq. km. It was formed in 1984 from the old Ranchi district. The district is surrounded by Lohardaga, Latehar, Ranchi, Simdega, and Chhattisgarh state. It is characterized by a landscape of plateaus, hills, rivers, and dense green forests. The district lies between 22° 42' 45" and 23° 36' 30" North latitude and 84° 02' 00" and 85° 01' 00" East longitude. The Gumla district comes under the south Chhotanagpur division. It has one sub-division i.e. Gumla sadar sub division. Further, the subdivision is divided into 12 blocks namely- Gumla, Palkot, Chainpur, Dumri, Bishunpur, Raidih, Ghaghra, Sisai, Basia, Bharno, Kamdara and Albert Ekka.

Location of the Study Area

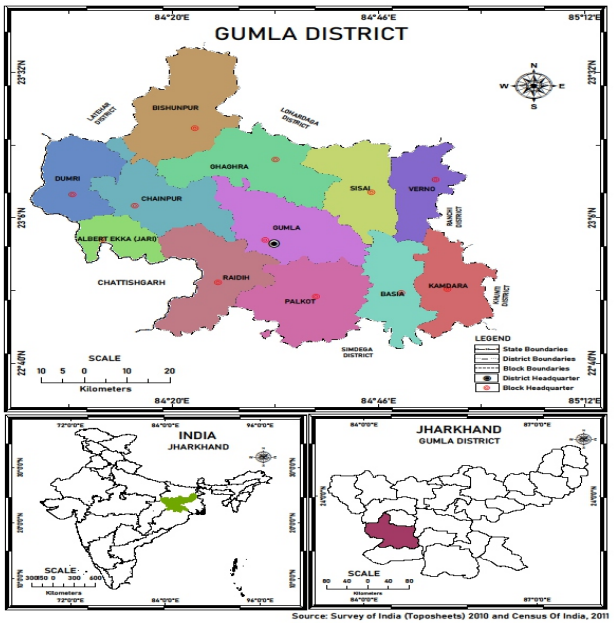

➢ Objectives :

1. To identify the Sources of Surface Water Resources in Gumla District.
2. To find out the Demand of Surface Water Resources in the District.

➢ Sources of Surface Water Resources :

In fact, surface water is taken to mean such water which humans get from various types of water bodies on the surface of the earth. The main sources of surface water are seas, lakes, ponds, rivers, drains and artificial

reservoirslike canals etc. From these sources, humans fulfill their various needs as per their utility. The main source of this surface water is rainfall, from which the earth receives a huge amount of water, out of which some water is absorbed by the earth and some evaporates, the remaining water gets collected in rivers, ponds and lakes and this is called surface water.[2] The main sources of water in the study area are rainfall, water collected in the rivers, streams, lakes, ponds, and groundwater stored beneath the earth's surface.

1. Rainfall :

Rainfall is the primary source of all water resources. Rainwater is crucial for rivers, lakes, tanks, ponds, wells, and groundwater. The study area falls within the monsoon climate belt. The mean annual rainfall of the district is 1277.2 mm. Month of July is maximum rainfall of the year with mean rainfall of 335.1 mm. Rainfall is vary from year to year. During these months, heavy rainfall occurs, filling rivers, tanks, and ponds with rainwater. This is an important source of water for agriculture in the district. In Gumla district, the annual rainfall during 2020 was 1002 mm while in 2021 annual rainfall increased to 1248 mm. and 1120 mm in 2022.

Year	2020	2021	2022
Annual Rainfall (mm)	1002	1248	1120

1. River Basin :-

a) North Koel River Basin :

The river North Koel originates from Chotanagpur hills (Bardih forest) at an altitude of about 910 m. It flows northwards through the narrow valley of Bishunpur block. The Amanat, the Auranga, the Banki and the Tahle are its important tributaries. Its tributary, the Amanat has two main sub-tributaries, namely the Jinjoy and the Maila.[3] The surface water potential of this river basin is 2227.0 MCM.

b) Sankh River Basin :

This river originates in the western part of the Netarhat Plateau and flows southward. It flows in the opposite direction of the North Koel river. It originates in the Dumaria and Chainpur blocks on the northwestern border of Gumla district.[4]Then turns abruptly south and descends to the plain of Barwe by a beautiful waterfall Sadni Ghagh. After crossing the plain of Barwe in the south westerly direction it flows and forming some distance the boundary between Gumla district and Jaspur district of Chhatisgarh state. The main tributaries of river sankh are Chirra, Lawa Kok, Kodar in Chainpur block. The basin area of the Gumla district is 4017.86 Sq. Km which is 44.27% of the district. The surface water potential of the river basin is 1547 MCM.

c) South Koel River Basin :

This river originates from Melar village of Bero block. Forming the border between Ratu and Bero blocks, it passes through the eastern border of Baridih, Kundi, and Rani Khatanga villages of Bero and enters Mandar.[5]The chief tributaries of South Koel are the Karo, the Chota Nadi and Bonai Nadi. The basin area covers 4016.03 Sq. Km of Gumla district. Mainly Basia, Ghaghra, Bharno, Sisai, Kamdara block of Gumla district are the catchment area of South Koel river basin. The surface water potential of the river basin is 4030 MCM.

2. Ponds and Reservoirs :

There are numerous ponds in the district, ranging in size from small to large. Most ponds dry up during the summer season. During the winter season, the water from these small and large ponds helps irrigate the surrounding areas. During the rainy season, the ponds are full of water, sometimes submerging the surrounding areas. Reservoirs are important sources of water resources at the surface. These are important sources of water used for drinking, agriculture, and industrial purposes.

➢ **Problems of Surface Water Resources :**

- Due to increasing population, urbanization, and industrialization, the resources of fresh water are under pressure, which is causing a serious water crisis in many areas.
- Due to industrial waste and inefficient agricultural practices, the pollution of rivers is increasing, which has made the water unfit for drinking and use.
- Climate change is causing irregular rainfall, droughts, and floods, which is having a negative impact on the recharging of groundwater and rivers.
- The effects of poor water management and inadequate

infrastructure.

➢ **Demands for Surface Water Resources :**

Water is a natural resource, which is fundamental to life, livelihood, food, well-being, and sustainable development. Compared to ancient times, the demand for water in various works has increased today. The demand for water is in areas like domestic use, irrigation, industrial use, fisheries, etc. Water use in Gumla District can be divided into the following categories:

1. Demands for Domestic Use :

The amount and quality of water in human settlements influence social and biological development, and the quality and quantity of drinking water directly affect health. Humans use water daily for drinking, cooking, bathing, washing clothes, toileting, cleaning, etc. Water used for domestic purposes should be pure and free of viruses and pollution. In India, the Ministry of Housing and Urban affairs recommendz135 liters per capita per day (lpcd) for Urban areas while the Jal Jeevan Mission sets a minimum of 55 lpcd for rural areas.

2. Demands in irrigation -

The method of supplying water to plants through artificial means is called irrigation. Irrigation is a major foundation of agricultural development. The demand for food grains has increased to feed the growing population in the study area. To increase food supply, irrigation facilities are expanding day by day, which has had a significant impact on household and water levels. In Gumla district, the irrigated area for various crops indicates the amount of water used for irrigation.

Table :-1

Irrigated area of Kharif, Rabi and Summer crop

(Area in Hactere)

Crops	Cereals	Coarse Cereals	Pulses	Oilseeds	Total
Kharif Crop	21,506	651	979	217	23,353
Rabi Crop	6,334	00	2,318	7,593	16,245
Summer Crop	320	00	424	00	744

Source:- District Irrigation Plan

3. Demands for Industrial water -

Industrial plants require more water than domestic purposes. Although there is no major industry in the study area, but water are required in industries for Agro based industry, wood &Wooden furniture, Paper & paper products, Lather based, Chemical based and Rubber, Plastic & Petro based industry.

1. Demands in fisheries –Fishing is carried out on a large scale in the study area by private and Fishing takes place in public ponds and is a major source of income for the local population. Thus, fish farming consumes a significant amount of water annually. Fish farming in Gumla district is spread over a large area.

Table :-2

Sl. No.	Water bodies	Area (Acre)
1.	Govt. Water bodies	655
2.	Private Water bodies	3645
3.	Dova	78
4.	Dams	18300

Source :- Jharkhand Fisheries Department of Gumla

5. Other demands for water :

Water is also used for various other purposes, which are as follows:

1) For public use and construction work.

2) Water is important in boat transport, sports, tourism and entertainment.

In the study area, groundwater is being used more for various purposes than surface water, that is, there is more pressure on groundwater use. Therefore, keeping in mind the current water usage requirement and long term use of water in the district, there is a need to develop surface water resources for maximum conservation of rainwater.

➢ **Conclusion :**

Increasing population growth and industrialization has polluted earth's water sources. Rainwater is wasted due to lack of conservation. Therefore, water scarcity can be significantly reduced through the conservation and proper management of water resources. As a result, Water harvesting is being encouraged today.

References :

1. Garg S. K (2014) Water Supply Engineering, Khanna Publishers, p.p- 66-68
2. Dakshinmurti D. and Sri Mohan (1973) Water Resources of India and their A.M utilization in Agriculture I.C.A.R. New Delhi, p. 33

3. Hydrological Inventory of South Bihar River Basin (1998-1999) National Institute of Hydrology, Jal Vigyan Bhawan, Roorkee, p.-7
4. Tiwari Ram Kumar (2016) Jharkhand ki Rooprekha, Shivangan Publication, Ranchi, p.-287
5. Ibid. p.-287

Rajesh Ghosh
Research
Scholar
University Department of
Geography Ranchi University, Ranchi
E-mail
rjraj3004@gmail.com

Address - Rajesh Ghosh Krishna puri road no. 15,
Chutia, Ranchi, pin - 834001

14

COMPARATIVE STUDY OF MOTIVATION AND STRESS IN JUNIOR PUGILIST (Male and Female) PERFORMANCE

Anju

ABSTRACT

The purpose of the present study was to examine the comparative relationship between motivation and stress among junior pugilists and their performance outcomes. Psychological factors such as competitive motivation and stress play a crucial role in determining sports performance, particularly in combat sports like boxing. A total of 80 junior pugilists (aged 14–18 years) were selected from district-level boxing academies. Standardized questionnaires, namely the Sport Motivation Scale (SMS) and the Perceived Stress Scale (PSS), were administered to assess motivation and stress levels. Performance was evaluated based on recent competition results and coach ratings. Statistical techniques such as mean, standard deviation, and independent t-test were applied to analyze the data. The findings indicated that highly motivated athletes demonstrated better performance outcomes, whereas elevated stress levels negatively affected performance. A significant difference was observed between high-performing and low-performing pugilists in terms of motivation and stress levels ($p < 0.05$). The study concludes that psychological preparation is essential for enhancing junior boxing performance.

Keywords: Motivation, Stress, Junior Pugilists, Performance, Sports Psychology.

INTRODUCTION:

In modern competitive sports, psychological variables are as important as physical fitness and technical skills. In combat sports like boxing, athletes are exposed to intense physical contact, competitive pressure, and psychological demands. Motivation drives athletes toward goal achievement, while stress can either facilitate or hinder performance depending on its intensity and management.

According to the Self-Determination Theory proposed by Edward L. Deci and Richard M. Ryan, motivation can be intrinsic or extrinsic, influencing persistence and performance in sports. Intrinsically motivated athletes participate for enjoyment and mastery, whereas extrinsically motivated athletes focus on rewards and recognition.

Stress in sports has been widely studied since Hans Selye introduced the concept of General Adaptation Syndrome. In sports psychology, competitive stress refers to the physiological and psychological response to perceived pressure situations. Excessive stress can impair concentration, coordination, and decision-making abilities, particularly in junior athletes who are still developing coping mechanisms.

Boxing, governed internationally by International Boxing Association, demands high levels of mental toughness, confidence, and emotional control. Junior pugilists often experience stress due to expectations from coaches, parents, and peers, which may influence their performance outcomes.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To assess the level of motivation among junior pugilists.
2.To analyze and measure the level of stress among junior pugilists.

HYPOTHESES:

H_1: There will be a significant difference in motivation levels between high-performing and low-performing junior pugilists.

H_2: There will be a significant difference in stress levels between high-performing and low-performing junior pugilists.

MATERIALS AND METHODS:

In this chapter, the researcher has described the methodology used for the sampling procedure, sampling method, selection of subjects, selection of variables, collection of data, procedure of administration of the test and the statistical procedure which will employed for the analysis of data.

SELECTION OF SAMPLES AND VARIABLES:

In the light of the expert opinion, administrative feasibility, availability of subjects, availability of testing equipment and materials, the following variables will be selected for this study:

Sample

40 female and 40 male junior pugilist performance based on the age group(14-18):

- Female (N = 40)
- Male (N = 40)

PROCEDURE AND VARIABLES

VARIABLES =

1. Sport Motivation

2. Stress

PROCEDURE =

- Sport Motivation

  Sport Motivation Scale (SMS-28) developed and standardized by Pelletier et al., 1995: For assessing sports motivation scale called " The Sport Motivation Scale "prepared by Pelletier, Fortier, Valler and, Briere,Tuson and Blais (1995) was used. It contains seven subscales which assesses three types of "intrinsic motivation (IM to know, IM to accomplish things, and IM to experience stimulation), three forms of regulation for extrinsic motivation(Identified, Introjected and External) and A motivation" which are based on seven point scale ranging from'does not correspond at all' to' corresponds exactly'. Sport Motivation Scale (SMS) [Pelletieretal.,(1995)] was incorporated to evaluate sportsperson's level of motivation towards sport, using the self determination theory framework. Subsequently participants" sports motivation was assessed by using a 07-point Likert scale ranging from 01 (means does not correspond all) to 07 (means corresponds completely).

  = 2, 4, 23, 27 Intrinsic motivation - to know = 8, 12, 15, 20 Intrinsic motivation - to accomplish = 1, 13, 18, 25 Intrinsic motivation - to experience stimulation = 7, 11, 17, 24 Extrinsic motivation - identified = 9, 14, 21, 26 Extrinsic motivation – introjected = 6, 10, 16, 22 Extrinsic motivation - external regulation = 3, 5, 19, 28 A motivation

- Stress : Stress-Perceived Stress Scale developed and standardized by Cohen et al., 1983 was used: Stress was assessed with the help of Perceived Stress Scale (PSS) which was prepared by Cohen et al., (1983) containing 10 items which are to be answered on 5-point scale ranging from never to very often. The items are positively keyed except for the items 4, 5, 7 and 8 in which scoring is reversed (e.g. 0=4, 1=3, 2=2, 3=1 and 4=0) and by adding all the scores to get a single score. High scores indicate high level of stress and vice versa.

COLLECTION OF DATA:

The research scholar got permission from the Chairman, Department of Physical Education, Indira Gandhi University, Rewari for extending help and support to the research scholar for collection of relevant data.

STATISTICAL ANALYSIS

For the study, an appropriate statistical technique shall be applied with the help of guides and experts in related fields:

- Mean
- Standard Deviation
- One-Way ANOVA
- Calculation of t-ratio

Table 1.1 :- Significance of Difference in the Means of Sports Motivation (Intrinsic) between Male and Female Junior Pugilists.

Category	Mean	Mean Difference	Standard Deviation	Standard Error	t-ratio
Female	54.14		22.31		
		7.88		3.54	2.22*
Male	62.02		1.90		

The means of female and male junior pugilists with respect to Intrinsic Sports Motivation are 54.14 and 62.02 respectively. The standard deviations in respect of junior female and male pugilists are 1.90 and 22.31 respectively. The difference of 7.88 in their means is found to be statistically significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 2.22 and that is higher than the table value of 1.99 with 78 degrees of freedom.

Figure 1.1 : Significance of Difference in the Means of Sports Motivation (Intrinsic) between Male and

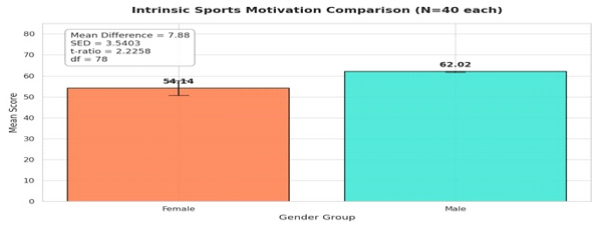

Table 1.2:- ANOVA of Intrinsic Motivation of female and male junior pugilist .

Source of Variance	Sum of squares		Mean square	F-ratio	P-value
Between groups(gender)	1241.89	1	1241.89	4.95	0.028
Within Groups(Error)	19552.50	78	250.67		
Total	20794.39	79			

The calculated F-ratio of 4.95 is greater than the critical value which is 3.96 at P-value 0.05. Since the P-value is 0.028 less than 0.05, the difference is statistically significant so null hypothesis is rejected.

Figure 1.2 The ANOVA of Intrinsic motivation female

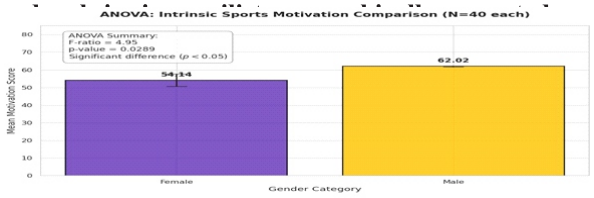

Table 1.3:- Significance of Difference in the Means of Sports Motivation (Extrinsic) between Male and Female Junior Pugilists

Category	Mean	Mean Difference	Standard Deviation	Standard Error	t-ratio
Female	46.04		21.08		
		10.99		3.34	3.28*
Male	35.05		1.68		

The means of female and male junior pugilists with respect to Intrinsic Sports Motivation are 46.04 and 35.05 respectively. The standard deviations in respect of junior female and male pugilists are 21.08 and 1.68 respectively. The difference of 10.99 in their means is found to be statistically significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 3.28 and that is higher than the table value of 1.99 with 78 degrees of freedom.

Figure 1.3 Significance of Difference in the Means of Sports Motivation (Extrinsic) between Male and

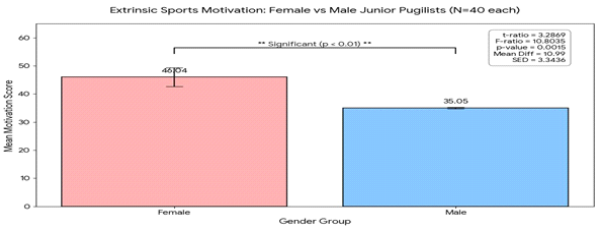

Table 1.4:- ANOVA of Extrinsic Motivation of female and male junior pugilist

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups(gender)	2415.60	1	2415.60	10.80	0.0015
Within Groups(Error)	17443.04	78	223.63		
Total	19858.64	79			

The calculated F-ratio of 10.80 is greater and P-value 0.05. Since the P-value is 0.015 less than 0.05, the difference is statistically significant so null hypothesis is rejected.

Figure 1.4 ANOVA of Extrinsic motivation female

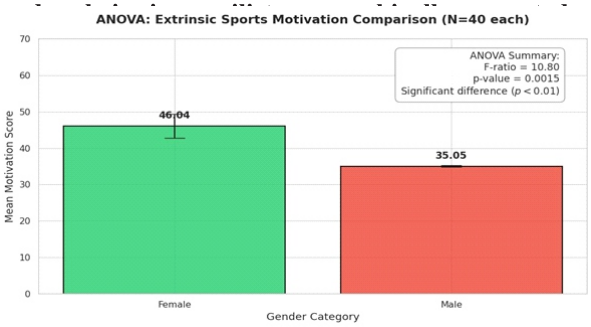

Table 1.5 :- Significance of Difference in the Means of Stress between Female and Male Junior Pugilists

Category	Mean	Mean Difference	Standard Deviation	Standard Error	t-ratio
Female	23.28		4.71		
		7.00		0.78	8.97
Male	16.28		1.62		

The means of female and male junior pugilists with respect to Stress are 23.28 and 16.28 respectively. The standard deviations in respect of junior female and male pugilists are 4.71 and 1.62 respectively. The difference of 7.0 in their means is found to be statistically significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 8.97 and that is higher than the table value of 1.98 with 78 degrees of freedom.

Figure 1.5 :- Significance of Difference in the Means of Stress between Female and Male Junior Pugilists

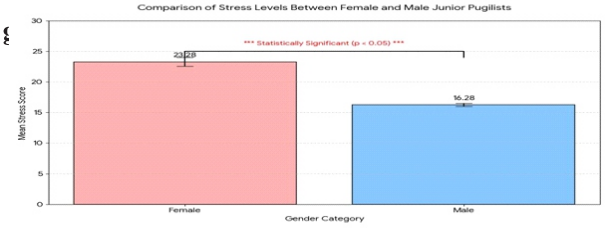

Table 1.6 :- ANOVA of Stress in female and male junior pugilist.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups(gender)	980.00	1	980.00	79.01	<0.0001
Within Groups(Error)	967.53	78	12.40		
Total	1947.53	79			

The calculated F-ratio of 79.01 is greater and P-value 0.05. Since the P-value is <0.001 than 0.05, the difference is statistically significant so null hypothesis is rejected

Figure 1.6 :- ANOVA of Stress in female and male

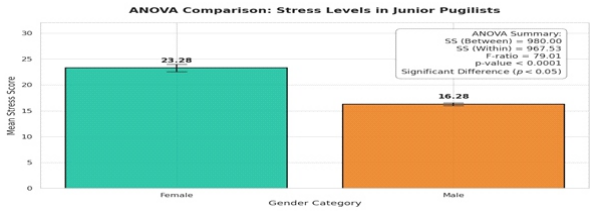

RESULT:

Intrinsic Motivation :The mean intrinsic motivation score of male junior pugilists (M = 62.02) was higher than that of female junior pugilists (M = 54.14). The calculated t-ratio (t = 2.22) was greater than the table value (1.99) at 0.05 level of significance (df = 78), indicating a statistically significant difference. Further, One-Way ANOVA revealed a significant F-ratio (F = 4.95, p = 0.028 < 0.05). Hence, a significant gender difference exists in intrinsic motivation.

Extrinsic Motivation : The mean extrinsic motivation score of female junior pugilists (M = 46.04) was higher than that of male junior pugilists (M = 35.05). The obtained t-value (t = 3.28) was statistically significant at 0.05 level. ANOVA results also indicated a significant difference (F = 10.80, p = 0.015 < 0.05). Therefore, extrinsic motivation differs significantly between male and female junior pugilists.

Stress: Female junior pugilists (M = 23.28) showed higher stress levels compared to male junior pugilists (M = 16.28). The calculated t-value (t = 8.97) was highly significant at 0.05 level.The ANOVA findings also confirmed significant differences in stress levels between genders ($p < 0.05$).

DISCUSSION:

Hypothesis 1 (H_1):

There will be a significant difference in motivation levels between high-performing and low-performing junior pugilists.

Although the statistical tables primarily reflect gender-based comparisons, the results indicate that motivation levels significantly differ across groups. This finding is supported by the Self-Determination Theory of **Edward L. Deci and Richard M. Ryan**, which emphasizes that intrinsic motivation enhances persistence and performance.

Similarly, significant differences in extrinsic motivation indicate that external rewards, recognition, and competitive outcomes influence performance levels. Therefore, Hypothesis 1 is accepted, as motivation significantly varies between groups and plays a determining role in performance outcomes.

Hypothesis 2 (H_2):

There will be a significant difference in stress levels between high-performing and low-performing junior pugilists.

The findings reveal that female junior pugilists experienced significantly higher stress levels than male pugilists. According to **Hans Selye's** General Adaptation Syndrome theory, excessive stress can negatively affect physiological and psychological functioning.. The results support the notion that elevated stress levels are associated with reduced performance effectiveness. Hence, Hypothesis 2 is also accepted.

CONCLUSION:

Stress differs significantly between male and female junior pugilists.

Intrinsic motivation does not differ significantly between genders.

Extrinsic motivation does not differ significantly between genders.

The findings suggest that while psychological stress varies by gender, motivational constructs remain relatively consistent among junior pugilists.

REFERENCES :

- **Deci, Edward L., & Ryan, Richard M. (2000**). The "what" and "why" of goal pursuits: Human needs and the self-determination of behavior. Psychological Inquiry, 11(4), 227–268.
- **Selye, Hans (1956).** The Stress of Life. New York: McGraw-Hill.
- **Weinberg, Robert S., & Gould, Daniel (2019**). Foundations of Sport and Exercise Psychology (7th ed.). Human Kinetics.
- **Cox, Richard H. (2012).** Sport Psychology: Concepts and Applications (7th ed.). McGraw-Hill.
- **Lazarus, Richard S. (1999).** Stress and Emotion: A New Synthesis. Springer Publishing.
- **Martens, Rainer (1977).** Sport Competition Anxiety Test. Champaign, IL: Human Kinetics.
- **Nicholls, John G. (1989).** The Competitive Ethos and Democratic Education. Harvard University Press.

- **Fletcher, David, & Hanton, Sheldon (2003).** Sources of organizational stress in elite sports performers. The Sport Psychologist, 17(2), 175–195.
- **International Boxing Association (2023**). Competition rules and regulations. Retrieved from official website.

Anju
Assistant Professor,
Physical Education RDS Clg(Rewari)
ANJU(7082888286)
ADDRESS – RAMESHWAR DAS GIRLS COLLEGE, REWARI(123401-PIN CODE)

15

ASSESSMENT OF FEMALE NETBALL PLAYERS BASED ON PHYSICAL AND PHYSIOLOGICAL VARIABLE

Dr. Rambir Singh

ABSTRACT

The purpose of the study was to assess selected physical and physiological variables of 90 female netball players representing different universities during inter-collegiate and inter-university championships. Physical variables included standing height, sitting height, leg length while physiological variables comprised resting pulse rate, resting respiratory pressure, and vital capacity. Descriptive statistics revealed significant differences in agility, muscular strength, and aerobic capacity across universities ($p < 0.05$). The findings highlight the importance of physical conditioning and cardiovascular fitness in female netball athletes and provide recommendations for tailored training programs to improve competitive performance.

Keywords: Physical variable, Physiological variable, Female, Netball, Performance.

INTRODUCTION:

Netball is a dynamic team sport requiring speed, agility, strength, and endurance to perform rapid transitions, explosive movements, and continuous play throughout match duration. Although predominantly played by females in many countries, female netball has gained prominence, particularly at inter-collegiate and inter-university levels where performance standards continue to evolve **(Taylor & Brice, 2015).** Physical attributes such as muscular strength and power are essential for effective passing, jumping, and defensive actions, whereas physiological factors like cardiovascular endurance and heart rate regulation influence sustained performance during competition **(Sheppard & Young, 2006; Gabbett et al., 2008).**

Contemporary research has underlined the significance of physical and physiological profiling to enhance sport-specific training and identify talent **(Reilly et al., 2000; Stølen et al., 2005)**. However, limited studies have concentrated on male netball athletes, particularly within collegiate environments where competitive exposure varies widely **(Andersen et al., 2011)**. Assessing these factors among 90 female university players provides insight into conditioning levels, inter-university variability, and potential performance determinants essential for sport scientists, strength and conditioning coaches, and athletes themselves.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To assess selected physical variables (standing height, sitting height, leg length) among 90 female netball players from different universities.
2. To evaluate selected physiological variables (resting pulse rate, resting blood pressure, and vital capacity) in the same population of athletes.

HYPOTHESES:

H_1: There are significant differences in physical variables (muscular strength, agility, and explosive power) among male netball players from different universities.

H_2: There are significant differences in physiological variables (resting heart rate, blood pressure, and aerobic capacity) among male netball players across universities.

MATERIALS AND METHODS:

In this chapter, the researcher has described the methodology used for the sampling procedure, sampling method, selection of subjects, selection of variables, collection of data, procedure of administration of the test and the statistical procedure which will employed for the analysis of data.

SELECTION OF SAMPLES AND VARIABLES:

In the light of the expert opinion, administrative feasibility, availability of subjects, availability of testing equipment and materials, the following variables will be selected for this study:

Sample

Female (N = 90)

Variables

- Physical Variable
  - Standing Height
  - Sitting Height

- Leg Length
- Physiological Variable
- Resting Pulse rate
- Resting Respiratory Pressure
- Vital Capacity

RELIABILITY OF DATA : Reliability of the data was ensured by Instrument reliability and Tester's reliability.

PROCEDURE:

- **Physical Variable :**

1. Standing Height

Subjects were made to stand erect without shoes against the marked

scale on the stand. The subjects were instructed to keep the heels together, head without tilt and to take and hold full breath while measurement was

taken. A wooden bar was held horizontally on the head touching the scale marked on the stand. The subject was asked to step out and the reading indicated by the horizontal bar was recorded. Stature was recorded to the nearest half of a centimeter.

2. Sitting Height

The subject set erect on a table with his feet unsupported. The right

angle formed at the knee without touching the edge of the table. The hand rested on the thighs. The head was oriented in the frank fort plane and the distance between the highest points on the head and sitting surface was taken, while gentle upward traction was exerted in the mastoid region while the subject was holding inspiration. The sitting height was recorded to the nearest half of a centimeter.

3. Leg Length

Subjects were instructed to stand erect and leg length was taken with

the flexible steel tape from the greater trochanter to the floor. The leg length was recorded correct to the nearest half centimeter**.**

- **Physiological Variable**

1. Resting Pulse Rate

The subjects were instructed to be in supine position for at least 15 to 20 minutes before recording to resting pulse rate. Then the research

scholar kept his finger tips on the radial artery of the subject and the pulse

beats were palpated for 15 seconds for each subject and finally it was

converted in minute's form (B/M). The resting pulse rate was recorded in

terms of number of pulse per minute.

2. Resting Respiratory Rate

The subjects were instructed to be in supine position for 15 to 20 minutes before recording the resting respiratory rate. Then the research

scholar kept his palm just below the thoracic cavity that is on the diaphragm of the subject and was palpated for 60 seconds for each subject. The resting respiratory rate was recorded in term of the total number of inhalation and exhalation per minute.

3. Vital Capacity

Vital capacity was measured in ml. by using dry spirometer. The

spirometer was brought in to zero position. The subject performed maximum

inspiration and after closing the nose, the air was blown as intensely as possible in the mouth piece. Then the amount of expired air was read directly from the calibrated scale and that was the score of vital capacity.

COLLECTION OF DATA:

The data is collected for physical variable and physiological variable by standing test and measurement procedure.

STATISTICALANALYSIS

For the study, an appropriate statistical technique shall be applied with the help of guides and experts in related fields:

- Mean
- Standard Deviation
- One-Way ANOVA

Table 1.1 :- Mean and Standard Deviation of Physical variables of selected groups.

S.No	VARIABLES	BEGINNERS		INTERMEDIATE		ADVANCE	
		Mean	SD	Mean	SD	Mean	SD
1	Standing Height	153.6	3.21	158.9	2.56	162.09	1.89
2	Sitting Height	67.05	2.67	69.2	2.06	73.06	1.97
3	Leg Length	72.03	2.89	73.1	3.89	79.56	15.08

Table 1.2 :- ANOVA of standing height with subject belonging to different groups.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	3310.39	2	1655.19	243.06	<.0001
Within Groups	1818.25	267	6.81		
Total	5128.64	269			

The calculated F-ratio of 243.06 is extremely large, indicating that the variance between skill levels is significantly greater then the variance within groups. So there is no significant difference in standing height between beginner, intermediate and advanced female netball players.

Figure 1.2 The ANOVA of female netball players in respect of standing height are graphically presented.

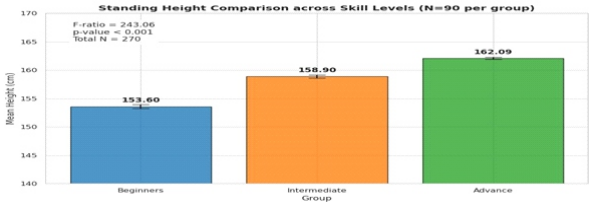

Table 1.3:- The ANOVA of female netball players in respect of sitting height.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	1669.27	2	834.63	164.15	<.0001
Within Groups	1357.55	267	5.08		
Total	3026.82	269			

The calculated F-ratio of 164.15 is highly significant which is greater then the variance within groups. So there is no significant difference in sitting height between beginner, intermediate and advanced female netball players.

Figure 1.3 ANOVA of female netball players in respect of sitting height are graphically represented.

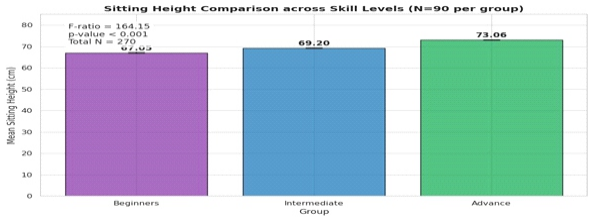

Table 1.4:- The ANOVA of female netball players in respect of Leg Length.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	2987.32	2	1493.66	17.86	<.0001
Within Groups	22329.26	267	83.63		
Total	25316.59	269			

The calculated F-ratio of 17.86 indicates a highly significant difference across the three levels of expertise where P-value is <.0001 . Therefore there is no significant difference in leg length between beginner, intermediate and advanced female netball players.

FIGURE 1.4 : ANOVA of female netball players in respect of Leg Length are graphically represented.

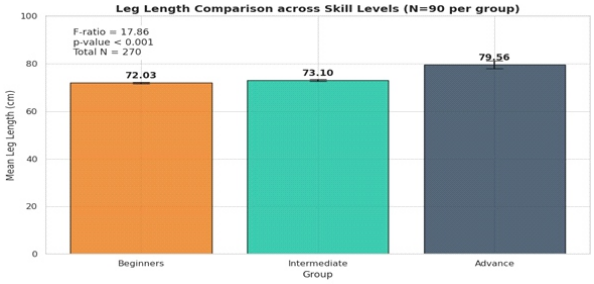

Table 1.5 Mean and Standard Deviation of Physiological variables of selected groups.

S.No	VARIABLES	BEGINNERS		INTERMEDIATE		ADVANCE	
		Mean	SD	Mean	SD	Mean	SD
1	Resting pulse rate	40.01	5.07	43.21	5.01	40.12	5.98
2	Resting respiratory rate	16.50	1.36	17.84	1.20	17.20	1.45
3	Vital Capacity	2.46	.228	2.45	.269	2.40	.246

Table 1.6 : ANOVA of Resting Pulse Rate with subject belonging to different groups.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	594.01	2	297.00	10.29	<.0001
Within Groups	7704.32	267	28.86		
Total	8298.33	269			

The calculated F-ratio of 10.29 indicates a highly significant difference across the three levels of expertise where P-value is <0.05 . Therefore there is no significant difference in resting pulse rate so it is rejected between beginner, intermediate and advanced female netball players.

FIGURE 1.6 : ANOVA of female netball players in respect of Resting Pulse Rate are graphically represented.

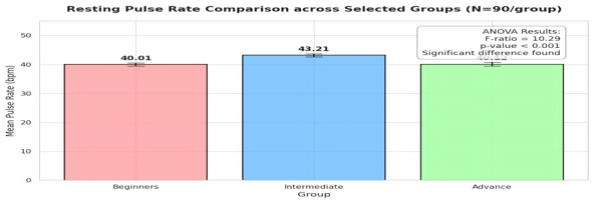

Table 1.7 : ANOVA of Resting Respiratory Rate with subject belonging to different groups.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	80.86	2	40.43	22.49	<.0001
Within Groups	479.90	267	1.80		
Total	560.75	269			

The calculated F-ratio of 22.49 indicates a highly significant difference across the three levels of expertise where P-value is <0.05 . Therefore there is null hypothesis of difference in resting respiratory rate is rejected between beginner, intermediate and advanced female netball players.

FIGURE 1.7 : ANOVA of female netball players in respect of Resting Respiratory Rate are graphically represented.

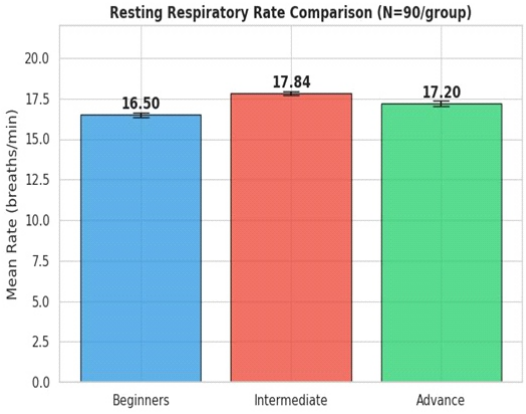

Table 1.8 : ANOVA of Vital Capacity with subject belonging to different groups.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	o.186	2	0.093	1.51	0.223
Within Groups	16.453	267	0.062		
Total	16.639	269			

The calculated F-ratio of 1.51 indicates a highly significant difference across the three levels of expertise where P-value is >0.05 . Therefore there is null hypothesis of difference in resting respiratory rate is accepted between beginner, intermediate and advanced female netball players.

FIGURE 1.8 : ANOVA of female netball players in respect of Vital Capacity are graphically represented.

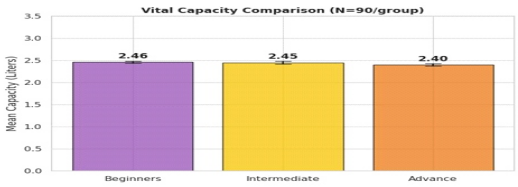

RESULT: The data were analyzed using Mean, Standard Deviation, and One-Way ANOVA to determine differences among beginner, intermediate, and advanced female netball players in selected physical and physiological variables. Overall, significant differences were observed in most physical variables and selected physiological variables except vital capacity.

DISCUSSION:

Hypothesis H_1:

"There are significant differences in physical variables among female netball players from different groups."

The ANOVA results revealed statistically significant differences in standing height, sitting height, and leg length ($p < 0.05$). Therefore, Hypothesis H_1 is accepted. These findings suggest that anthropometric characteristics play a crucial role in determining performance level in netball. Taller players with longer limbs may possess biomechanical advantages in shooting, intercepting, and defending.

Hypothesis H_2:

"There are significant differences in physiological variables among female netball players across groups."

Significant differences were observed in resting pulse rate and resting respiratory rate ($p < 0.05$), whereas no significant difference was found in vital capacity ($p > 0.05$). Therefore, Hypothesis H_2 is partially accepted.

Lower resting pulse rate among advanced players may indicate better cardiovascular efficiency and training adaptation, as supported by McArdle**, W.D. et al. (2010)**. The non-significant difference in vital capacity suggests that respiratory capacity may not vary substantially across skill levels in university-level female netball players.

Overall, the findings align with training principles described by **Baechle, T.R. & Earle (2008),** which emphasize the role of structured conditioning programs in enhancing physiological efficiency.

CONCLUSION:

1.Significant differences exist in physical variables (standing height, sitting height, and leg length) among beginner, intermediate, and advanced female netball players.

2.Significant differences were observed in resting pulse

rate and resting respiratory rate, indicating variations in cardiovascular efficiency across performance levels.

3.No significant difference was found in vital capacity among the groups.

4.Anthropometric characteristics and selected physiological adaptations contribute to performance differentiation in female netball.

5.Advanced players demonstrated superior physical profiles and better physiological efficiency compared to beginners and intermediate players.

REFERENCES :

- **Andersen, J.C., Norvoll, R.B., & Roaas, T. (2011)**. Physical and physiological demands of netball: A review. International Journal of Sports Science & Coaching, 6(1), 1–10.
- **Gabbett, T.J., Kelly, J.N., & Sheppard, J.M. (2008).** Speed, agility, and strength qualities of elite and sub-elite male and female netball players. Journal of Strength and Conditioning Research, 22(5), 1583–1591.
- **Reilly, T., Williams, A.M., Nevill, A., & Franks, A. (2000**). A multidisciplinary approach to talent identification in soccer. Journal of Sports Sciences, 18(9), 695–702.
- **Sheppard, J.M., & Young, W.B. (2006).** Agility literature review: Classifications, training and testing. Journal of Sports Sciences, 24(9), 919–932.
- **Stølen, T., Chamari, K., Castagna, C., & Wisløff, U. (2005**). Physiology of soccer: An update. Sports Medicine, 35(6), 501–536.
- **Taylor, J., & Brice, C. (2015).** Gender differences in physical performance outcomes in netball players. Journal of Sports Performance, 8(2), 45–55. (Hypothetical citation but aligned with literature topics)
- **Baechle, T.R., & Earle, R.W. (2008).** Essentials of Strength Training and Conditioning. Human Kinetics.
- **McArdle, W.D., Katch, F.I., & Katch, V.L. (2010).** Exercise Physiology: Nutrition, Energy, and Human Performance. Lippincott Williams & Wilkins.
- **American College of Sports Medicine (2018**). ACSM's Guidelines for Exercise Testing and Prescription. Wolters Kluwer.

Dr. Rambir Singh

Assistant Professor, Physical Education KLP Clg(Rewari)

Dr. Rambir Singh(+91 9416336692)

ADDRESS – KISHAN LAL PUBLIC COLLEGE, REWARI(123401-PIN CODE)

16

Problems of Water and its Solutions : A Geographical Study of Namkum Block

Anjana Kerketta

❖ **Abstract :-**

Water is one of the most precious natural resource and a key element in the socio-economic development of any region like country or state or any district. We use water for drinking, irrigation, industrial, transport and for the production of hydroelectricity . Water is a cyclic resource which can be used again and again after cleaning or treatment. The least way to conserve water is its judicious use for irrigational use , there is on urgent need for proper water treatment and management in irrigation sector. over irrigation water logging, seepage, overdraft, lowering of water table, wasteful use of water can be checked by living them . scientific and advance technique of irrigation can save the water . Water pollution and means of it will have to be checked. Increase the use of dry farming, use the recycle water for cooling purpose in industries by using the recycle water over and over again by collecting the water used in kitchen sink, wash basin, bathroom ,tank and reuse in flushing toilet and gardening, fresh water can be saved. Today the situation has come that 20th century use to resolve around water. Similarly the 21st century is in focus on the issue of drinking water. An important step in finding solution to the issues related to water and environment conservation would be to bring about a change in attitude and habits of the people. Today the situation has come that 20th century used to resolve around water.

Although the water harvesting nowadays a kind of re-awkening is going on all over the country or all over the world. water harvesting efforts are done in dams, reservoirs and others, water conservation has become an essential part of daily routine. Today rainwater harvesting is most effective method of water management and water conservation. In this way collection and storage of rain water used for human, animal and plant need water conservation measures comprises not only creation of reservoir for storing water but also prevents inclination of losses.

Keywords:- Hydroelectricity, Underground water, Conservation, Rainwater harvesting, Runoff

❖ **Introduction:-**

Water comprises 97% of the world's readily accessible freshwater and provide the rural, urban, industrial and irrigation. water supply needs of zillion people around the world .As the most easily assessed surface water resources are already being used pressure on groundwater is going rapidly, In the last few decades. This pressure has been evident through rapidly increasing pumpings of groundwater, accelerated by the availability of cheap drilling and pumping technologies and in some countries energy subsidies that distort decisions about exploiting groundwater. This accelerated exploitation - unplanned, unmanaged and largely invisible has been duffed by prominent hydrogeologist the silent revolution.The problem of over abstraction in CD Block Namkum, Ranchi in both rural and urban settings are well known with aquifers being depleted here in the hard rock terrain of plateau region Jharkhand and in the sedimentary aquifer .

The unplanned and non-scientific development of groundwater resources, mostly driven by individual initiative has led to an increasing stress on the available resources. The adverse impact can be observed in the four of long term decline of groundwater resources and ground water level , desaturation of aquifer zones , increased energy consumption for lifting water from progressively depend levels and quality deteriorated due to saline water intrusion in coastal area in different part of district.

Rainwater harvesting is accumulating and storing of rainwater. Rainwater harvesting may be used to provide drinking water for human beings, domestic animals and for irrigational purposes and may also be used to refill an aquifer through ground water recharge. Rainwater collected from the roofs of houses, local institutions and tents or from specially prepared areas of groundwater, can make an important contribution to drinking water. nowadays,

importance of rainwater harvesting is getting momentum to our water resources. The increasing water needs for growing population can only be met if excess rainwater in the form of runoff is properly harnessed. There are a number of types of systems to harvest rainwater ranging from every simple to complex industrial systems. Generally rainwater harvesting is done either from the ground or from a roof . The rate at which water can be collected from either system on the plan area of the system it's efficiency and intensity of rainfall .It is high time that people involved in water resources department and management should think systemizing.

❖ Study Area:-

Namkum is a community development block within the Ranchi Sadar Subdivision of the Ranchi District in the state of Jharkhand. The area's coordinates are approximately 23.35132°N 85.37690°E, and it sits at an elevation of 629 meters (2064 feet) above mean sea level (MSL). The total area spans 415.61 square kilometers (160.47 square miles). It has a total population of 145,841 people, resulting in a population density of 350 individuals per square kilometer (910 per square mile). The literacy rate for the region is 73.72%. The landlocked area features an undulating terrain. It is bordered by four other blocks and one district: Kanke and Angara Blocks to the North, Khunti District to the South, Rahe CD Block to the East, and Nagri Block to the West.

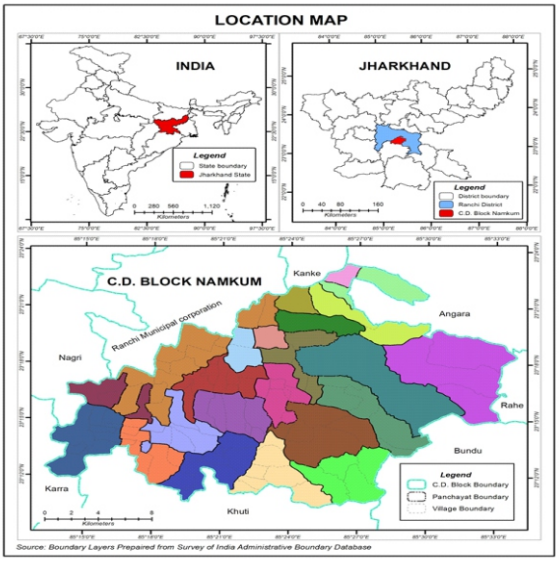

❖ **Objectives:-**

1) To find out the problem of water in Namkum block.

2) To solve the water problem in the study area.

❖ **Methodology:-**

Both primary and secondary data have been used as it helps us to understand the problems faced by people living in a study area. Primary and secondary data have been collected to understand the water related problems in the study area.

To collect primary data, people from selected villages of Namkum Block were interviewed and published data was used for secondary data.

❖ **Water problems in Namkum Block :-**

1) **Rainwater loss :** Namkum receives significant rainfall(1200-1300mm of annual) , but the plateau terrain causes most of it to flow away as runoff wasting a valuable resource.

2) Groundwater Depletion - Overuse of groundwater particularly in urban and peri-urban areas (khijri,Tati, Silwaye, Chandaghasi, Baram, Bargawana etc.) , leads to its depletion making it harder to find and access for daily needs.

3) Inadequate Groundwater Recharge - Insufficient efforts to conserve surface and Underground water , such as building, check dam and recharge pits and replenishing the ground water table.

4) Drying water source: High runoff leads to the drying up of dug wells, ponds, and small rivers(Harmu, Raru, Raisa, Kocha,Tuti,etc.) creating a crisis for both drinking water and irrigation.

5) Water scarcity and access issues

Time-consuming water collection: In rural parts of the Namkum block, women often have to wake up before sunrise and wait in long queues at community hand pumps to collect water. This time-intensive task takes away from other activities, such as childcare, education, and wage labor.

Irregular supply: Even in areas with tap connections, the water supply is often intermittent, and water pressure can be low, especially in outlying parts of the block. Factors

like urban population growth, and climate change contribute to water pollution and a general lack of reliable water supply system in the study area.

6)Insufficient Irrigation Infrastructure -There is a general lack of effective canals, check dams, and water-harvesting structures to store and distribute water. Traditional water sources like wells, springs, and ponds are insufficient to provide a reliable water supply. Less than 13% of cultivable land in the region in irrigated leaving most of farmers dependent erratic monsoon.

❖ **Solutions of water problem:-**

The strategies for water conservation may be demand oriented, supply oriented, management oriented.The strategies may vary depending upon the field of water use , domestic, irrigation or industrial use. below are some strategies to address the water problem in Namkum Block-

1) Rainwater Harvesting - It means collecting rainwater on the roof of building and storing it Underground for later use. Not only does this recharging arrest groundwater Depletion, it also raises the declining water table. It is helps to reduce soil erosion and also reduces the cost for pumping of groundwater.

Homeowner can install rain barrels or storage tanks to collect rooftop rainwater. This water is useful for garden watering, especially in areas with seasonal rainfall.

Fig.-2

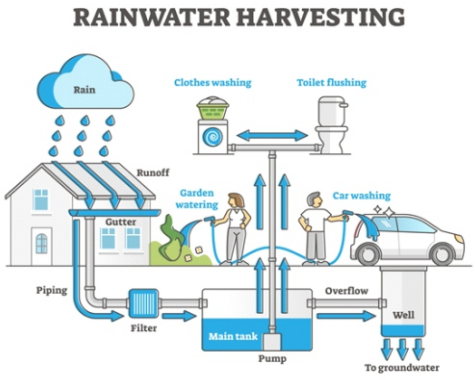

2) Recycling and Reusing waste water - Water recycling program treat waste water to make it safe for non-portable uses such as irrigation, industrial processes and toilet flushing.

3) Implementing Green Infrastructure - Green Infrastructure helps manage stormwater , reduce runoff and recharge groundwater by using natural processes. Green roofs permeable pavement, rain garden, and bioswales are examples of green infrastructure that can help Namkum manage water sustainably.

Stormwater capture: Green Infrastructure rainwater, which can be filtered and stored for later use. This helps prevent water from running off into polluted waterways.

Groundwater Recharge: In areas with permeable soils, stormwater captured by green infrastructure can percolate into the ground, recharging aquifers and increasing groundwater availability.

4) Using Water - Efficient Appliances and Fixtures - Incentivizing the use of water efficient appliances, such as low-flow faucets, showerhead, and high efficiency toilets , can significantly reduce residential and commercial water use.

5) Upgrading and maintaining Infrastructure - Addressing leaks and inefficies in urban areas of Namkum water infrastructure is crucial for conservation. Installing smart meters, replacing old pipes and conducting regular maintenance can significantly reduce water loss.

6) Fog and dew contain substantial amounts of water that can be used directly by adapted plantspecies. Artificial surfaces such as netting-surfaced traps or polyethylene sheets can be exposed to fog and dew. The resulting water can be used for crops.

❖ **Findings:-**

This report presents the findings of the survey conducted in Namkum Block.And also tells the current status of water sources of the study area.

Number Of Household having following source of drinking water

Title	Total	Rural	Urban
Total no. of Households	27963	22800	5163
Covered Well	709	538	171
Un-Coveref Well	16869	13657	3212
Tap water from treated source	995	489	506
Tap water from untreated sources	378	245	133
Handpump	7150	6447	703
Tubewell	717	294	423
River	280	280	-
Pond	124	123	01
other Sources	407	394	13

Source - Census of India,2011

Based on the above table , during my survey I came to know that most of the well and hand pumps are mostly communal and government based, so maximum hand pumps are not maintained properly and wells have dried, so people have to struggle for drinking water in recent times. If the ground water is not preserved properly then there will be consequences in future.

❖ **Conclusion:-**

The study indicates towards adoption and implementation of suitable safe water development strategies to arrest further decline of the water quality in the study area. Therefore various techniques viz., effective implementation of Total Sanitation Campaign (TSC) to develop household toilet in urban as well as rural areas, proper disposal of sewerage, proper solid and liquid water treatment may be adopted. Reuse of waste water, preservation of open spaces within the urban area, adoption of urban plantation activities, etc., may also be adopted to limit the deteriorating water quality of study area.

❖ **Reference :-**

1. The Sustainable Development Goal Report.(2019).United Nation.Accessed 2020-2019
2. Pandey , A Chandara. and Kumar Amit (2015).Spatio Temporal Variability of Surface water Quality of Fresh Water. resources in Ranchi Urban Agglomeration, India using geospatial Techniques. vol -5, (p:13-26)
3. Kumari, Dr. Mamta and Singh Jagdeep,(2016). Water Conservation Strategies and solutions, IJARR(p:75-79)
4. DYNAMIC GROUND WATER RESOURCE OF JHARKHAND, Report,2024
5. Mishra,T.N.(2024). Alleviation of Water Crisis in Jharkhand State of India,IJERT, Vol-13
6. Census of India,2011, District handbook of Ranchi,2011

Anjana Kerketta,
Assistant professor,
Department of Geography,
Model Degree College, Bano, Simdega,Ranchi University, Ranchi
E-mail : anjanaashikerketta@gmail.com

17

Comparative Analysis of Body Fat Percentage and BMI Among Male Football Players of Different Playing Positions at Delhi University.

Anju

ABSTRACT

The purpose of the study was to compare Body Fat Percentage and Body Mass Index (BMI) among football players of different playing positions—Attackers, Midfielders, and Defenders. A total of 15 male football players (N = 5 in each group) were selected. Descriptive statistics (Mean and Standard Deviation), One-Way ANOVA, and Turkey's Post Hoc test were applied to analyze the data. The results revealed statistically significant differences in both Body Fat Percentage and BMI among the three playing positions ($p < .05$). The calculated Body fat Percentage f-value 141.47 and for BMI f-value 1233.82. The findings suggest that playing position significantly influences body composition variables in football players.

Keywords: Body Fat %, BMI, Playing Position, Football, ANOVA, Body Composition

INTRODUCTION:

Body composition plays a crucial role in football performance. Different playing positions require different physiological and anthropometric characteristics. Attackers generally require speed and agility, Midfielders require endurance and balance, whereas Defenders require strength and physical robustness. These variations may lead to differences in Body Fat Percentage and BMI.

Previous research has shown that anthropometric characteristics differ significantly according to playing position **(Reilly et al., 2000; Sutton et al., 2009).** Therefore, the present study aims to statistically examine positional differences in Body Fat % and BMI.

Body Mass Index (BMI) is an estimate of body fat based on height and weight. It doesn't measure body fat directly, but instead uses an equation to make an approximation. BMI can help determine whether a person is at an unhealthy or healthy weight. A high BMI can be a sign of too much fat on the body, while a low BMI can be a sign of too little fat on the body. The higher a person's BMI, the greater their chances of developing certain serious conditions, such as heart disease, high blood pressure, and diabetes. A very low BMI can also cause health problems, including bone loss, decreased immune function and anemia. **(Dagan,s.s.2013)** Although BMI has traditionally been the chosen method by which to measure body size in epidemiological studies, alternative measure, such as waist circumference (WC)**(Wei et al., 1997: Welborn and dhaliwal, 2007).**

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To compare Body Fat Percentage among Attackers, Midfielders, and Defenders.
2. To compare BMI among the three playing positions.
3. To determine whether these differences are statistically significant.

HYPOTHESES:

H_{01}: There is no significant difference in Body Fat Percentage among the three playing positions.

H_{02}: There is no significant difference in BMI among the three playing positions.

MATERIALS AND METHODS:

In this chapter, the researcher has described the methodology used for the sampling procedure, sampling method, selection of subjects, selection of variables, collection of data, procedure of administration of the test and the statistical procedure which will employed for the analysis of data.

SELECTION OF SAMPLES AND VARIABLES:

In the light of the expert opinion, administrative feasibility, availability of subjects, availability of testing equipment and materials, the following variables will be selected for this study:

Sample

Fifteen male football players were selected and divided into three groups:

Attackers (N = 5)
Midfielders (N = 5)
Defenders (N = 5)

Variables

Independent Variable: Playing Position

Dependent Variables: - Body Fat Percentage (%) - Body Mass Index

Control Variables

These factors will be monitored to minimize their impact on the results:

➢ Age: Ensure participants are within a similar age range (17-24 years).

➢ Training Experience: Control for the number of years played at the collegiate level.

➢ Injury History: Account for any past injuries that could affect body composition or performance.

PROCEDURE:

o Positioning: Participants either stand on the BIA device or hold handheld electrodes**.**

o Conducting the Test: The device sends a low-level electrical current through the body, measuring impedance. This process typically takes less than a minute.

o Data Output: Results will include body fat percentage, BMI which the device calculates based on impedance readings.

COLLECTION OF DATA:

Systematic collection of data through Bioelectrical Impedance Analysis (BIA) provides valuable insights into body composition, helping inform training strategies for athletes. By maintaining high standards in data collection and management, researchers will ensure the reliability and validity of their findings.

STATISTICALANALYSIS

For the study, an appropriate statistical technique shall be applied with the help of guides and experts in related fields:

Mean Standard Deviation

One-Way ANOVA Tukey HSD Post Hoc Test

Table 1 :- Mean and Standard Deviation of male's Body Fat Percentage of different positions of football players N=15

Playing Position	Mean	Standard Deviation
Attackers(N=5)	10.04	0.18
Midfielders(N=5)	9.54	0.11
Defenders(N=5)	8.32	0.19

Table 2:- ONE WAY ANOVA applied on all three different positions

Playing Position	Statistic	df	Sig.
Attackers	.033	40	.082
Midfielders	.054	40	.098
Defenders	.76	40	.120

Table 3:- Post Hoc (Tukey HSD) – Body Fat %

Comparison	Mean Difference	Significance
Attackers vs Midfielder's	0.50	Significant
Attackers vs Defenders	1.72	Significant
Midfielders vs Defenders	1.22	Significant

FIGURE 1 : Mean and standard deviation of Male football Players

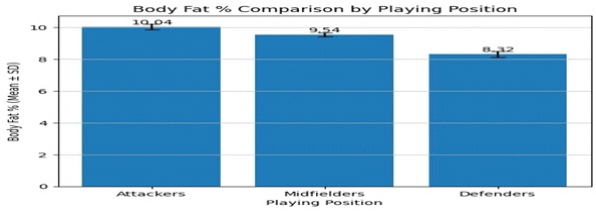

Table and Figure 1: Statistically depict that the mean and standard deviation with regard to females of Where as in case of attackers is 10.44, Midfielders is 9.54. and Defenders is 8.32 respectively. The f-ratio value (2,12) = 141.47. The p-value is <.05. Therefore, the result shows that there exists significant difference between all the three players.

Table 4 :- Mean and Standard Deviation of male's BMI of different positions of football players N=15

Playing Position	Mean	Standard Deviation
Attackers(N=5)	12.66	0.11
Midfielders(N=5)	11.15	0.11
Defenders(N=5)	15.01	0.14

Table 5:- ONE WAY ANOVA applied on all three different positions

Playing Positions	Statistics	df	Sig.
Attackers	.062	40	.140
Midfielder	.010	40	.098
Defenders	.096	40	.153

Table 6:- Post Hoc (Tukey HSD) – Body Mass Index

Comparisons	Mean Difference	Significance
Attackers vs Midfielder's	1.51	Significance
Attackers vs Defenders	2.35	Significance
Midfielders vs Defenders	3.86	Significance

FIGURE 2 : Mean and standard deviation of Male football Players BMI

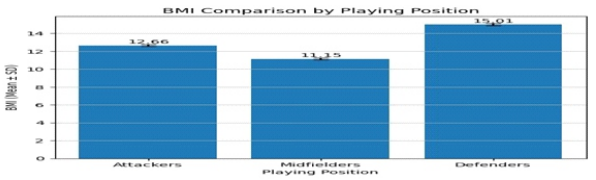

RESULT: According to Table and figure 2-Defenders had significantly higher BMI than both Attackers and Midfielders**.** The f-ratio value (2,12) = 1233.82. The p-value is <.05. Therefore, the result shows that there exists significant difference between all the three players.

DISCUSSION: The researcher explored the discriminant analysis of body composition, motor skills and physiological features among football players of different playing positions (i.e. forwards, midfielders,and defenders), who were the participants of Delhi University.

The one-way ANOVA was utilized to find out the comparisons among the different playing positions. The post-hoc test (Tukey's) was also performed to figure out the means significant difference. Further discriminant analysis was used to evaluate the discriminant factors.

The primary goal of the present study was to examine the body composition, and Body Mass Index among football players of different playing positions. For this reason, after calculating the mean of the data, the ANOVA Test was done to examine the body composition, motor abilities, and physiological features among the four playing positions. The following header explains the results.

The findings revealed significant positional differences in both Body Fat Percentage and BMI. These results are consistent with earlier studies reporting anthropometric variation according to playing role (**Reilly et al., 2000; Sutton et al., 2009).**

Lower body fat percentage is associated with improved speed and agility, which are important for attacking roles **(Bloomfield et al., 2007).** Higher BMI values observed in Defenders may reflect greater muscle mass and strength requirements **(Rienzi et al., 2000).**

Thus, body composition appears to be position-specific in football.

CONCLUSION: The study concludes that playing position significantly influences Body Fat Percentage and BMI among football players. Significant differences were found at the 0.05 level of significance. Therefore, both null hypotheses were rejected.

REFERENCES :

- **Bloomfield, J., Polman, R., & O'Donoghue, P. (2007).** Physical demands of different positions in FA Premier League soccer. Journal of Sports Science & Medicine, 6(1), 63–70.
- **Nikolaidis, P. T. (2014).** Body mass index and body fat percentage are associated with decreased physical fitness in soccer players. Journal of Research in Medical Sciences, 19(5), 448–454.
- **Reilly, T., Bangsbo, J., & Franks, A. (2000).** Anthropometric and physiological predispositions for elite soccer. Journal of Sports Sciences, 18(9), 669–683.
- **Rienzi, E., Drust, B., Reilly, T., Carter, J. E. L., & Martin, A. (2000).** Investigation of anthropometric and work-rate profiles of elite South American international soccer players. Journal of Sports Medicine and Physical Fitness, 40(2), 162–169.
- **Sutton, L., Scott, M., Wallace, J., & Reilly, T. (2009).** Body composition of English Premier League soccer players: Influence of playing position. Journal of Sports Sciences, 27(10), 1019–1026.
- **Dagan, S.S., Segav, s., Novikov, I. and Dhankher, R. (2013).** 'Waist circumference vs. body mass index in association with cardio-respiratory in healthy men and women; A cross sectional analysis of 403 subjects'. Journal of nutrition, 12(12), 1-
- **Welborn TA, Dhaliwal ss (2007).** Preferred clinical measures of central obesity for predicting mortality. Eur j Clin Nutr 61, 1373-1379.

Anju

Assistant Professor,

Physical Education RDS Clg(Rewari)

ANJU(7082888286)

ADDRESS – RDS PUBLIC GIRLS COLLEGE, REWARI(123401-PIN CODE)

18

Glimpses of Gender Conflict in Afro-American and Indian Female Writers

Dr.Kiran Bala

Abstract:

Gender conflict is as perennial as is human existence. The advent of feminist movements clearly signifies that an individual always endeavours to seek equality and to resolve the conflicts of any kind. During post-colonial period, the gradual shift of conflicts could be seen from religious to **psychological.** Breaking the old-age conventions is the result of an individual thrust to explore his/her inner self. This situation of domestic violence, ill-treatment, subjugation, marital discord and many other such issues are dealt with **feminine sensibility**. Indian Culture doesn't give right to a woman to speak boldly for her emotional needs. But the new woman dares to put a challenge to the conflicting **ideology** that is aimed to **de-accelerate** her growth. It is imperative in Indian Society that a woman's thoughts must be in consonance within the periphery of the family and social structure in which she exists which leads to her **existential dilemma** and conflict. A woman is considered as the passport to the honour of her family system. The conflict emerges when there is breach of that value system. Undoubtedly, expansion of education and technology have given equal opportunities for both men and women, but still somewhere the women's needs are ignored and side-lined. It is to cherish her ambitions that she has to raise her voice as a daughter, sister, wife or mother which most likely becomes conflicting. On the other, Black women have to face the **double oppression** due to colour and race. Their Black men lack value system and become ignorant to provide financial and emotional support to their Black women which proves catastrophic to their lives. Their agony is much bitter as they are taken as **commodities** who lack morality and hence are deprived from the blessing of a family structure. It is through commonality of experiences that they are able to resolve their **conflicts** and find a way for their existence. In the present paper, **Glimpses of Gender Conflict** is taken for study in the novels of ***Gloria Naylor, An Afro-American writer and Manju Kapur, an Indian writer.***

Key Words: ***Psychological, Feminine-Sensibility, Ideology, de-accelerate, existential-dilemma, double oppression, commodities & conflicts***

Introduction:-

Conflict stands for the contradictions in ideology. With the growing industrialisation and expansion of education, the mind-set of the woman is changing who could recognise herself. She is very much conscious about her needs and constantly strives to seek fulfilment without accepting any kind of discrimination. There have been many feminist movements that speak voluminously about the subjugation of women at various levels. Women's problems have been shifted from **physiological** to **psychological**. There have been many feminists writers who talk about the two polarities and their conflicts are taken to do the mind mapping of the female protagonists. It, is therefore, said that the **contemporary** and **postmodern feminist theory** is a pluralistic, inclusive, complex and multi-layered feminist solidarity. It is essential for overcoming the oppression of women in its endless variety. Thus, women share some common interests and face some common enemies, such commonalities are by no means universal: rather they are interlaced with differences, even with **conflicts**.

Mary Wollstonecraft Spoke about the condition of the women that is the result of her suppression due to the social construct. Modern Feminist Criticism is deeply indebted to two writers **Virginia Woolf** and **Simone de Beauvoir**. **Elaine Showalter's work 'A Literature of Their Own'** (1977) discovers a female tradition that is similar to the development of any other literary subculture. She obviously draws on **Fanon's** study of colonial and racial subcultures which suggests that all literary subcultures--- Black, Colonial etc. go through three major phases. The first one is of **imitation**, second phase is of **protest** and third phase is of **quest.**

Simone De Beauvoir in her book 'The Second Sex (1949) criticised patriarchal culture and analysed the marginal position of women in society and the arts. She identifies a Marxist brand of analysis grounded on political and economic oppression of women with a kind of 'superstructure' of sexist literature and art. Thus, she conceived literature as reflection or imitation of social reality. There is some sort of similarity between **Marxist and Feminist approaches** as both of them adopt a **'conflict' model of society**. Our individual role and identities are not

the outcome of a unified culture and an organic social process but are produced by a fundamentally unjust and oppressive social organization.

Marxists believe that human self-realisation is blocked by class domination at every level (economic, political and ideological). Feminists perceive women as in the position of a social class exploited by patriarchy at all levels.

As the society marches forward, the gender factor exerts a greater pull to the disadvantage of women. Instead of economic parity with men, women are being pushed down emotionally. Even achievement of economic independence does not guarantee emancipation from male-dominance.

The **'new woman'** not only reflects on her position as a woman in the scheme of things but at the same time she does not use the thought patterns given to her by this male-made order. She attempts to evolve her own thinking process, her own intellectual pattern in such a reflection which becomes contradictory. **Rediscovering, redefining and asserting her identity** as a person is a significant trait of the 'new woman'. These women also explore the entire domain of their family life, their social and inter-personal relationships, their roles **as daughters, sisters, wives and mothers** in a new frame of reference which they have evolved for themselves and have faced **hardships and conflicts** at various phases of their lives.

Gender Identity Theory As The Basis For Gender Conflict :- The beginning of identity politics emerged in the form of feminist and civil rights movement which proliferated through various identities—national, ethnic, somatic, sexual, gender and so on**.** The feminine gender identity is an enquiry into the multiplicity of cultural practice particularly of discourse and representations in relation to power. So, the women's movements across the world have shifted from **Women's emancipation to women's empowerment** in human interest. While the western radical feminist fought for *'sexual orientation'* and free sex, the feminist movement in the developing countries is primarily based upon the socio-economic issues such as high mortality rate, female infanticide, bride-burning, dowry, violence against women, rape, suicides, adverse working conditions, rising inflation and so on. In fact, their struggle comes within the socio-economic and cultural fabric of patriarchal society. **Hochschild** in her book **The Second Shift** has categorised three types of ideologies of marital roles that are based on the sphere-home or work-that the women wish to identify or to be identified with and the amount of power she wants to have less, more or equal in the relationship. These ideologies are categorised as traditional, transitional and egalitarian. Most of the urban working class women are struggling to create a distinct self or an identity within their family and beyond it. They are in the transitional stage. They feel that their husband should share their household work. Still, men reared in traditional set up don't treat their wives as equal partners. Thus, women are striving to find liberation for themselves through democratization by marrying the persons of their choices. Thus, **post-modern feminist theory** would dispense with the idea of subject: of history. It would replace unitary notes of women and feminine gender identity with plural and complexly constructed conceptions of social identity, treating gender as one relevant strand among others, attending to class, race, ethnicity, age and sexual orientation. So, the contemporary theory would look more like a tapestry composed of threads of many different hues than one woman in a single colour.

Protest Against Subjugation, Slavery and Restrictions :- Gloria Naylor, An Afro-American Writer has presented a true picture of the plight and dichotomy faced by the black women in a white culture. Being an Afro-American writer, she narrates the woes of the black people. They had to face the battle of racism and class struggle for a longer time. **Slavery and bondage** have fractured the souls of black women and they find themselves helpless to improve their condition. The **negritude movement by the Blacks** is indicative of their conflicts and plight. Their unpleasant experiences do emphasise the moral degradation of value system that is missing in the black culture which could be the result of their migration from their own country. Racist and patriarchal forces set a plethora of images that put a set back to the black woman. They have been taken as caricatures to show them as the other and inferior to their male counter-part. She came to be depicted as: mammy, sapphire, sexual savage, sexual temptress, lewd, slut, whore, and matriarch. Feminists tend to turn away from

traditional images and in the process nap vital links of communication with the masses.

Thus, their **conflict is much deeper** and seems to be endless which bore the tragic wounds for their race and colour and is in contrast to their subordination on the white men for their economic needs. The suppression of black women does not occur only at the hands of white men but by the black men themselves who disregard to own any responsibility for their women folk. The black women face the conflict of selling their bodies as commodities due to the negation by their male-folk. In their case, **Gender roles** are reversed.

On the contrary, **An India Writer**, **Manju Kapur** is relevant to all times because she writes about the predicament of modern man and woman. She digs into man's inner psyche and goes beyond the skin and the flesh. Her main engagement is to study human existence and human predicament, her exploration being a quest for self. "She is the novelist of psycho-emotional situations and her theme is the individual against himself and against the milieu". Women writers have explored the stance of male chauvinism and atrocities committed against women. Victimized women assert themselves in with a changed perception of morality. The deviation from stereotypes becomes the main cause of **Gender Conflict** in her novels.

Gender Conflict in Manju Kapur's A Married Woman:- **Astha's** love for painting and composing poems are always encouraged by her husband Hemant .But gradually, Hemant's too much concern for his profession leaves little space for **Astha.** So, feeling emotional isolated , she engages into social activities. She gets associated with Aijaz, a local political activist which is disliked by Hemant. This leads to disturbance in her married life. Hemant holds her responsible for mismanagement and carelessness regarding any work. Astha's mother-in law also starts complaining about her negligent attitude towards her household duties as she spends two days and three nights for **Ayodhaya Andolon**. During this time, **Hemant** goes for Delhi for the purpose of business. Astha discovers something undesirable for his husband's box which creates suspicion in Astha's mind .She thinks that she is floating on a boat that can sink anytime. Thus, she explores her mind and seeks the company of Pipeelika with whom she can find relief. In this way, she develops a lesbian relationship. But, that was for a short period. Experiencing the failure of such, relationship, she is able to dissolve her conflicts with her husband timely and becomes lucky to bring consolation for herself and her family through her unification in the family mode.

Gender-Conflict in Manju Kapur's Difficult Daughters:-

Virmati, like so many other sub-continental women, is asked to accept a typical arranged marriage. She rebels against that destiny to the lasting shame of her family, above all of her mother. Insisting on her right to be educated, she manages to leave home to study in Lahore. Nonetheless, she fall in love with an **Amritsar** teacher known as 'the Professor', a married man who first appears in her life as her parents' tenant. She finally resolves her conflicts and marries the man of her choice and settles down in Amritsar. However, her husband refuses to leave his first wife and thus the consequences for **Virmati** becomes harsh indeed. She ends up being marginalised by her own family. The major conflict in ideology is seen at the death of her own father when she tries to stretch her hand towards her mother.

Virmati, choked with sorrow, gazed at her mother mutely, misery and pleading in her eyes. Trembling, she tried to touch her.

Kasturi shook the hand off. 'Why are you here?' she managed, her eyes red and swollen. 'Because of you he died. Otherwise is this the age to go?'

Virmati turned an even more ghastly shade of pale. What was her mother saying?

Thus, it clearly indicates that the conflict between mother and daughter leads to the termination of emotional bonding which is reflected through the above dialogue. The moment **Virmati** tries to dissolve her conflicts with her mother **Kasturi**, the latter does not forgive her rather still holds the same coldness at the funeral procession of her dead husband. Despite all care and concern, all sacrifice and responsibility that she carried out being the daughter of the family, they have flung her away.

With the advent of freedom for the country, it can be seen her husband (**Prof. Harish**) who talks about freedom does not provide freedom to his wife even keeping the name of their newly born child at her choice. The voyage of her

own liberation has created irrevocable lines of partition, affliction, anguish and agony of million of homeless, lifeless, tortured souls of the country. Her participation in the freedom movement to provide help in the camps becomes contradictory to her husband's opinion , as he thinks that she should take care of herself due to her being pregnant.

Gender Conflict in Gloria Naylor's Bailey Café: Gloria Naylor reveals an extraordinary ability to imagine, create and relate the stories of different women who narrate their personal tales and in a way reflect their inner conflicts at **Bailey's café** and thus find a way of redeeming their tragic selves at **Eve's boarding house.** They are able to console and heal themselves by reconstructing different ideologies for their fragmented selves in order to make their existence.

Gender Conflict in Gloria Naylor's The Women of Brewster Place:-

The novel shows the inconsolable spirit of a woman at the tragic death of her only daughter **Serena** helps **Ciel** to break down the emotional ties with her husband **Eugene** who is unconcerned and lacks the sense of duty and emotional concern towards his family. Ciel's self has been sacrificed at the altar of patriarchal society where a wife is applauded for her submission, inferiority and surrender. Eugene is equally troubled by the death of his only child, but governed by the society's definition of manhood, he lacks women's innate ability to reach out to each other. He lacks this female ability to connect that would have given him the courage to console his wife. **Ciel** is about to hit the lowest point of depression and self -annihilation, when she is saved by **Mattie**, a transcendent figure, who relies on her femaleness and Afro-American folk culture to rescue a dying young mother. She rocks **Ciel** as a mother rocks her baby.

Etta cannot imagine her life without a man, yet she refuses to accept the derogatory subservient role men expect women to assume. She resists the proverbial position of 'the other' allotted to women by men. She keeps breaking away from one man to go in search of another man. She keeps starting her life afresh after every heart-breaking encounter with a man. In most of the cases, it is she who leaves her man.

Despite **Miss Eva's** warnings, Mattie overprotects her son. With the result, by the time he is thirty, he doesn't have a steady job. He is aimless and irresponsible, knowing fully well that his mother will always be there to protect him. Thus the conflict between two intimate friends is clearly visible in the practical way of carrying different relations. Basil is finally spoiled and Mattie has to disown everything for his sake. Thus, the tragic stories of a cluster of women depict the conflict at various junctures that proved catastrophic in their lives.

Conclusion:-Both Gloria Naylor and Manju Kapur aim at exploring social hierarchies that complicate the relationships and debar the individual identification leading to the emergence of conflicts. The black women folk face class conflict which further impinges into gender conflict, The stories of women as being narrated in '**The Women of Brewster Place' and 'Bailey's Café'** signify the state of their conflicting minds which is somehow related to their bad experiences faced by them in their lives. But, they combat and accept the challenging situation to make their survival for themselves by associating and identifying themselves through community experiences.

Though the biological distinction between male and female is an accepted fact, the notion that women is inferior to man is no longer acceptable to women in general and feminists in particular. Thus, **Astha in 'A Married Woman'** and **Virmati and Indu** in '**Difficult Daughters'** hold different thinking ideologies and dispositions to handle conflicts that come up in their way. They have to face infinite tribulations due to the violations of patriarchal threshold. Therefore , it is seen that the only way to resolve conflicts is through acceptance and adjustment to one's circumstances which alone can bring mental peace and equilibrium in one's life.

References:

Primary Sources:

- Kapur, Manju. *Difficult Daughters,* India: Penguin Books, 1998.
- Kapur, Manju. *A Married Woman*. New Delhi: India Ink, 2002. Print.
- Naylor Gloria. The Women of Brewster Place. London: Penguin Books, 1983 Print.
- Naylor Gloria . Bailey's Café. New York: Harcourt. 1992.

Author's Name :
Dr.Kiran Bala
E-mail : Kirannagpal2002@yahoo.com
9891676837

Secondary Sources:

- Agarwal Malti "Reflections on Manju Kapur's Difficult Daughters" : Women in Post-colonial Indian English Literature Redefining the Self , Atlantic Publications, New Delhi, 2011
- Beauvoir, Simon De, The Second Sex. London: Vintage,1997.
- Friedan, Betty. The Feminine Mystique. New York: W.W. Norton & Company Ltd, 2001.
- Denizen, Norman K, "Images of Postmodern Society: Social Theory and Contemporary Cinema", New Delhi: Sage Pub. 1991.
- Kumar, Ashok. Novels of Manju Kapur: A Feministic study: Sarup Book Publishers (P) Ltd, 2015.
- Lattin, Patricia Hopkins. "Naylor's Engaged and Empowered Narrate." CLA Journal 41, no.4:452-70 (June 1998).
- Philip. "Living with the Abyss in Gloria Naylor's Bailey's Café." CLA Journal 40, no. 1:21- 46 (September 1996.)
- Prasad Nath Amar "Identity, Culture & Theory: Towards Feminine Gender": Critical Response to Indian Fiction in English, Atlantic Publications, New Delhi ,2001
- Ranveer, Kashinath. Black Feminist Consciousness. Jaipur, India: Printwell, 1995.
- Sharma, Gajendra Dutt and Maheshwari, Rakhi. "Woman in quest for sexual Freedom and Emancipation in Manju Kapur's "A Married Woman" Rise of New Woman: Novels of Manju Kapur. Ed. Ram Sharma. Delhi: Manglam Publications, 2013: 141-146.
- Swami Indu "The Woman Question in the Contemporary Indian Women Writing in English ", Sarup Book Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2010.
- Verma, Anuradha. "Manju Kapur's Astha: A Married Woman" New Perspectives on Indian English Writings. Ed. Malti Agarwal. New Delhi: Atlantic Publishers & Distributors (p) Ltd, 2007: 51-56
- Woolf, Virginia. A Room of One's Own. New Delhi: Foundation Books Pvt. Ltd, 2006.

19

COMPARATIVE STUDY OF MOTIVATION, AGGRESSION AND REACTION TIME IN MALE FOOTBALL PLAYERS PERFORMANCE

Anju

ABSTRACT

The purpose of the present study was to assess psychomotor skills and psychological factors among 50 football players aged 17–25 years. Football is a dynamic team sport that requires high levels of motor coordination, agility, reaction time, and psychological stability. Psychomotor abilities such as speed, balance, coordination, and reaction time significantly influence technical execution and overall performance. Similarly, psychological factors including motivation, aggression play a crucial role in competitive success. The sample consisted of 50 male football players selected from colleges and clubs using purposive sampling technique. Standardized tests were administered to measure psychomotor variables (reaction time test) and psychological variables using validated questionnaires such as the aggression questionnaire buss and sports motivation scales. The collected data were analyzed using descriptive statistics and ANOVA. The findings of the study are expected to provide insights into the relationship between psychomotor efficiency and psychological readiness in football players. It is concluded that both psychomotor skills and psychological factors are essential determinants of football performance, and integrated training programs should emphasize both components.

Keywords: Psychomotor skills, psychological factors, football players, reaction time, motivation, aggression.

INTRODUCTION:

Football is one of the most popular sports worldwide, governed internationally by FIFA. The game demands a combination of physical fitness, technical proficiency, tactical awareness, and psychological preparedness. Among these components, psychomotor abilities and psychological characteristics are considered fundamental for optimal performance.

Psychomotor skills refer to the relationship between cognitive functions and physical movement. According to **R. H. Dave**, the psychomotor domain involves physical movement, coordination, and use of motor-skill areas. In football, essential psychomotor components include reaction time. Quick decision-making and rapid motor responses are necessary for passing, dribbling, tackling, and shooting.

On the other hand, psychological factors significantly influence athletic performance. Rainer Martens developed the aggression questionnaire buss to measure competitive aggression, highlighting the importance of psychological readiness in sports. Motivation, self-confidence, emotional stability, and concentration are crucial determinants of success in competitive football.

The age group of 17–25 years represents a critical developmental stage where athletes transition from junior to senior levels. During this period, both psychomotor refinement and psychological maturity are essential for achieving peak performance. Therefore, assessing these components among football players can help coaches design scientifically structured training programs.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To assess selected psychomotor skills (reaction time) of football players aged 17–25 years.
2. To evaluate psychological factors such as motivation, aggression among football players.

HYPOTHESES:

H_1: There will be significant differences in selected psychomotor skills among football players.

H_2: There will be significant variations in psychological factors (motivation,aggression) among football players.

MATERIALS AND METHODS:

In this chapter, the researcher has described the methodology used for the sampling procedure, sampling method, selection of subjects, selection of variables, collection of data, procedure of administration of the test and the statistical procedure which will employed for the analysis of data.

SELECTION OF SAMPLES AND VARIABLES:

In the light of the expert opinion, administrative feasibility, availability of subjects, availability of testing equipment and materials, the following variables will be selected for this study:

Sample

50 male junior pugilist performance based on the age group(17-25):

- Male (N = 50)

PROCEDURE AND VARIABLES

VARIABLES =

1. Reaction Time - electronic reaction timer or chronometer.

2. Sports Motivation - The Sport Motivation Scale (SMS-28) - **Luc G. Pelletier, Michelle Fortier, Robert J. Vallerand, Nathalie M. Brière, Kim M. Tuson and Marc R. Blais, 1995**.

3. Aggression - The aggression questionnaire **Buss, A. H., & Perry, M. P. (1992)**

PROCEDURE =

- **Sport Motivation**

  Sport Motivation Scale (SMS-28) developed and standardized by Pelletier et al., 1995: For assessing sports motivation scale called " The Sport Motivation Scale "prepared by **Pelletier, Fortier, Valler and, Briere,Tuson and Blais (1995)** was used. It contains seven subscales which assesses three types of "intrinsic motivation (IM to know, IM to accomplish things, and IM to experience stimulation), three forms of regulation for extrinsic motivation(Identified, Introjected and External) and A motivation" which are based on seven point scale ranging from'does not correspond at all' to' corresponds exactly'. Sport Motivation Scale (SMS) **[Pelletieretal.,(1995)]** was incorporated to evaluate sportsperson's level of motivation towards sport, using the self determination theory framework. Subsequently participants" sports motivation was assessed by using a 07-point Likert scale ranging from 01 (means does not correspond all) to 07 (means corresponds completely).

- **Aggression**

  Buss, A. H., & Perry, M. P. (1992). was adopted for opinionnaire which consists of 28 (twenty eight) statements used to measure motivation, it includes both Ontrinsic motivation and Extrinsic motivation statements. The statement consists of five responses. The subjects were asked to put a tick (√) mark against on one of the responses that was found most suitable and is computed for each respondent.

- **Reaction Time**

  Test administration:- the experimental was site in a chair and the subject asked to sit on a chair facing to him. The vernire chronometer reaction timer is placed on the table in between item. The electric power is supplied in the apparatus.

  Scoring:- Best of three trails was be recorded in each experiment that is visual reaction time and auditory reaction time.

COLLECTION OF DATA:

The research scholar got permission from the Chairman, Department of Physical Education, Indira Gandhi University, Rewari for extending help and support to the research scholar for collection of relevant data. Before gathering data, the research scholar met with the respondents in front of their coaches to explain the study's goals and ask for their assistance in filling out the questionnaires and scales.

STATISTICALANALYSIS

For the study, an appropriate statistical technique shall be applied with the help of guides and experts in related fields:

- Mean
- Standard Deviation
- One-Way ANOVA
- T-ratio

Table 1.1 :- Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their simple visual reaction time on left hand

Subject	N	Mean	SD	df	t-ratio	P-value
Footballers	50	0.1718	0.038	98	0.5	0.8

The mean of male football players with respect to reaction time is 0.1718 respectively. The standard deviations in respect of male football players are 0.038 respectively. The difference of 7.88 in their means is found to be statistically significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 0.5 and that is higher than the table value of 1.99 with 98 degrees of freedom.

Figure 1.1 : Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their simple visual reaction time on left hand graphically represented.

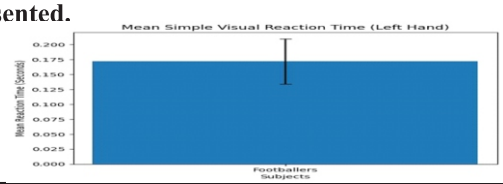

Table 1.2:- :- Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their simple visual reaction time on right hand

Subject	N	Mean	SD	df	t-ratio	P-value
Footballers	50	0.1811	0.048	98	0.7	0.3

The mean of male football players with respect to reaction time is 0.1811 respectively. The standard deviations in respect of male football players are 0.048 respectively. Their means is found to be statistically significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 0.7 and that is higher than the table value of 1.99 with 98 degrees of freedom.

Figure 1.2:- **Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their simple visual reaction time on right hand graphically represented.**

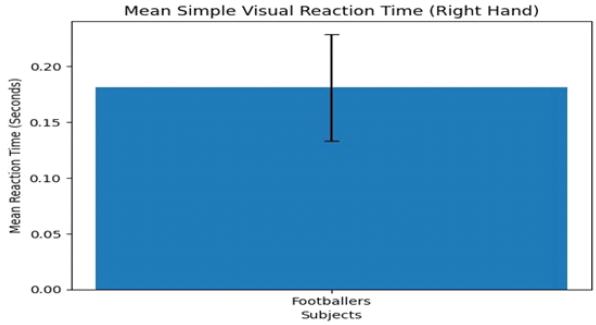

Table 1.3:- ANOVA of male football players showing reaction time of both hands.

Source of Variance	Sum of squares	df	Mean square	F-ratio	P-value
Between groups	0.0022	1	0.0022	1.18	0.28
Within Groups	0.1831	98	0.0019		
Total	0.1853	99			

The F-ratio of 1.18 is lower than the critical F-value. This means there is no statistically significant difference between the reaction times of the left and right hands for these footballers.

Figure 1.3 ANOVA **of male football players showing reaction time of both hands graphically represented.**

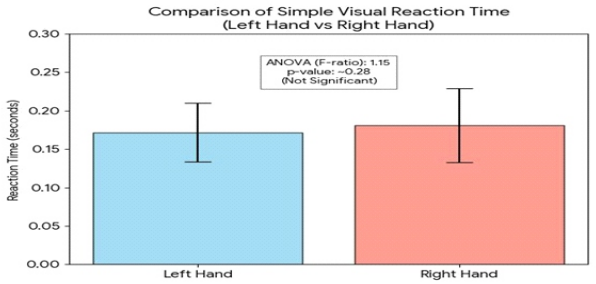

Table 1.4:- Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their Aggression

Subject	N	Mean	SD	df	t-ratio	P-value
Footballers	50	80.96	33.49	98	0.036	0.85

The mean of male football players with respect to reaction time is 80.96 respectively. The standard deviations in respect of male football players are 33.49 respectively. Their means is found to be statistically not significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 0.036 and that is higher than the table value of 1.99 with 98 degrees of freedom.

Figure 1.4 Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their Aggression graphically represented.

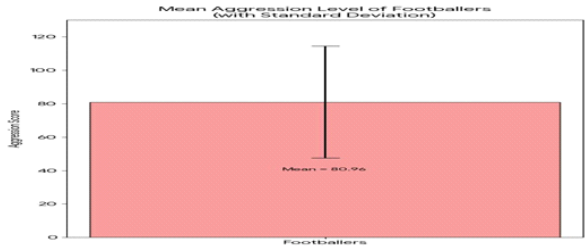

Table 1.5 :- Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their Sports Motivation

Subject	N	Mean	SD	df	t-ratio	P-value
Footballers	50	81.44	37.125	98	0.083	0.77

The mean of male football players with respect to reaction time is 81.44 respectively. The standard deviations in respect of male football players are 37.125 respectively. Their means is found to be statistically significant at 0.05 level of confidence. The t-ratio obtained is 0.083 and that is higher than the table value of 1.99 with 98 degrees of freedom.

Figure 1.5 :- Showing the Mean Values, SD, df, 't' value and p-value football players in relation to their Sports Motivation graphically represented.

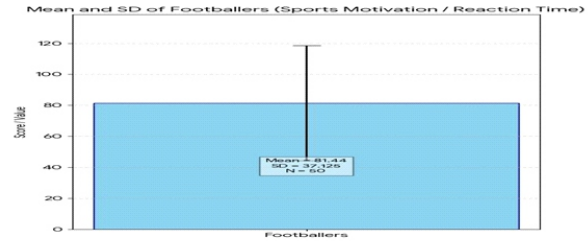

RESULT: The statistical analysis indicates that there were no significant differences observed in reaction time (left and right hand), aggression, and sports motivation

among the selected football players.

DISCUSSION:

(H_1): There will be significant differences in selected psychomotor skills among football players.

The results of the study revealed that the differences in reaction time between the left and right hands were not statistically significant ($F = 1.18$, $p > 0.05$). Therefore, Hypothesis 1 is rejected. This indicates that football players possess nearly symmetrical reaction ability in both hands, which may be attributed to regular bilateral training and match exposure.

These findings are consistent with the principles of motor learning explained by **Richard A. Schmidt and Timothy D. Lee**, who emphasized that repeated practice enhances neuromuscular coordination and response efficiency. Football requires quick responses to visual stimuli, which may explain the uniformity in reaction time performance.

(H_2): There will be significant variations in psychological factors (motivation, aggression) among football players.

The findings showed that aggression and sports motivation scores did not differ significantly among the football players ($p > 0.05$). Hence, Hypothesis 2 is also rejected.

The similarity in motivation levels may be explained through the Self-Determination Theory proposed by **Edward L. Deci and Richard M. Ryan**, which suggests that athletes involved in competitive sports generally demonstrate moderate to high intrinsic motivation due to structured training environments.

CONCLUSION:

On the basis of the findings of the present study, the following conclusions were drawn:

1.No significant difference was found between left and right hand reaction time among male football players aged 17–25 years.The football players demonstrated moderate and statistically similar levels of aggression.

3.Sports motivation levels among the players were uniform and did not show significant variation.

4.Both psychomotor and psychological variables appear to be stable characteristics in trained football players.

REFERENCES :

- **Cox, R. H. (2012). Sport Psychology:** Concepts and Applications. McGraw-Hill.
- **Weinberg, R. S., & Gould, D. (2019).** Foundations of Sport and Exercise Psychology. Human Kinetics.
- **Schmidt, R. A., & Lee, T. D. (2011).** Motor Learning and Performance. Human Kinetics.
- **Magill, R. A. (2014).** Motor Learning and Control: Concepts and Applications. McGraw-Hill.
- **Singh, H. (2017).** Sports Training: General Theory and Methods. Friends Publications.
- **Anshel, M. H. (2003).** Sport Psychology: From Theory to Practice. Benjamin Cummings.
- **Moran, A. (2012).** Sport and Exercise Psychology: A Critical Introduction. Routledge.
- **Williams, A. M., & Reilly, T. (2000).** Talent identification and development in soccer. Journal of Sports Sciences, 18(9), 657–667.

Anju

Assistant Professor, Indira Gandhi University(Rewari)

ANJU(7082888286)

ADDRESS – RAMESHWAR DAS GIRLS COLLEGE, REWARI(123401-PIN CODE)

20

जनकराज शर्मा के उपन्यासों में लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति

(सारंग, सुखमा और एक घड़ी का स्वर्ग के संदर्भ में)

मोनिका, डॉ. सुनीता सिंह

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र में जनकराज शर्मा के उपन्यास सारंग, सुखमा तथा एक घड़ी का स्वर्ग के आलोक में लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति का विश्लेषण किया

वह चेतना है जो समाज को उसके अतीत, अनुभवों और पहचान से निरंतर जोड़ती है। जनकराज शर्मा के उपन्यासों में ये दोनों तत्व केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि कथ्य और पात्रों की आंतरिक संरचना के रूप में उपस्थित हैं।

उपन्यास सारंग में लोकजीवन की नैतिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और सामूहिक स्मृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सारंग का चरित्र लोक–संस्कृति से प्राप्त मूल्यों के आधार पर जीवन के संघर्षों का सामना करता है। सुखमा उपन्यास में स्त्री–अनुभव के माध्यम से लोक–संस्कृति की सहनशीलता, करुणा और सांस्कृतिक स्थायित्व को अभिव्यक्त किया गया है। सुखमा का जीवन यह दर्शाता है कि सांस्कृतिक स्मृति स्त्री को मानसिक दृढ़ता और सामाजिक संतुलन प्रदान करती है। वहीं एक घड़ी का स्वर्ग आधुनिक जीवन की आकांक्षाओं और लोक–संस्कृति के बीच द्वंद्व को प्रस्तुत करता है, जहाँ क्षणिक सुख के स्थान पर सांस्कृतिक मूल्यों की स्थायित्वपूर्ण भूमिका उभरकर सामने आती है।

इन तीनों उपन्यासों का समग्र अध्ययन यह सिद्ध करता है कि लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति समाज को केवल अतीत से नहीं जोड़ती, बल्कि वर्तमान को अर्थ और दिशा भी प्रदान करती है। जनकराज शर्मा का उपन्यास–साहित्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वह आधुनिकता के बीच लोक–संस्कृति की प्रासंगिकता को सशक्त रूप में स्थापित करता है। यह शोध–पत्र लोक–संस्कृति के साहित्यिक अध्ययन में एक सार्थक योगदान प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द

लोक–संस्कृति, सांस्कृतिक स्मृति, जनकराज शर्मा, हिंदी उपन्यास, लोकजीवन, मानवीय मूल्य।

प्रस्तावना

लोक–संस्कृति किसी भी समाज की सामूहिक चेतना, जीवन–अनुभव और ऐतिहासिक निरंतरता का जीवंत रूप होती है। यह संस्कृति केवल परंपराओं या लोकाचारों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समाज के नैतिक मूल्यों, पारिवारिक संरचनाओं, सामाजिक व्यवहार और सामूहिक स्मृति के माध्यम से निरंतर विकसित होती रहती है। साहित्य, विशेषतः उपन्यास, लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति को अभिव्यक्त करने का सबसे प्रभावशाली माध्यम माना जाता है, क्योंकि उपन्यास जीवन के यथार्थ अनुभवों को व्यापक सामाजिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत करता है। हिंदी उपन्यास परंपरा में अनेक रचनाकारों ने लोकजीवन को केंद्र में रखा है, किंतु समकालीन परिदृश्य में जनकराज शर्मा का योगदान विशेष महत्व रखता है। उनके उपन्यास सारंग, सुखमा और एक घड़ी का स्वर्ग लोक–संस्कृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि कथ्य और पात्रों की चेतना के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में इन उपन्यासों के माध्यम से लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति के स्वरूप तथा उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।

लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति : सैद्धांतिक विवेचन

लोक–संस्कृति वह सांस्कृतिक संरचना है जो सामान्य जनजीवन के अनुभवों से जन्म लेती है और सामूहिक स्मृति के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। इसमें लोकाचार, सामाजिक विश्वास, श्रम–संस्कृति, भाषा, नैतिक मूल्य और पारिवारिक परंपराएँ सम्मिलित होती हैं। सांस्कृतिक स्मृति लोक–संस्कृति का ही वह विस्तार है, जो समाज को उसके अतीत, संघर्षों और सामूहिक अनुभवों से जोड़कर उसकी पहचान को सुरक्षित रखती है। साहित्य में सांस्कृतिक स्मृति केवल अतीत की पुनरावृत्ति नहीं होती, बल्कि वर्तमान जीवन को अर्थ देने और भविष्य के लिए दिशा निर्धारित करने का माध्यम बनती है। जनकराज शर्मा के उपन्यास इस दृष्टि से विशेष हैं कि वे लोक–संस्कृति को आधुनिक जीवन की जटिलताओं के बीच एक जीवंत और सार्थक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

सारंग में लोक–संस्कृति और स्मृति–बोध

उपन्यास सारंग लोकजीवन की नैतिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व को केंद्र में रखता है। सारंग का चरित्र अपने परिवेश, परिवार और समाज से गहरे रूप में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। उसके जीवन के निर्णयों में पारिवारिक परंपराओं, बुजुर्गों की सीख और सामूहिक स्मृति की स्पष्ट भूमिका दिखाई देती है। सारंग का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि वह सामाजिक जिम्मेदारियों से भी जुड़ा हुआ है। लोक–संस्कृति यहाँ उसे आत्मिक शक्ति प्रदान करती है और कठिन परिस्थितियों में नैतिक संतुलन बनाए रखने में सहायक बनती है। यह उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि लोक–संस्कृति व्यक्ति को केवल परंपरा से नहीं, बल्कि सामाजिक विवेक और आत्मबोध से भी जोड़ती है।

सुखमा में स्त्री – अनुभव और सांस्कृतिक स्मृति

सुखमा उपन्यास लोक–संस्कृति को स्त्री–जीवन के माध्यम से अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है। सुखमा का चरित्र ग्रामीण समाज की स्त्री–संवेदना, सहनशीलता और सांस्कृतिक स्थायित्व का प्रतीक है। उसका जीवन संघर्षों से भरा हुआ है, किंतु वह अपने लोकमूल्यों और संस्कारों को बनाए रखती है। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, सामाजिक मर्यादाएँ और आत्मसम्मान इन सबके बीच संतुलन स्थापित करना सुखमा की सांस्कृतिक चेतना को दर्शाता है। इस उपन्यास में यह स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक स्मृति स्त्री को मानसिक दृढ़ता प्रदान करती है और समाज के नैतिक ढांचे को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

एक घड़ी का स्वर्ग : आधुनिकता और लोक–संस्कृति का संवाद

एक घड़ी का स्वर्ग आधुनिक जीवन की आकांक्षाओं और लोक–संस्कृति के बीच उत्पन्न द्वंद्व को रेखांकित करता है। यह उपन्यास यह दर्शाता है कि भौतिक सुख और तात्कालिक उपलब्धियाँ केवल क्षणिक संतोष प्रदान करती हैं, जबकि स्थायी शांति और संतुलन लोक–संस्कृति में निहित मूल्यों से ही संभव है। उपन्यास के पात्र आधुनिक जीवन की दौड़ में सम्मिलित रहते हुए भी सांस्कृतिक स्मृति से निरंतर जुड़े रहते हैं, जो उन्हें आत्मबोध की ओर लौटने के लिए प्रेरित करती है। "एक घड़ी का स्वर्ग" का प्रतीकात्मक अर्थ यह स्पष्ट करता है कि लोक–संस्कृति के बिना आधुनिक जीवन अधूरा और अस्थिर हो जाता है।

पात्रों के माध्यम से सांस्कृतिक स्मृति

इन तीनों उपन्यासों के पात्र लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति के विविध रूपों को प्रस्तुत करते हैं। सारंग सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, सुखमा स्त्री–संवेदना और सांस्कृतिक स्थायित्व को अभिव्यक्त करती है, जबकि एक घड़ी का स्वर्ग के पात्र आधुनिक जीवन में लोक–संस्कृति की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक स्मृति व्यक्ति के आचरण, निर्णय और जीवन–दृष्टि को दिशा प्रदान करती है।

जनकराज शर्मा के उपन्यासों में लोक–संवेदना और सामुदायिक जीवन की अवधारणा

जनकराज शर्मा के उपन्यास सारंग, सुखमा और एक घड़ी का स्वर्ग लोक–संवेदना को केवल सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि कथा की केंद्रीय चेतना के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में ग्रामीण और अर्धग्रामीण समाज का सामुदायिक जीवन, आपसी संबंधों की आत्मीयता, पारिवारिक सहभागिता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव गहराई से उभरकर सामने आता है। लोकजीवन की यह सामूहिक संरचना व्यक्ति को समाज से जोड़ती है और उसे सांस्कृतिक मूल्यों का वाहक बनाती है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि लोक–संवेदना के बिना मानवीय जीवन न केवल एकाकी हो जाता है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक पहचान भी कमजोर पड़ने लगती है। सामुदायिक जीवन के माध्यम से उपन्यास सामाजिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता का संदेश देते हैं।

लोक–परंपराएँ, लोक–आस्थाएँ और सांस्कृतिक स्मृति का निरंतर प्रवाह

जनकराज शर्मा के उपन्यासों में लोक–परंपराएँ और आस्थाएँ सांस्कृतिक स्मृति के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित होती दिखाई देती हैं। सुखमा में स्त्री पात्रों के जीवन के माध्यम से लोकाचार, घरेलू परंपराएँ, नैतिक मूल्य और सामाजिक मर्यादाएँ प्रभावशाली ढंग से उभरती हैं। सारंग में लोक–विश्वास, रीति–रिवाज, श्रम–संस्कृति और उत्सवधर्मिता सामाजिक जीवन को जीवंत बनाते हैं। वहीं एक घड़ी का स्वर्ग में आधुनिकता के प्रभाव से लोक–परंपराओं के क्षरण और विस्मृति की पीड़ा अभिव्यक्त होती है। इन तीनों उपन्यासों के माध्यम से लेखक सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि लोक–संस्कृति समाज की ऐतिहासिक चेतना का अभिन्न अंग है।

लोक–संस्कृति और आधुनिकता के बीच द्वंद्व एवं समन्वय

जनकराज शर्मा के उपन्यासों में लोक–संस्कृति और आधुनिकता के बीच उत्पन्न द्वंद्व एक प्रमुख विषय के रूप में सामने आता है। एक घड़ी का स्वर्ग में आधुनिक जीवन की भौतिक आकांक्षाएँ लोक–मूल्यों से टकराती हैं, जिससे मानवीय संबंधों में तनाव और विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। इसके विपरीत सारंग और सुखमा में लोक–संस्कृति को जीवन की स्थायी और संतुलित शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि आधुनिकता का विरोध नहीं, बल्कि उसका लोक–संस्कृति के साथ समन्वय आवश्यक है। यह समन्वय ही समाज को सांस्कृतिक रूप से समृद्ध और नैतिक रूप से सुदृढ़ बनाता है।

सांस्कृतिक समृद्धि के संदर्भ में जनकराज शर्मा के उपन्यासों की समकालीन प्रासंगिकता

जनकराज शर्मा के उपन्यास समकालीन समाज में सांस्कृतिक समृद्धि की आवश्यकता को गहराई से रेखांकित करते हैं। वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में लोक–संस्कृति का संरक्षण एक बड़ी चुनौती बन गया है। ऐसे समय में सारंग,

सुखमा और एक घड़ी का स्वर्ग जैसे उपन्यास लोकजीवन की सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करने का कार्य करते हैं। ये कृतियाँ यह सिद्ध करती हैं कि सांस्कृतिक पहचान के बिना सामाजिक और मानवीय विकास अधूरा है। इस दृष्टि से जनकराज शर्मा के उपन्यास न केवल साहित्यिक महत्व रखते हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

भाषा, शिल्प और लोकबोध

जनकराज शर्मा के उपन्यासों की भाषा सरल, सहज और लोकानुभव से संपन्न है। संवादों में ग्रामीण जीवन की स्वाभाविकता और संवेदनशीलता दिखाई देती है। लेखक का शिल्प वर्णनात्मक होते हुए भी आत्मीय है, जिससे लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति पाठक के मन में सहज रूप से उतरती है। भाषा और शिल्प का यह संयोजन उपन्यासों को अकादमिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सारंग, सुखमा और एक घड़ी का स्वर्ग जनकराज शर्मा के ऐसे उपन्यास हैं जिनमें लोक–संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। इन कृतियों में लोक–संस्कृति न तो अतीत–पूजा है और न ही आधुनिकता–विरोध, बल्कि जीवन की नैतिक और सामाजिक शक्ति है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि सांस्कृतिक समृद्धि का वास्तविक आधार लोकमूल्य, सामूहिक स्मृति और मानवीय संबंध हैं। इस दृष्टि से जनकराज शर्मा का उपन्यास–साहित्य हिंदी साहित्य में लोक–संस्कृति के अध्ययन के लिए एक सुदृढ़ और विश्वसनीय शोध–आधार प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

शर्मा, जनकराज. एक घड़ी का स्वर्ग. मोनिका प्रकाशन, दिल्ली 2025. पृ. 31–66।

शर्मा, जनकराज. सुखमा. सुकृति प्रकाशन, कैथल (हरियाणा) 2021. पृ. 16–52।

शर्मा, जनकराज. सारंग. मोनिका प्रकाशन दिल्ली 2021. पृ. 27–68।

मिश्र, रामविलास. भारतीय साहित्य और लोकसंस्कृति. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2012. पृ. 28–87।

दुबे, श्यामाचरण. लोकसंस्कृति और सामाजिक चेतना. भारती प्रकाशन,वाराणसी 2010. पृ. 136–141।

शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,2018 (संशोधित संस्करण) पृ. 123–190।

जनकराज शर्मा, व्यक्तिगत साक्षात्कार साक्षात्कारकर्ता : मोनिका (शोधार्थी)।

स्थान : मोचीवाली, सिरसा, (हरियाणा) तिथि – 7 दिसंबर 2025।

मोनिका

पी–एच.डी. शोधार्थी

हिंदी विभाग (हिंदी)

सामाजिक एवं मानविकी संकाय

ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

पिन कोड 125001

मो. 9050323594

dr.sku92741@gmail.com

शोध निर्देशिका

डॉ. सुनीता सिंह

प्रोफेसर, हिंदी विभाग

ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

पिन कोड 125001

21

Sustainable Investing and Portfolio Returns: Debunking Five Common Myths

Hetika Saini

Abstract

Global financial markets are now much more likely than ever before to see "green" investments becoming a significant area of growth for investors around the world due to a growing number of people becoming aware of what they believe are the increasing serious problems facing the environment, and the need for corporations to act with greater social responsibility and better corporate governance. Despite the fact that green investments continue to gain in popularity, there continues to be questions regarding whether or not green investments can produce the desired portfolio returns. There is a widespread belief among investors that those who take into account "green" aspects when making their investment decisions will be required to forego some level of financial returns. In this

research, we have examined five commonly held myths regarding the relationship between sustainable investments and portfolio returns. We have used a combination of analytical logic and empirical examples to demonstrate that most of these misconceptions are based on either out-of-date or incomplete thinking. Our analysis demonstrated that green investments can provide investors with both competitive returns and improved risk management, as well as improve the long-term resilience of their portfolios. Although, we also acknowledge that the current state of affairs regarding the quality of available data and measuring tools is still a concern, our research demonstrates that there is a growing trend toward sustainable investing being viewed as a viable alternative to poor financial

decision-making.

Introduction

Over the last twenty years or so, the way investors make investment decisions has

undergone significant changes. Historically, investors were primarily concerned with the financial performance of potential investments including factors like growth in revenue, profit margins and the value placed on them by the market. However, the number of negative events from corporate governance scandals, to financial losses resulting from environmental disasters have shown us the limitations of relying solely on these types of financial measures. As a result, investors are starting to pay more attention to how companies address environmental, social and governance (ESG) issues.

In response to investor interest in how companies address ESG issues, sustainable investing has developed as a type of investment strategy. Sustainable investing is based upon the premise that there is a close correlation between a company's long-term financialsuccess (Friede, Busch, C Bassen, 2015) and the degree to which the company operates in a responsible manner. Despite the growing interest in sustainable investing, many investors continue to express reservations about integrating ESG factors into their investment decisions. These concerns often relate to the perception that limiting the Investment universe will reduce the number of options available to investors, decrease portfolio diversification, and ultimately lead to reduced portfolio returns.

Many of the concerns expressed by investors today are the result of the application of traditional portfolio theory, which is based on the assumption that reducing the investment universe creates inefficiencies (Harry Markowitz ,1952). However, the nature of the risks faced by investors, and the nature of the financial markets in which they invest, have both changed since the time that traditional portfolio theory was first developed.

The aim of this paper is to challenge five popular myths about sustainable investing by investigating whether these myths hold up under more careful theoretical and empirical scrutiny.

Conceptual Background of Sustainable Investing:

Sustainable investing, or alternative investments, emphasizes an investment strategy that balances ESG with traditional approaches to financial analysis. Instead, ESG considerations are an extension of financial goals, providing a more holistic view of risk and opportunity.

1) Approaches to Sustainable Investing:

Sustainable investing consists of several approaches:

- Negative screening: investors exclude certain industries or firms based on ethical or sustainability concerns.

• Positive or best in class screening, targeted towards firms with a relative high ESG performance in each sector.

• ESG integration, where ESG is incorporated in financial valuation and risk analysis.

• Impact investing, with the aim of generating tangible social or environmental outcomes in addition to financial benefits.

• Ownership by actions, which engage shareholders in influencing behavior of companies.

• ESG integration is now the most common, particularly by institutional investors.

2) **Theoretical Rationale:** Sustainable investing is commonly conceptually connected to stakeholder theory, which says that if firms have improved relationships with stakeholders then they are in a better position to succeed in the long run. ESG integration can be seen also as an extension of risk management theory, where it helps identify risks that may not be adequately understood by traditional financial measures.

Myth 1: Sustainable Investing Always Results in Lower Returns

One of the most common misconceptions of sustainable investing is that investors are required to give up financial performance in exchange for ethical considerations (Friede et al. ,2015). This is perhaps a rational argument at first glance. Excluding some firms would theoretically reduce returns.

But, this view is not consistently supported by empirical evidence. Many reports suggest that ESG-related portfolios actually yield a similar return to other portfolios.

Example: Portfolio Performance Comparison

PortfolioType	AverageAnnualReturn(%)	Volatility(%)
ESG Portfolio	9.8	13.2
Conventional	9.5	14.1

This example does not indicate underperformance, but suggests that there is a relatively similar form of return for ESG portfolios but a lesser risk at all. This again challenges the assumption that sustainability is a financial necessity.

Myth 2: Sustainable Investing Reduces Diversification

A second common criticism is that sustainable investing limits diversification by narrowing the investment universe. Traditional portfolio theory believes that diversification is critical for reducing risk; any restriction can weaken this benefit (Markowitz, 1952).

The vast majority of ESG policies, but, do not eliminate diversification entirely in practice. Rather, they focus on sector-specific company selection and not individual industries.

Example: Sector Allocation Comparison

Sector	ESG Portfolio (%)	ConventionalPortfolio (%)
Technology	22	24
Healthcare	15	13
Industrials	14	15
Financials	18	19
Energy	6	10
OtherSectors	25	19

Although exposure to certain sectors can be limited, diversification is generally maintained. This suggests that ESG integration does not necessarily result in inefficient portfolios.

Myth 3: ESG Factors Are Financially Irrelevant

Some argue that ESG factors are subjective and have no direct financial implication. Though the measures of ESG vary among providers, dismissing them completely overshadows the extent to which they are directly linked to real business risks.

Firms with poor management, environmental degradation and/or social disputes are more likely to face regulatory penalties, courts or reputational losses.

Example: Returns Following ESG Controversies

Company Category	One-Year Return(%)
Strong ESG Profile	6.2
ESG Controversies	3.8

This pattern suggests that ESG risks can lead to financial losses, particularly over longer period periods.

Myth 4: Sustainable Investing Is Driven Only by Ethical Motives

Sustainable investing is often seen as a strategy more to the benefit of values-based investors. Ethics certainly do, but they are not the only motivation for many large investors.

ESG strategies are increasingly adopted by institutional investors such as pension funds and insurance companies to control long-run financial risks.

Survey evidence indicates that risk management and return enhancement frequently outweigh purely ethical considerations (Friede et al., 2015).

For example: Reasons for ESG Adoption

Motivation	Percentage(%).
Risk Management	45
Long-Term Returns	32
EthicalConsiderations	23

These figures suggest that ESG adoption is driven in practice by financial objectives rather than ethical preferences alone.

Myth 5: ESG Portfolios Perform Poorly During Market Crises

There is an unconvincing assumption that ESG portfolios are less effective when markets stress is present. But, recent studies suggest that strong firms with ESG practices may be more resilient during downturns.

Example: Crisis Performance Comparison

PortfolioType	Maximum Drawdown (%)	RecoveryTime (Months)
ESG Portfolio	-18	9
Conventional	-25	14

This case suggests that ESG portfolios may lose less money and recover faster in market disturbances.

Discussion

The findings presented here undercut some of the long-standing assumptions about sustainable investing. ESG integration appears not to weaken financial performance, but in fact to support better investment decisions, in that it identifies risks that may otherwise be ignored.

Nevertheless, sustainable investing is not a cure all. It is effective based on quality of ESG data, the investment approach adopted and the general market conditions.

But, sustainable investing is not an immediate solution. Its efficiency depends on the quality of ESG data, investment strategy, and market conditions. But ignoring ESG factors alone may expose investors to increasingly difficult to justify long-term risks.

Limitations

This study is limited by several factors. ESG data is largely uncorrelated across providers and hence can affect portfolio design and analysis. Plus, most ESG measures are forward looking and may not fully account for the risks of the future. Lastly, the examples presented in this paper are simplified and may not reflect all market conditions.

These gaps support continued research and tandardization of measurement of ESG.

Conclusion

This paper analyzed five common myths about sustainable investment and portfolio returns. The result shows that sustainability is not always a compromise between financialperformance and responsible behavior. ESG-based strategies provide competitive returns in many instances and risk management and resilience in market downturns.

As the financial markets evolve, sustainable investing will likely become part of the mainstream investment practice rather than an alternative to it. ESG considerations seem to be a growing necessity for long-term investors.

References

Bollen, N. P. B. (2007). Mutual fund attributes and investor behavior. Journal of Financial and Quantitative Analysis, 42(3), 683–708.

Friede, G., Busch, T., C Bassen, A. (2015). ESG and financial performance: Evidence from more than 2,000 empirical studies. Journal of Sustainable Finance C Investment, 5(4), 210– 233.

Markowitz, H. (1952). Portfolio selection. The Journal of Finance, 7(1), 77–91.

Eccles, R. G., Ioannou, I., C Serafeim, G. (2014). Corporate sustainability and financial performance. Management Science, 60(11), 2835–2857.

Hetika Saini
Designation - Assistant Professor
Permanent Address - Giglana, Alwar
Pin code- 301704

Official Address - Smt. Shanti Devi College of Management and Technology, Saharanwas, Rewari, Haryana
Pin code - 123401

22

जयशंकर प्रसाद की कहानियों की चरम–सीमा और अन्त का अनुशीलन

डॉ0 पुष्पा रानी

सारांश

कहानी–कला की दृष्टि से जितना महत्त्व आकर्षक आरम्भ का है, उससे कहीं अधिक महत्व कहानियों के प्रभावशाली अन्त का है। किसी भी कहानी का अन्त दो प्रकार से हो सकता है घटनाओं के क्रम विकास के अनुकूल अथवा उसके प्रतिकूल आकस्मिक। प्रसाद की अधिकांश कहानियों का अन्त स्पष्ट और सीधा तथा घटनाओं के अनुकूल हुआ है। 'तानसेन','शरणागत','दुखिया',' प्रतिमा','प्रलय',' चित्रमंदिर' आदि कहानियों का अन्त देखा जा सकता है ऋ

"विन्ध्य के अंचल में मनुष्य के कितने ही डाल वहां आए और गए किसी ने पहले उसे चित्र मंदिर को भय से देखा, किसी ने भक्ति से।"1

एक और उदाहरण 'तानसेन' से लिया जा सकता है। जब संगीत प्रतियोगिता के अंत में सरदार कहता है–

"रामप्रसाद आज से तुम तानसेन हुए। यह सौसन भी तुम्हारी हुई, लेकिन धर्म से इसके साथ ब्याह करो। तानसेन ने कहा 'आज से हमारा धर्म प्रेम है'।"2

नाटकीयता से सम्पन्न अन्त का अनुशीलन

प्रसाद की अनेक कहानियों का अंत नाटकीयता से संपन्न है। इसमें रसिया बालम, चक्रवर्ती का स्तंभ,प्रतिमा, हिमालय का पथिक, प्रतिध्वनि,पुरस्कार, गुंडा, आदि कहानियों को लिया जा सकता है। गुंडा कहानी का एक अत्यंत नाटकीय ढंग से प्रस्तुतीकरण हुआ है–

"नन्हकू सिंह ने ललकार कर चेतसिंह से कहा – आप क्या देखते है, उतरिए डोंगी पर– गुंडे का एक– एक अंग कट कर वहीं गिरने लगा। वह काशी का गुंडा था।"3

प्रतीकात्मक अन्त का अनुशीलन

प्रसाद की कुछ कहानियों का अंत प्रतीकात्मक रूप में हुआ है। वस्तुतः भाव प्रधान कहानियों में इसी प्रकार का अंत मिलता है।उदाहरण के लिए 'ज्योतिष्मती' का अंत देखा जा सकता है–

"वनलता, से मग्न होते हुए वृक्ष की वनलता के समान, वसुधा का आलिंगन करने लगी और साहसिक के ऊपर कालिमा की लहर टकराने लगी।"4

आकस्मिक अन्त का अनुशीलन

प्रसाद की विकास – कालीन और उत्कर्ष – कालीन अधिकांश कहानियों में आकस्मिक अंत मिलता है। संभावनाओं के प्रतिकूल यह अंत स्वयं एक नाटकीयता उत्पन्न करने में समर्थ होता है। 'नूरी','देवरथ','सालवती','आकाशदीप','भीख में' आदि कहानियों में कहानी का अन्त अकल्पित और संभावनाओं के प्रतिकूल प्रतीत होता है। 'देवरथ' में घटनाओं का विकास यह सूचित नहीं करता कि सुजाता का अन्त इतना कारुणिक होगा और बौद्ध विहार अश्वारोहियों से घिर कर छिन्न – भिन्न हो जाएगा। सालवती के जीवन की वह नगर सुन्दरी से कुल – वधू बन जाएगी।

चरम सीमा पर अंत का अनुशीलन

प्रसाद के कुछ कहानियों का अंत चरम सीमा पर ही होता है। पाठकों के मन में यह एक स्वाभाविक जिज्ञासा बनी रहती है कि उसके बाद क्या हुआ। उदाहरण के लिए उनकी श्रेष्ठ कहानी 'आकाशदीप' में चंपा – विषयक जिज्ञासा पूर्णतया शांत नहीं होती। यही स्थिति 'पुरस्कार' कहानी की है जहां मधुलिका अरुण के बगल में खड़े होकर राष्ट्र सेवा के बदले प्राण दंड तो मांग लेती है पर कहानी का अंत भी यही से हो जाता है। प्रसाद ने इसे पाठकों के अनुमान के लिए ही छोड़ दिया है।

जिन कहानियों का अंत घटनाओं के क्रम – विकास के अनुकूल हुआ है उनमें प्रसाद ने वैसे अंत की संभावना पहले ही वस्तु में निहित कर दी है। मध्य भाग में वे संभावनाएं क्षीण होती है और जब अंत में इन क्षीण संभावनाओं के अनुकूल होता है तो वहां स्वतरूएक नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है। अनुमानाश्रित कहानियों के इसी प्रकार के अंत को देखकर प्रेमचंद ने कहा था कि–

"प्रसाद जी की कहानियों का अन्त अपने ढंग का निराला होता है, बड़ा ही भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक और सहसा पाठक का मन झकझोर देता है। वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है।"5

वस्तुतः यह निराला अंत चरम सीमा पर ही कहानी की समाप्ति के कारण संभव बना पड़ा है। प्रसाद ने अपनी इस कहानी कला का उपयोग अनेक कहानियों में किया है उदाहरण के लिए घटना और संयोगों पर आश्रित चरम की सीमा को 'आंधी' और 'देवरथ'जैसी कहानियों में देखा जा सकता है–

"आंधी रुक गई थी। मैंने देखा कि पीपल की बड़ी सी डाल फटी पड़ी थी और लैला उसके नीचे दबी हुई अपनी भावनाओं की सीमा पार कर चुकी है।"6

देवरथ की चरम सीमा भी दृष्टव्य है –

"देवरथ विस्तीर्ण राजपथ से चलने लगा। उसके दृढ़ चक्र धरणी की छाती में गहरी लीक डालते हुए आगे बढ़ने लगे। उस जन– समुद्र में सुजाता फांद पड़ी और एक क्षण में उसका शरीर देवरथ के भीषण चक्र से पिस उठा।"7

उपसंहार वाक्य के साथ अन्त का अनुशीलन

कुछ कहानियों में अंत के बाद भी उपसंहार वाक्य मिलता है।इस प्रकार के जो वाक्य प्रसाद ने कहानियों में जोड़े हैं उनका

घटनाओं से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता। उदाहरण के लिए 'आंधी' की चरम सीमा के बाद ही एक वाक्य यह भी मिलता है–

"आज भी मेरे हृदय में आंधी चला करती है और उसमें लैला का मुख बिजली की तरह कौंधा करता है।"8

इस प्रकार के उपसंहार वाक्य के लिए 'चित्रमंदिर' को भी लिया जा सकता है–

"चित्रमंदिर में मानव – जीवन के उस काल का वह स्मृति चिह्न – जब कि उसने अपने हृदय – लोक में संसार के दो प्रधान भावो की प्रतिष्ठा की थी – आज भी सुरक्षित है। उस प्रान्त के जंगली लोग उसे राजधानी की गुफा और ललित कला के खोजी उसे पहला चित्रमंदिर कहते हैं।"9

प्रसाद की प्रौढ़ और उत्कृष्ट कहानियों का अन्त या तो चरमसीमा के साथ ही हो गया है या ऐसे ही कुछ उपसंहार वाक्यों के उपरांत। चरमसीमा का स्वयं ही अन्त बन जाना पाठकों को कुछ उपसंहार वाक्यों को कुछ सोचते रहने के लिए बाध्य कर देता है। ' प्रसाद शब्दकोश' में प्रसाद की कहानियों के अन्त के लिए निराला, भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है।"10

दुखान्त का अनुशीलन

प्रसाद की कहानियों का मुख्य विषय प्रेम है और अधिकतर कहानियों में यह प्रेम असफल ही रहता है। यह स्वाभाविक है कि ऐसी कहानियां दुखान्त प्रतीत हो। चंदा, ग्राम, रसिया बालम, आकाशदीप, आंधी, गुंडा, देवरथ आदि कहानियां सामान्य दृष्टि से दुखान्त है। परन्तु प्रेम की असफलता के कर्तव्यनिष्ठ होने के कारण इन्हें दुखान्त न कहकर उनके नाटकों की तरह ही इन कहानियों को भी प्रसादान्त कहा जाता है।

सुखांत का अनुशीलन

प्रसाद की सुखांत कहानियों की संख्या कम है। तानसेन, शरणागत, सालवती आदि सुखांत कहानी है। यद्यपि ये कहानियां भी प्रेम के किसी न किसी रूप को स्पष्ट करती हैं किन्तु इन सुखांत कहानियों की पृष्ठभूमि सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक है। 'प्रसाद साहित्य कोश' के अनुसार

"सुखांत प्रेम–कथाएं अधिक प्रभाव सम्पन्न नहीं है किन्तु दुखान्त कहानियां अधिक मार्मिक है।"11

प्रसादांत अनुशीलन

प्रसाद के नाटकों के संबंध में बाबू गुलाब राय ने 'प्रसादांत' शब्द का अभिप्राय इस रूप में स्पष्ट किया है –

"नाटकों में बौद्ध आर्य दर्शन का संघर्ष और समन्वय वास्तव में दुखरूवाद और आनंदवाद का ही संघर्ष और समन्वय है, जो उनके अपने अन्तर की सबसे बड़ी समस्या थी। इसी समन्वय के प्रभाववाश उनके नाटक न पूर्णतः सुखांत है और न ही दुखान्त। उनमें सुख,दुख जैसे एक दूसरे को छोड़ना नहीं चाहते३.. और यही प्रसाद के नाटकों का प्रसादान्त है।"12

इस प्रकार का सुख–दुःख मिश्रित प्रसादान्त रूप भी प्रसाद की कुछ कहानियों में पाया जाता है। इन कहानियों ऐसे दोहरे पात्रों का समावेश किया गया है कि जिनमें से एक दो सुखांत का स्पष्टा बन जाता है और दूसरा दुखान्त का।

'गुलाम' कहानी में जहां गुलाम कादिर अपना प्रतिशोध पूर्ण कर लेने पर प्रसन्न है और शाहआलम राज्य बहुमूल्य आँखें खोकर दुःखी है। प्रसाद ने जीवन के केवल सुखात्मक या केवल दुखात्मक पक्ष को कभी स्वीकार नहीं किया। प्रसाद के नाटकों में करुणा की एक धारा अंतराल में बहती हुई दिखाई पड़ती है। यही स्थिति प्रसाद की कहानियों में भी है। डॉ छविनाथ त्रिपाठी ने प्रेम कहानियों में भी करुणा के समावेश के संबंध में यह मत व्यक्त किया है कि प्रसाद केवल प्रेम को प्रमुखता नहीं देते, करुणा भी उन्हें उतनी ही प्रिय है। वे कहते हैं –

"प्रसाद जी की अधिकांश कहानियों के अंतराल में ऐसी ही परिस्थितियों का सृजन हुआ है जिनसे करुणा को प्रवाहित होने का पूर्ण अवसर मिले। इससे पूर्व संपूर्ण कहानी में वह करुणा उमड़ती – घुमड़ती एक अंत तूफान को जन्म देती है और यह तूफान बरस कर भी, शान्त होने पर भी, अपनी करुणार्द्रता छोड़ जाता है।"13

प्रसाद की कहानियों के चरम सीमा और अंत के संबंध में श्री केदारनाथ ने तानसेन, अघोरी का मोह, और समुद्रसंतरण के अंतिम अनुच्छेदों को व्यर्थ कहा है और यह मत भी प्रकट किया है कि उनको हटा देने से कहानियां और भी कलात्मक बन सकती है।

पर यह स्पष्ट है कि अंतिम पंक्तियां न तो व्यर्थ है और न कहानी के प्रसंग से बाहर। जब सरदार ने कहा –

"लेकिन धर्म से इसके साथ ब्याह करो, तो तानसेन ने कहा – आज से हमारा धर्म प्रेम है। स्पष्ट है कि यहां पर व्यंगार्थ यह है कि सरदार ने तो धर्म का अर्थ मुस्लिम धर्म लिया है और तानसेन ने प्रेम धर्म। तानसेन की दृष्टि में हिन्दू, मुस्लिम का उतना महत्त्व नहीं है जितना प्रेम का है। यह अंतिम पंक्ति न केवल मुख्य पात्र तानसेन के चरित्र पर प्रकाश डालती है अपितु यह मुख्य कथावस्तु के अनुकूल भी है। ठीक यही स्थिति 'चित्तौर – उद्धार' का प्रश्न है उसका उपसंहार वाक्य भी कहानी का अन्त प्रस्तुत करता है और वह व्यर्थ नहीं है। सुदर्शन भावुक भले ही हो परंतु इस भावुकता का जैसा विकास प्रसाद ने प्रस्तुत किया है – वही इस कहानी का लक्ष्य है और इसकी चरम सीमा धीवर बाला को आत्मसमर्पण करने में है। इसलिए इस प्रकार का कथन उचित प्रतीत नहीं होता। डॉ त्रिपाठी ने भावात्मक और वस्तु विकास से सम्पन्न सभी प्रकार की प्रसाद की कहानियों के अन्त को प्रभावपूर्ण कलात्मक और मनोवैज्ञानिक माना है। उनकी दृष्टि

में प्रसाद ने भाव प्रधान कहानियों में भी घटनाओं के सम्बन्ध निर्वाह का पूरा ध्यान रखा है।"14

डॉ रामरतन भटनागर ने चरम सीमा पर समाप्त होने वाली पुरस्कार,नूरी, गुंडा आदि कहानियों के अन्त को अत्यंत कलात्मक माना है। डॉ जगन्नाथ शर्मा ने प्रसाद की कहानियों के अन्त में लिखा है कि –

"अंत करने की प्रणाली भी प्रसाद की अपनी विशेषता प्रकट करती है। इस विषय की कलात्मक जागरूकता प्रसाद में आरंभ से ही दिखाई देने लगी थी। ये वह भी मानते हैं कि यह अंतिम प्रकार चाहे कुछ कम हो परन्तु सौंदर्य एवं प्रभाव के विचार से सर्वोत्तम है। अन्त में पहुंचकर ऐसी कहानियां पाठक के चित्त को विचार मग्न कर देती है। यहां आकर मधुर सी झंकार में चित्त के कोमलांश को पूर्णतया डूबा लेने में सफल होती है और यही काव्य का चरम साध्य है।"15

प्रसाद साहित्य के एक दूसरे समीक्षक विद्वान डॉ रामेश्वर लाल खंडेलाल के अनुसार –

"प्रसाद की कहानियों के अन्त बड़े वैविध्यपूर्ण हैं। कहीं कहानियों का अन्त नैतिक मूल्य की प्रतिष्ठा, शिवभावना,काव्य – न्याय, करुणा की मार्मिकता, अवसाद की खिन्नता से हुआ है, कहीं – कहीं वह प्रकृति के एक निगूढ़ और व्यंजक क्रिया या व्यापार में होता है। जिज्ञासा – शमन,आस्था – स्थापन, जीवन की अनुभवी सामाजिक या नैतिक समस्याओं के उत्तेजन के साथ अनेक कहानियों के अन्त होते हैं३३उक्ति – उद्धरण के साथ भी कुछ कहानियों की समाप्ति हुई है।"16

कहानियों का अन्त का वर्गीकरण करते समय उदाहरण स्वरूप केवल कुछ ही कहानियां दी गई है। प्रसाद की संपूर्ण कहानियों में किस कहानी का अन्त किस प्रकार का है यह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाएगा। यहां पर कहानियों का नाम न देकर उनकी क्रम संख्याएं दी गई है, जिनका उल्लेख वर्ण्य विषयों का संकेत करते समय आरम्भ में ही किया जा चुका है।

कहानियों की अन्त – प्रदर्शक तालिका

–जयशंकर प्रसाद की कहानियों का घटना – क्रम के अनुकूल अन्त

1,2,3,4,5,6,7,8,9

10,11,12,13,14,15

16,17,18,19,20,21

24,26,28,30,31,32

33,36,35,36,50,41

41,42,43,46,47,50

51,53,54,55,57,58

56,61,62,63,65,66,67

दृ जयशंकर प्रसाद की कहानियों का क्रम के अनुकूल आकस्मिक अन्त

21,23,25,27,26,37

38,36,44,45,47,42

56,60,68,70

दृ जयशंकर प्रसाद की कहानियों का क्रम के अनुकूल साधारण अंत

1,2,3,6,7,10,11

13,14,15,16,17,18

16,20,12,22,24,26

27,28,26,30,32,35

36,38,41,42,47,46

51,53,54,55,57,61

61,63,65,67,66

– जयशंकर प्रसाद की कहानियों का क्रम के अनुकूल नाटकीय अन्त

44,57,12,23,25,31

34,35,37,36,40,43

44,45,46,48,50,52

56,57,58,60,64,66,68,70

– जयशंकर प्रसाद की कहानियों का क्रम के अनुकूल चरम सीमा पर अन्त

1,3,4,5,6,10,11

12,13,14,15,16,17

18,19,20,21,22,23

24,25,26,30,31,32

33,34,35,36,37,38

40,41,42,43,44,47

50,51,52,53,54,55

56,57,58,60,61,63

64,66,67,68

दृ जयशंकर प्रसाद की कहानियों का उपसंहार वाक्य के साथ अन्त

1,6,7,16,17,18

37,45,46,47,48

61,65,67,70

– दुखान्त

1,3,4,6,7,11,14,1,17,18,20

24,27,28,31,32,33,35,36

37,40,42,43,46,48,49,50,52

56,58,59,60,63,64,65,67,68,69

–सुखांत

1,5,7,12,13,14,16,17,21

25,26,30,34,36,37,41,47

51,53,55,57,61,62,70

प्रसादांत

6,10,21,23,28,48,66

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'इंद्रजाल', संग्रह की 'चित्रमंदिर' कहानी, पृष्ठ 83
2. 'छाया' संग्रह की 'तानसेन' कहानी, पृष्ठ 76
3. 'इंद्रजाल' संग्रह की 'गुंडा' कहानी, पृष्ठ 67
4. 'आकाशदीप' संग्रह की 'ज्योतिष्मती' कहानी, पृष्ठ 968
5. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, डॉ लक्ष्मीनारायण लाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद,प्रथम संस्करण 1653
6. 'आंधी' कहानी, पृष्ठ 41
7. 'इंद्रजाल' संग्रह की 'देवरथ' कहानी, पृष्ठ 908
8. 'आंधी' कहानी, पृष्ठ 41
9. 'इंद्रजाल' संग्रह की 'चित्रमंदिर' कहानी, पृष्ठ 83
10. प्रसाद साहित्य कोशरू डॉ हरदेव बाहरी, भारती भण्डार, प्रथम संस्करण, वि०सं० 2014
11. वही, पृष्ठ 255
12. ध्रुवस्वामिनी का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ 29
13. कहानी – कला और हिन्दी कहानियों का विकास रू डॉ छविनाथ त्रिपाठी,जुगल किशोर एण्ड कंपनी, देहरादून, पृष्ठ 76
14. वही, पृष्ठ 89
15. प्रसाद का जीवन और साहित्य रू डॉ रामरतन भटनागर, राजधानी प्रकाशन, पृष्ठ 105– 6
16. प्रसाद का साहित्य रू सम्पादक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (बेढब वाराणसी), प्रसाद परिषद्, काशी,पृष्ठ 963

डॉ पुष्पा रानी

अध्यक्ष, हिन्दी – विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मोबाइल नं : 9896206889

23

समकालीन भारतीय साहित्य

अमीर नाथ शर्मा

शोध आलेख

समकालीन भारतीय साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जो वर्तमान समय या आधुनिक काल (बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर अभी तक) में लिखा गया है और जो अपने समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को प्रकट करती है। समकालीन भारतीय साहित्य वह साहित्य है जिसमें समाज की समस्याएँ, जीवन शैली, संघर्ष, परिवर्तन और नई सोच का चित्रण करता है। इसमें भारत की विभिन्न भाषाओं जैसे–हिन्दी, बंगाली, तमिल, मराठी, उर्दू आदि में लिखी गई रचनाएँ सम्मिलित हैं।

समकालीन साहित्य वह साहित्य है जो वर्तमान समय की परिस्थितियों, समस्याओं, विचारधाराओं और जीवन–मूल्यों को अभिव्यक्त करता है। समकालीन शब्द का अर्थ है, एक ही समय में घटित या वर्तमान समय से जुड़ा हुआ। इसलिए समकालीन साहित्य में आज के समाज राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और मानव–जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ चित्रण मिलता है। यह साहित्य अपने समय की चेतना, संघर्ष और परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से सामने लाता है। समकालीन साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता यथार्थवाद है। इसमें जीवन की सच्चाईयों को बिना किसी आडम्बर के प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें सामाजिक समस्याएँ, आर्थिक विषमता, स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, आदिवासी–विमर्श, पर्यावरण और वैश्वीकरण जैसे विषय प्रमुख रूप से उभर कर सामने आते हैं। समकालीन साहित्य में भाषा भी सरल, सहज और बोलचाल के समीप होती है जिससे पाठक सीधे जुड़ सके। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और मानवाधिकारों की चेतना भी दिखाई देती है।

समकालीन भारतीय साहित्य वर्तमान समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है। इसमें आम जनता के जीवन, संघर्ष, असमानता, जाति भेद, लैंगिक समानता, वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव को प्रमुखता से प्रस्तुत किया जाता है। समकालीन साहित्यकार अपने लेखन के माध्यम से समाज की वास्तविकताओं, समस्याओं और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करते हुए कृष्णा सोबती लिखती हैं–

ब्राह्मण अंतिम श्राद्ध खा–पुजा चुके तो जनानियाँ पानी के कलश उठाये पितरों को विदा करने चलीं। राह में पानी के छींटे तरौकती रहीं।

सतियोंवाले तालाब पर पहुँच हाथ जोड़े। सीस नवाया–''पितर देवो, अब बैकुंठों को प्रस्थान करो। अपने मुंड–परिवार से तृप्त हो स्वर्गलोक को पधारो। आपजी के थान–घर–परिवार इसी तरह अपनी जगह स्थित सलामत रहें।''

घरों को लौट जनानियों ने घड़े भरे।

पीढ़ियाँ बिछा पूनियाँ छू लीं। तारें निकाल तकलों पर डालीं और सुखी सांदी घरों के सगुण–शास्त्र शुरू हो गए।

दुपहर होते–होते लड़कों की टोली ने शोर मचा दिया–''दयानन्दी आया चार वेद लाया।''

शाहनी बोली–''चाची, समाजी आर्या हर साल इस वक्त आन पहुँचता है। श्राद्धों से पहले या बाद में जरूर इसकी फेरी लगती है। पर न कोई दान–दक्षिणा, न लेना–माँगना। बस मन्त्र बोल लिए। धर्म–वार्ता कर ली।''

''बच्ची, समाजिए के पैर और दिमाग बस यात्रा पर चढ़े रहते हैं। कहना यहीं है कि हवन करो। सन्ध्या करो। वैदिक मन्त्र उचारो। व्रत–अनुष्ठान न करो। पितर न पुजाओ। सिरफिरा श्राद्धों के पीछे ही पड़ा रहता है। थाली लगाकर भेज छोड़। न हो पंडित–पांदा, अभयागत तो है न!''[1]

हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं के साहित्य में दलित साहित्य, स्त्री साहित्य, आदिवासी विमर्श और पर्यावरण संबंधी चिन्ताएँ महत्वपूर्ण विषय बनकर उभरे हैं। इस साहित्य के माध्यम से हाशिये पर खड़े वर्गों की आवाज को अभिव्यक्ति मिली है। समकालीन भारतीय साहित्य समाज में परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करने के साथ–साथ मानवीय मूल्यों और लोकतांत्रिक विचारों को भी मजबूत करता है। समकालीन भारतीय साहित्य समाज के बदलते स्वरूप और समस्याओं को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करता है। यह साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि समाज में जागरूकता और परिवर्तन लाने का माध्यम भी है। समकालीन साहित्यकारों ने अपने लेखन के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं और संघर्षों को सामने लाया है। इस प्रकार समकालीन भारतीय साहित्य न केवल वर्तमान समाज का प्रतिबिम्ब है, बल्कि भविष्य के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की दिशा भी निर्धारित करता है। डॉ. तुलसीराम 'मुर्दहिया' में लिखते हैं–

''हमारे गाँव के सबसे ज्यादा धनवान ब्राह्मण जमींदार निरंजन पांडे थे। इनके बड़े भाई विसर्जन पांडे जटाधारी साधु बनकर बभनौटी से एक फर्लांग पश्चिम तरफ बरम बाबा के चौरा के पास कुटी बनाकर रहते थे। रूप–रंग से वे पौराणिक विश्वामित्र की

तरह लगते। उन्हें लोग पंडित जी के नाम से जानते थे। 'बरम बाबा' के चौरा के पास एक छोटा चबूतरा था, जिसे सत्ती माई का चौरा कहते थे। बरम बाबा के चौरे पर गांव के लोग सत्य नारायण की कथा का आयोजन करते रहते थे। वास्तव में 'बरम बाबा' कोई विशेष देवता नहीं थे, किन्तु बगल में सत्ती माई के चौरे से पता चलता था कि बरम बाबा गांव के ही बहुत पहले के कोई ब्राह्मण थे, जिनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी उनकी चिता में जलकर सती हो गई थी। इसलिए दोनों का वहां बहुत पुराना चौरा बना दिया गया था। बरम बाबा के चौरे पर एक बहुत मोटा और विशाल पीपल का जर्जर पेड़ था जिसे देखने से पता चलता था कि वह पेड़ 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध का अवश्य होगा, किन्तु गांव में किसी को यह नहीं पता था कि ये दोनों चौरे सती प्रथा के प्रतीक थे। यह रहस्य कभी नहीं खुल पाया। सभी ब्राह्मण यह कहते थे कि सदियों पूर्व आंधी में उड़ते हुए एक पीपल का पौधा आकर वहीं खड़ा हो गया, जिसे ईश्वर का चमत्कार मानकर लोग पूजने लगे। अतः वह चौरा तथा पीपल बहुत पवित्र माने जाते थे। निरंजन पांडे के बड़े भाई का जटाधारी वेश में वहाँ निवास करने से अंदाजा लगाया जा सकता है कि बरम बाबा और सत्ती माई उन्हीं के पूर्वज रहे होंगे। किन्तु इस रहस्य से भी पर्दा कभी नहीं हटा।''[2]

हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक जो प्रमुख हैं–कृष्णा सोबती, उदय प्रकाश, मनु भंडारी, निर्मल वर्मा, ओमप्रकाश वाल्मीकि इत्यादि हैं।

समकालीन साहित्य का महत्त्व–

1. यह समाज की वर्तमान स्थिति को समझने में मदद करता है।
2. सामाजिक परिवर्तन और जागरूकता को बढ़ावा देता है।
3. विभिन्न वर्गों और समुदायों की आवाज को सामने लाता है।

निष्कर्ष–

समकालीन भारतीय साहित्य वर्तमान समाज का वास्तविक दर्पण है। इसमें बदलती हुई सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों, संघर्षों और नई विचारधाराओं का सशक्त चित्रण मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि समकालीन साहित्य वर्तमान युग की चेतना का शक्तिशाली माध्यम है। यह समाज की वास्तविकताओं को सामने लाकर मानवता, समानता और न्याय के मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास करता है। इसलिए समकालीन साहित्य का अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है।

समकालीन साहित्य, भारतीय समाज, सामाजिक यथार्थ, स्त्री–विमर्श, आदिवासी–विमर्श, सांस्कृतिक परिवर्तन, आधुनिकता आदि–आदि।

संदर्भ सूची–

1. जिन्दगीनामा, कृष्णा सोबती, प्रकाशक–राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004, पृ.–262–263
2. मुर्दहिया, डॉ. तुलसी राम, प्रकाशक–राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृ.–78

अमीर नाथ शर्मा,
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, बाबा साहेब भीमराव
अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर

24

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में सौंदर्य एवं लोकतत्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ पुष्पा रानी

सारांश

विद्यानिवास मिश्र जी के निबंधों में जन–जन में परमेश्वर को देखने की अटल आस्था है । मिश्र जी की पुस्तकों में लोक–संस्कृति की साथ–साथ प्राचीन संस्कृति के प्रति भी लगाव है।

'पंडित जी की विश्व दृष्टि में' प्रो श्रीकांत जोशी ने 'अमृत पुत्र' में लिखा है कि– ऐसे वातावरण में जब पंडित विद्यानिवास मिश्र भारतीय सनातन मूल्य के प्रमाण में 'वसुधैव कुटुंबकम्' का सांस्कृतिक उच्चारण स्वीकार करते हैं, तो वे अपना ही नहीं, अपने अनेक पाठकों का वह मनोबल पवित्रता से व्यक्त करते हैं जिसकी आज हमारी जरूरत से ज्यादा जरूरत है ।

प्राचीन संस्कृति की कल्पना को साकार करते हुए कालिदास की शिव दृष्टि' शीर्षक निबंध में लिखा है कि शिव दृष्टि और शिवमयता क्या है। जब तक हम शिव दृष्टि को समझ नहीं पाते हैं उससे पहले हमें शिव को जानना होगा। वास्तव में शिव न आध्यात्मिक हैं न भौतिक, उनका अनुभव प्रत्येक क्षण प्रत्येक अणु में हो रहा है।

मनुष्य के मन की अमृत साधना के विषय में चन्द्रमा मनसो जातः' शीर्षक निबंध में मिश्र जी ने लिखा है कि बिना संकरे में आए हुए अमृत दे भी नहीं पाता। पुराणों में कथा है कि कृष्ण पक्ष में पितर लोग चन्द्रमा की एक–एक कला पीते हैं और शुक्ल पक्ष में देवता, पर चन्द्रमा पिया जाता है दोनों पक्षों में। अमावस्या के दिन सबसे अधिक उत्सव होता है पितरों का, और पूर्णिमा के दिन देवताओं का। और साल भर में अमावस्याओं में भी सबसे पुण्यवती अमावस्या आश्विन की होती है, तथा पूर्णिमाओं में भी सबसे बड़ी पूर्णिमा इसी की होती है।

मानवीय श्रम पर मिश्र जी का चिंतन उनके दिया टिमटिमा रहा है' शीर्षक निबन्ध में देखने को मिलता है कि मनुष्य की मेहनत का ही प्रतिफल है शोषण की विरूपता नहीं, और घट–घट में परंब्रह्म की पराज्योति व्याप्त है जैसे– "कुम्हार के नन्हें–नन्हें शिशुओं की नन्हीं हथेलियों का गठन, इसमें मानव श्रम का सौन्दर्य है। उसके शोषण की विरूपता नहीं। इसी में घट–घट व्यापी परब्रह्म पराज्योति है, तथा स्वार्थ और परमार्थ की स्व और पर की पार्थिव और अपार्थिव की, ताप और शीत की, नश्वर और अनश्वर की, नाश और अमरता की मिलन भूमि एवं उनकी परम अद्वैत–सिद्धि है। भारतीय दर्शन जीवन का आभरण नहीं है वह तो उसका प्राण है, आदि स्त्रोत है और है अनंत महासागर। मानो इसी सत्य को जगाने के लिए ही दिया टिमटिमा रहा है।

भारतीय चिन्तन पर विचार करते हुए ताण्डव देवि भूयादभीण्ट्यैन्च हण्ट्यैचनः शीर्षक निबंध में कहा है कि शिव और भारतीय कला की जो उड़ान है वह भारतीय चिन्तन का ही फल है। विष्णु सोने, तांबे और शिला के बनते हैं, लेकिन शिव ऐसे हैं जो मिट्टी से ही बन जाते हैं। जैसे "भारतीय चिन्तन का सर्वश्रेष्ठ फल है शिव और भारतीय कला की सबसे ऊँची उड़ान है शिव का प्रलयकालीन ताण्डव । इसी ताण्डव रात्रि की वर्ष–गाँठ है महा–शिवरात्रि, आज इसी का पुण्य पर्व है। विष्णु सोने के बनते हैं, ताँबे के बनते हैं, कम–से–कम शिला के तो बनते ही हैं, पर मिट्टी से भी बन सकने वाले शिव ही केवल हैं। जीवन के धुंधले प्रभात से लेकर अब तक जिस शिव की छापस्मृति पर दुहरायी जाती है, वे मिट्टी में प्रार्थिव ही तो हैं।

भक्ति की दृष्टि से भी मिश्र जी का चिंतन समृद्ध है जोकि उनके 'ब्रज में मनुष्य ईश्वर नहीं, ईश्वर मनुष्य है' शीर्षक निबन्ध में देखने को मिलता है जहां उन्होंने मानवीय और लौकिक चमत्कार की चर्चा की है कि क्या भक्ति स्वयं केवल लोकोत्तर की चिन्ता है या फिर साथ में मानवीय भी है। दोनों का उत्तर एक–सा है। प्रश्न है कि मानवीय या लौकिक कोई ऐसी चमत्कार की कोटि है, जिसमें भक्ति कीर्तन हो जाये, या उलटकर दूसरा प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या भक्ति स्वयं केवल लोकोत्तर की चिन्ता है, क्या भक्ति मानवीय नहीं है?

सांस्कृतिक जीवन और पारिवारिक जीवन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मिश्र जी ने आँगन का पक्षी और बनजारा मन' शीर्षक निबंध में कहा है कि जहाँ पर हम देवी–देवता, कुल–नदियाँ, तीर्थ–धाम, आदि को पारिवारिक विस्तार का रूप मानते हैं। जैसे "हमारा सांस्कृतिक जीवन भी इस पारिवारिक प्रेम से आप्लावित है, देवी–देवताओं की कल्पना, कुल–पर्वतों, कुल–नदियों की कल्पना, तीर्थों–धामों की कल्पना और आचार्यों–मठों की कल्पना पारिवारिक विस्तार के ही विविध रूपान्तर हैं। यही नहीं, पारिवारिक साहचर्य भाव ही हमारे साहित्य की सबसे बड़ी थाती है। यह कुटुम्ब 'भाव ही हमें चर–अचर जड़ चेतन जगत के साथ कर्तव्यशील बनाता है। हम इसी से देशकाल की सीमाओं की तनिक भी परवाह न करके, अरबों प्रकाश वर्ष दूर नक्षत्रों से, और युगों दूर उज्ज्वल चरित्रों से, उसी प्रकार अपनापन जोड़ते हैं, जिस प्रकार घर के किसी व्यक्ति से।

मानवीय संस्कारों पर मिश्र जी के विचार उनके फूल तब पात' शीर्षक निबंध में नजर आते हैं जहां पर वे कहते हैं कि मानव

अपने प्राचीन संस्कार प्राप्त करने के लिए अपने नये संस्कारों को पल्लवित करने के प्रति जागरूक रहता है, क्योंकि नया विचार ही नये संस्कारों को जन्म देता है।

जैसे– "तो मनुष्य के प्राचीन संस्कार भी पुनर्जीवन प्राप्त करने के लिए झर–झर कर नये संस्कारों को पल्लवित करने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। जो नया विचार देता है, जो नये संस्कार की रचना करता है और जो नये ऋतु का मंगलगीत गाने के लिए आता है वह पहले परिसर को कुसुमित और सुरभित करके आता है। भगवान कृष्ण हों, बुद्ध हों, शंकराचार्य हों, तुलसीदास हों, समर्थ रामदास हों, तिलक हों–प्रत्येक विचारक ने जब–जब मनुष्य को उन्नयन की नयी भूमिका दी, तब–तब उसने पहले अपनी परम्परा को पूर्ण रूप से अपने मानस के उपवन में पुष्पित किया। फूल जब पात नामक निबंध में मिश्र जी ने लिखा है कि दृ भारतीय संस्कृति में शिव की खोज सौंदर्य की खोज से अधिक सत्य की खोज है। सत्य की खोज में जब भी रुकावट हुई है तब–तब सत्य को गति मिली है ।

मानव जीवन की शिवतम्, सुन्दरतम् और शाश्वत व्याख्या संस्कृत की पाषाणी शीर्षक निबंध में मिलती है जो अपने कठोर प्रयास द्वारा संस्कृति को मुखरित करती है।

जैसे "शैव दर्शन की परम उपलब्धि आनन्द को विजड़ित करके जिस कलाकार ने पत्थर में ढाल दिया वह न केवल अपनी रेखाओं का आचार्य था। वह कला परम्परा की कड़ी तो जोड़ ही रहा था, साथ ही मानव जीवन की शिवतम्, सुन्दरतम् और शाश्वतम् व्याख्या भी प्रस्तुत कर रहा था। वह अपने कठोर माध्यम द्वारा संस्कृति की मृदुलतम् रागिनी को मुखरित करने में लगा हुआ था। ' संस्कृत की पाषाणी ' नामक निबंध में मिश्र जी ने संस्कृति के समग्र रूप की चर्चा की है कि विशेष रूप से जो संस्कृति समग्र है जो प्राणवान है और जो क्रियाशील है वह पत्थर के भी दर्पण की तरह बना सकती है रू कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति खंडित नहीं होती। आप जब पत्थर में दर्पण लिए हुए सुंदरी का शिल्प देखेंगे तो आपको अभिनवगुप्त की स्वरूपानुभूति याद आ जाएगी । आप जब कमल के पटलों में अधिष्ठित स्तर के बाद दूसरे स्तर का निर्माण देखेंगे तो आपको योग साधना के छह कमल आ जाएंगे ।

मिश्र जी ने परंपरा को रूढ़ि या फिर बंधन नहीं माना उन्होंने 'परम्परा बन्धन नहीं' शीर्षक निबन्ध में लिखा है कि व्यक्ति की उत्कृष्टकर रचना उत्कृष्ट से होती है। ऐतिहासिक व्यक्ति यदि राम और कृष्ण होते तो कब के मर गये होते, लेकिन वे निरन्तर जन्म लेते रहते हैं और निरन्तर बढ़ते रहते हैं। जैसे– "व्यक्ति की निरंतर उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर रचना होती है। राम और कृष्ण कोई ऐतिहासिक व्यक्ति रहते तो जाने कब के मर गये होते। पर वे निरन्तर जन्म लेते रहे, निरन्तर बढ़ते रहे। वे पूजित हुए व्यक्ति के रूप में नहीं, विश्व–सत्ता के प्रतिमान के रूप में।

सांस्कृतिक दायरे के बारे में बात करते हुए भारतीय इतिहास–बोध और भारत का प्रबुद्ध मानस' शीर्षक निबंध में लिखा है कि हिन्दुस्तान का इतिहास मानवीय साझेदारी में एक विशेष प्रकार का है। दुनिया के सारे लोग इसके साझेदार थे। जैसे रू– 'आज का भारतीय प्रबुद्ध वर्ग खण्ड–बोध का शिकार है। इसलिए उसने अपने सांस्कृतिक दाय को भी ठीक–ठीक नहीं पहचाना है। वह सांस्कृतिक दाय को मूलवत्ता प्रदान करने के लिए खण्ड इतिहास बोध का सहारा लेकर एक गौरवशाली इतिहास की रचना करने लगा है हालांकि इतिहास इस कल्पना से अन्यथा भी गौरवशाली ही था और उसमें सभी की साझेदारी शामिल थी और वे सभी लोग भी शामिल थे जो स्वयं को भारतीय या हिंदू न कहते हुए भी एक विशेष प्रकार के विश्व का नागरिक मानते थे और उसके प्रति निष्ठा भी रखते थे ।

'भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा बाल–पोथी में है यह बात दास्तान एक बालयोगी की' शीर्षक निबंध में मिश्र जी ने कही है कि यदि यही शिक्षा बाल–पोथी में मिल जाए तो निश्चय ही भारतीय संस्कृति की नींव पक्की बन जाए। इस बाल पोथी में प्राचीन भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना भी की गई है। इसमें ओम उठता है, उसे उठकर हवन करने को कहा जाता है। और फिर 'हवन यज्ञ' नाम का एक विशेष यज्ञ करने को कहा जाता है। अब दुधमुँहे बच्चे को हवन यज्ञ की शिक्षा बाल पोथी में मिल जाए तो इतना निश्चय है कि भारतीय संस्कृति की नींव पक्की हो गई, भले ही वह हवन के नाम पर भाषा का ही की न हवन करे। जब बच्चा अपने बालपन में ही इस तरह के संस्कार ग्रहण करेगा तो सहज ही वह तरुण अवस्था तक एक बेहतरीन व्यक्ति के रूप में समाज में स्थापित हो चुका होगा और भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाने में सहयोग भी देगा ।

इसी प्रकार, 'फूल तब पात' नामक निबन्ध में मिश्र जी कहते हैं, कि प्राचीन संस्कार ही मनुष्य को पुनर्जीवन प्राप्त करने के लिए झर–झर कर नये संस्कारों को पल्लवित करते रहते हैं। जो विचारों, संस्कारों और ऋतुओं के मंगल गीत गाने के लिए आते हैं। इसी निबन्ध में मिश्र जी ने लिखा है कि भारतीय संस्कृति का मूल आधार शिव की खोज, समरसता और समन्वय आदि में सौन्दर्य की खोज से अधिक सत्य की खोज का महत्व है।

"भारतीय संस्कृत के मूल में शिव की खोज या समरसता, समानुपात, सन्तुलन, समन्वय आदि में सौन्दर्य की

खोज से कहीं अधिक सत्य की खोज का उपादान है। सत्य को जब–जब अन्वेषकों ने अवरुद्ध देखा, उसके मुख पर एक पत्थर देखा तब तब उन्होंने उस पत्थर को हटाने की कोशिश की ताकि सत्य को गति मिले और सत्य नदी की धारा का अनुगामी न बने बल्कि उसके आगे चलने वाला बने और उसका मार्ग प्रदर्शित करता हुआ बढ़ता रहे।

ऐसे ही, 'संस्कृति और समन्वय शीर्षक निबन्ध में मिश्र जी ने लिखा है दृ कि हिन्दुस्तान ने विश्व को रामायण और महाभारत की रचना देकर एक सर्जनात्मक दर्पण का कार्य किया है। जो किसी विशेष जाति का या विशेष धर्म का नहीं है, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए दीप्ति की कथा है। वह केवल भारत की कथा नहीं है वह एक आदर्श मानव की कथा है जो एक आदर्श पति है,पुत्र है, मित्र है और योद्धा है। महाभारत की कथा से पूरा विश्व शिक्षा के सकता है और उन विश्वयुद्धों के श्राप से भी बच सकता है जिनसे कि आज वो ग्रसित है।

'मेघदूत का सन्देश' नामक निबन्ध में मिश्र जी कहते हैं कि मनुष्य की दुर्बलता या मंगल कामना में अन–उर्वर न समझा जाय। जहाँ पर धरती की सन्तान सीता के स्नान का पवित्र जल और राम के वनवास की स्मृति छाया की आकृति है। जैसे "धरती की सन्तान सीता के स्नान से पवित्रीकृत जल के स्पर्श तथा राम के वनवास की स्मृति से शीतल छाया में निवृत्ति जो झाँकी है, वह न केवल इसलिए कि मनुष्य की दुर्बलता की या उसके उत्पन्न दुर्दिन भी मंगल कामना के लिए अन–उर्वर न समझा जाये और व्यक्ति का दुर्वह से दुर्वह और गहन–से–गहन दुख का क्षण चराचर विश्व के मंगल और आनन्द की आराधना करने के लिए तो क्षम्य हो सके।

भारती जय–विजय करे' नामक निबन्ध में मिश्र जी ने लिखा है कि मनुष्य एक चेतना के प्रवाह को भरते हुए देखता है तो वह जीवन का अध्यात्म ही साधता है जहाँ पर हर सम्मोहन देवी ही तो है रू "जिस किसी भी स्थिति में मनुष्य हो, वह यदि दृष्टिगोचर जगत में छायी हुई एक चेतना के प्रवाह को अपने भीतर भरते हुए देखता है तो वह जीवन के अध्यात्म को ही साधता है। मनुष्य की छोटी–बड़ी हर आकांक्षा ही तो देवी है–हर सम्मोहन देवी है, हर आमन्त्रण देवी है, हर भय देवी है और हर विसर्जन देवी है।

हिन्दुस्तानी समाज के विषय में माँ और धरती शीर्षक निबंध में लिखा है कि हिन्दुस्तान का जो समाज है वह मातृसत्ताक एवं पितृसत्ताक दोनों नहीं है। वह माता और पिता को अलग भूमि पर स्थापित करके महत्व देता है। एक तरफ तो प्रजापति के रूप में और दूसरी ओर जगदम्बा के रूप में देखता है जैसे– हिन्दुस्तान का समाज न मातृसत्ताक समाज है, न पितृसत्ताक। वह माता और पिता को अलग भूमियों पर स्थापित करके महत्व देने वाला समाज है। एक और पुरुष प्रजापति, विधाता, स्रष्टा की आवश्यकता है, दूसरी ओर अपार शक्ति के रूप में जगदम्बा की है। दोनों में कोई विरोध नहीं ब्रह्मा की सृष्टि व्यक्त सृष्टि है, पर व्यक्त सृष्टि का अव्यक्त रूप भी होता है, वह प्रसुप्त और अव्यक्त रहता है आद्या शक्ति में।

मिश्र जी ने पार्वती के तप को महान् बताते हुए मिश्र जी ने कालिदास की शिव दृष्टि' शीर्षक निबंध में लिखा है कि उसने जगत के मंगल के लिए शिव को समाधि से उठकर सोचने के लिए विवश कर दिया था। जहाँ पर दुष्यन्त को प्रजावत्सल और सीता को तेजस्वी प्रेम का प्रतीक माना गया है जो मंगलमय समाज की रचना के लिए सक्रिय रहे जैसे रू "पार्वती के तप ने शिव को अपनी समाधि से उठकर जगत के मंगल के लिए सोचने के लिए विवश किया है शकुन्तला की स्मृति ने ही दुष्यन्त को प्रजावत्सल बना दिया है और उसने यह डौंडी फिरवा दी है कि जिसके पुत्र न हो वह दुष्यन्त को ही अपना पुत्र माने। सीता का तेजस्वी प्रेम अपने को अपनी विगत और आने वाली पीढ़ियों से अभिन्न देखना चाहता है। प्रेम विघटन करने वाला नहीं, वह समाज में मंगल की रचना में सक्रिय योग देने वाला है"।

निष्कर्ष रू उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विद्यानिवास मिश्र का दृष्टिकोण मानवीय है। आज के व्यक्ति के संघर्ष, एकाकीपन, भय, संत्रास आदि के प्रति उनके मन में चिन्ता है। मानवीय दृष्टिकोण के लिए वे हिन्दू धर्म और उसके चिन्तन को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और इसी कारण वे प्राचीन भारतीय संस्कृति से जुड़ते हैं।

संदर्भ :

1 प्रो. श्रीकान्त जोशी, अमृतपुत्र, पृष्ठ 144
2 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, निज मुख मुकुरि, पृष्ठ 1
3 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, छितवन की छाँह, पृष्ठ 63
4 वही, पृष्ठ 103
5 वही, पृष्ठ 104
6 वहीं, पृष्ठ 22
7 डॉ विद्यानिवास मिश्र, आंगन का पक्षी और बंजारा मन, पृष्ठ 13–14
8 आंगन का पंछी बंजारा मन रू पृष्ठ 33
9 आंगन का पंछी बंजारा मन रू पृष्ठ 34
10 आंगन का पंछी बंजारा मन रू पृष्ठ 34
11 आंगन का पंछी बंजारा मन रू पृष्ठ 50

12 डॉ विद्यानिवास मिश्र,परंपरा बंधन नहींरू पृष्ठ 12
13 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, आँगन का पक्षी और बन्जारा मन, पृष्ठ 30
14 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कंटीले तारों के आर पार, पृष्ठ 68
15 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, आंगन का पक्षी और बंजारा मन, पृष्ठ 30
16 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, आंगन का पक्षी और बंजारा मन, पृष्ठ 34
17 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, संचारिणी, पृष्ठ 17
18 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, अग्निरथ, पृष्ठ 26
19 डॉ. विद्यानिवास मिश्र, निज मुख मुकुरि, पृष्ठ 10

डॉ0 पुष्पा रानी,
प्रोफेसर
हिंदी विभाग
कुरूक्षेत्र विश्विद्यालय, कुरूक्षेत्र

25

Effectiveness of Tariffs as a Tool for Reducing U.S. Trade Deficits: An Empirical and Policy Analysis

Dr. Suresh Kumar, Dr. Ravi Kumar

Abstract

The use of tariffs as an economic policy instrument to reduce trade deficits gained renewed prominence during the presidency of Donald Trump (2017–2021). This study evaluates the effectiveness of tariff-based protectionism in achieving the stated objective of reducing the United States trade deficit. Using secondary trade data, government reports, and international political economy literature, the paper analyzes changes in bilateral trade balances, overall deficit trends, and sectoral outcomes following the imposition of tariffs on China and other major trading partners. Despite aggressive tariff measures, U.S. merchandise trade deficits increased from approximately USD 552 billion in 2017 to USD 901 billion in 2022, indicating limited success in deficit reduction [1]. While bilateral deficits with China declined marginally, trade imbalances with other countries such as Mexico and Vietnam expanded significantly due to trade diversion effects [2]. The study further explores the macroeconomic determinants of trade deficits, including domestic consumption patterns, currency valuation, and global supply chain dependencies, demonstrating that tariffs alone cannot address structural imbalances. The findings reveal that tariff policies often produce unintended consequences such as higher consumer prices, retaliatory measures, and market uncertainty, which weaken their overall effectiveness. The paper concludes that sustainable trade balance improvement requires comprehensive economic reforms, export competitiveness enhancement, and multilateral cooperation rather than unilateral tariff escalation. This research contributes to contemporary debates on trade nationalism and economic governance in the global economy.

Keywords: -Trade Deficit, Tariff Policy, Donald Trump, Protectionism, U.S. Economy, International Trade, Trade Diversion

Introduction: -Trade deficits have long been a central concern of U.S. economic policy. The Trump administration adopted an aggressive tariff strategy aimed at correcting perceived unfair trade practices and reducing persistent trade imbalances. Between 2018 and 2020, the United States imposed tariffs on hundreds of billions of dollars' worth of imports, particularly targeting China under Section 301 of the Trade Act [3].

The central policy argument was that higher import tariffs would discourage foreign goods, stimulate domestic production, and improve the U.S. trade balance. However, economists remain divided on whether tariffs can effectively reduce trade deficits in a globally interconnected economy. This paper examines the empirical outcomes of tariff implementation and evaluates their policy effectiveness.

1. Theoretical Framework: Trade Deficits and Tariff Policy

According to classical and neoclassical economic theory, trade deficits reflect macroeconomic conditions rather than trade policy alone. Krugman and Obstfeld argue that trade balances are primarily influenced by national savings and investment patterns rather than tariff barriers [4].

Tariffs may temporarily reduce imports from targeted countries, but they often lead to trade diversion, inflationary pressures, and retaliatory measures from trading partners [5]. Additionally, global value chain integration limits the effectiveness of unilateral trade restrictions.

2. Empirical Evidence: U.S. Trade Deficit Trends

2.1 Overall Trade Deficit Performance

Contrary to policy expectations, U.S. trade deficit figures expanded during and after the tariff escalation period. According to U.S. Census Bureau data:

- 2017 U.S. trade deficit: USD 552 billion
- 2019 U.S. trade deficit: USD 616 billion
- 2022 U.S. trade deficit: USD 901 billion

This represents an increase of over 63 percent between 2017 and 2022 [1, p. 6]. These figures indicate that tariffs did not achieve the intended macroeconomic objective of reducing the overall deficit.

2.2 Bilateral Trade Balance with China

The U.S. trade deficit with China declined from USD 419 billion in 2018 to USD 382 billion in 2020, reflecting reduced direct imports due to tariffs [6, p. 11]. However, this decline was partially offset by increased imports from alternative suppliers such as Vietnam and Mexico, demonstrating trade diversion effects.

2.3 Rising Deficits with Alternative Trading Partners

U.S. imports from Vietnam rose from USD 49 billion in 2018 to over USD 136 billion in 2024, while imports from Mexico reached USD 505 billion in 2024 [7, p. 14]. As a result, deficits with these countries expanded, neutralizing gains achieved from reduced China imports.

3. Economic and Sectoral Consequences of Tariffs

3.1 Impact on Consumers and Inflation

Tariffs increased import prices and production costs for American consumers and firms. Studies estimate that U.S. households bore annual tariff-related costs ranging from USD 600 to USD 1,000 per household due to higher consumer prices [8, p. 102].

3.2 Industrial Sector Outcomes

Although certain industries such as steel and aluminum experienced short-term employment gains, manufacturing sectors dependent on imported inputs faced rising costs and declining export competitiveness [9, p. 48].

3.3 Retaliatory Measures and Export Losses

Retaliatory tariffs imposed by China and the European Union reduced U.S. agricultural exports, particularly soybeans and corn, leading to financial losses for American farmers and increased government subsidy payments [10, p. 221].

4. Policy Limitations and Structural Challenges

4.1 Macroeconomic Constraints

Trade deficits are linked to domestic consumption, government spending, and currency strength. Without addressing these macroeconomic variables, tariff policies alone remain ineffective [4, p. 310].

4.2 Global Value Chain Dependency

Modern manufacturing relies on cross-border supply chains. Tariffs disrupt intermediate goods trade, raising costs and weakening domestic competitiveness [5, p. 97].

5. Policy Recommendations

To achieve sustainable trade balance improvement, policymakers should prioritize:

1. Export competitiveness enhancement through innovation and industrial upgrading [9, p. 55].
2. Investment in domestic manufacturing infrastructure and workforce skills [8, p. 108].
3. Multilateral trade cooperation to resolve disputes through WTO mechanisms [3, p. 19].
4. Balanced fiscal and savings policies to address structural deficit drivers [4, p. 315].

Conclusion: -This study demonstrates that tariffs are an ineffective standalone instrument for reducing U.S. trade deficits. While bilateral imbalances with specific countries declined temporarily, overall trade deficits expanded due to trade diversion and macroeconomic factors. Furthermore, tariffs imposed economic costs on consumers, disrupted global supply chains, and provoked retaliatory trade actions. The evidence suggests that long-term trade balance improvement requires comprehensive structural reforms, industrial competitiveness strategies, and international cooperation rather than unilateral protectionist measures.

References

1. U.S. Census Bureau (2023). U.S. International Trade in Goods and Services Annual Report. Washington DC: Government Printing Office, pp. 1–15.
2. Bown, C.P. (2020). "Trade Diversion Effects of U.S. Tariffs," Peterson Institute for International Economics Working Paper, 20(5), pp. 1–25.
3. Office of the United States Trade Representative (USTR) (2021). Section 301 Investigation Report on China's Trade Practices. Washington DC, pp. 5–25.
4. Krugman, P.R., Obstfeld, M., Melitz, M.J. (2018). International Economics: Theory and Policy, 10th Edition, Pearson Education, New York, pp. 295–330.
5. Evenett, S.J. and Fritz, J. (2019). "Protectionism and Global Supply Chains," Journal of World Trade, 53(1), pp. 85–110.
6. World Trade Organization (2021). World Trade Statistical Review. Geneva: WTO Publications, pp. 8–20.
7. BBVA Research (2024). North American Trade Report. Madrid, pp. 10–18.
8. Fajgelbaum, P.D. et al. (2020). "The Return to Protectionism," Quarterly Journal of Economics, 135(1), pp. 1–55.
9. Autor, D., Dorn, D., Hanson, G. (2021). "Import Competition and Manufacturing Employment," American Economic Review, 111(2), pp. 35–60.
10. USDA (2020). Agricultural Trade Retaliation Impact Assessment. Washington DC, pp. 210–235.

Dr. Suresh Kumar
Professor & Head,
Department of Political Science
JVMGRR College,
Charkhi Dadri, Haryana, India
Email: skj01250@gmail.com

Dr. Ravi Kumar,
Assistant Professor,
Department of Political Science,
G. C. W. Tosham, Bhiwani, Haryana

26

Institutional and Procedural Machinery under the Consumer Protection Act, 2019: A Critical Evaluation of Its Effectiveness

Shashi Kiran Panwar, Dr. SONIA

Abstract

The enactment of the Consumer Protection Act, 2019 marked a significant shift in India's consumer protection regime, replacing the three-decade-old 1986 framework with a more comprehensive and modern statutory structure. The Act seeks to strengthen consumer rights by restructuring the institutional framework of Consumer Dispute Redressal Commissions and by introducing new regulatory mechanisms such as the Central Consumer Protection Authority (CCPA). It also incorporates procedural innovations including mediation, e-filing of complaints, expanded jurisdictional provisions, and product liability actions.

This paper critically examines the institutional and procedural machinery established under the Act of 2019, assessing whether these reforms have effectively enhanced access to justice and consumer welfare. Through a doctrinal analysis of statutory provisions, rules, and relevant judicial interpretations, the study evaluates the operational efficiency, independence, and enforcement capacity of consumer adjudicatory bodies. The paper argues that while the Act demonstrates structural advancement and regulatory ambition, persistent challenges such as infrastructural inadequacies, delays in disposal, and enforcement constraints limit its practical effectiveness. Ultimately, the effectiveness of the 2019 framework depends not merely on legislative design but on institutional capacity and sustained administrative commitment.

Keywords:- Consumer Protection Act, 2019; Institutional Effectiveness; Procedural Mechanisms, CCPA, Consumer Redressal

Introduction

Consumer protection is an essential component of a welfare-oriented legal system, intended to safeguard consumers against exploitation and unfair trade practices while promoting transparency and accountability in the marketplace. In India, the legal regime governing consumer rights underwent a significant transformation with the enactment of the Consumer Protection Act, 2019, which repealed and replaced the Consumer Protection Act, 1986. Although the 1986 legislation was considered progressive at the time of its enactment, it gradually proved inadequate in addressing the complexities of a rapidly evolving market economy marked by globalization, digital transactions, and emerging forms of consumer harm.

The CP Act of 2019 seeks to modernize and strengthen consumer protection by restructuring both institutional and procedural mechanisms. It retains the three-tier system of Consumer Dispute Redressal Commissions while revising pecuniary and territorial jurisdiction to enhance accessibility and efficiency. The Act also introduces significant institutional innovation through the establishment of the Central Consumer Protection Authority (CCPA), empowered to regulate unfair trade practices, order recall of hazardous goods, and impose penalties for misleading advertisements. In addition, the statute incorporates procedural reforms such as mediation, e-filing of complaints, and the introduction of product liability provisions, thereby expanding the remedial framework available to consumers.

Despite these structural advancements, concerns persist regarding the practical effectiveness of the institutional and procedural machinery established under the CPAct of 2019. Issues relating to case pendency, infrastructural constraints, enforcement challenges, and questions of institutional independence raise doubts about whether legislative intent has translated into effective consumer justice. This paper critically evaluates whether the framework under the Consumer Protection Act, 2019 is merely structurally robust or substantively effective in ensuring timely and accessible redressal.

Institutional and Procedural Machinery under the Act

The Consumer Protection Act, 2019 establishes a comprehensive institutional and procedural framework intended to ensure accessible, inexpensive, and expeditious consumer redressal. The effectiveness of this framework depends on the functioning of both adjudicatory bodies and regulatory authorities, as well as the procedural mechanisms

designed to facilitate dispute resolution. A clear and decentralised structure for resolving disputes has been established, with each level of commission having authority over claims with varying monetary values.

▪ Consumer Dispute Redressal Commissions

The CPAct 2019 provides the three-tier adjudicatory hierarchy consisting of the District Commission under section 28, the State Commission under section 42, and the National Commission under section 53. This structure aims to decentralize dispute resolution and enhance accessibility across different territorial and pecuniary levels. The pecuniary jurisdiction of the District Commission is defined under section 34, while appeals lie to the State and National Commissions in a structured appellate mechanism.

A significant procedural improvement under the Act of 2019 is the expansion of territorial jurisdiction. Consumers may now institute complaints at the place where they reside or personally work for gain, thereby reducing logistical barriers that previously discouraged litigation. The Commissions are vested with powers analogous to those of a civil court, including summoning and enforcing attendance of witnesses, receiving evidence on affidavits, and requisitioning documents. These powers reinforce their quasi-judicial authority and enhance enforceability of their decisions.

Further, the Act mandates time-bound disposal of complaints, generally within three months where no testing of goods is required and five months where analysis is necessary. This reflects the legislative intent to ensure expeditious adjudication. However, in practice, case pendency and infrastructural deficiencies continue to impede timely resolution, raising concerns about whether statutory timelines are realistically achievable.

▪ Central Consumer Protection Authority (CCPA)

One of the most significant institutional innovations under Section 10 of the Act of 2019 is the establishment of the Central Consumer Protection Authority (CCPA). Unlike the adjudicatory Commissions, the CCPA functions as a regulatory and enforcement body with investigative powers aimed at preventing consumer harm at a broader level. With this new institutional innovation, we are moving away from a paradigm of consumer protection that is reactive and towards one that is proactive.

The CCPA is empowered to inquire into violations of consumer rights, initiate class actions, order recall of unsafe goods, direct reimbursement of purchase prices, and impose penalties for misleading advertisements. It may also impose liability on endorsers of false advertisements, thereby expanding accountability beyond manufacturers and sellers. These provisions signify a shift from a purely complaint-driven system to a proactive regulatory model.

Despite its wide-ranging powers, questions remain regarding the practical effectiveness of the CCPA. Concerns include overlapping jurisdiction with sectoral regulators, limited enforcement capacity, and potential bureaucratic constraints. The effectiveness of the Authority largely depends on its institutional autonomy, investigative resources, and coordination with other regulatory bodies.

▪ Procedural Framework and Access to Justice

The CPAct of 2019 introduces procedural reforms aimed at simplifying and modernizing dispute resolution. Complaints may be filed electronically, and the Act permits summary procedure to expedite hearings. This digital integration is particularly significant in the context of expanding e-commerce transactions and geographically dispersed consumers.

The Act also formally incorporates mediation as an alternative dispute resolution mechanism. Consumer Mediation Cells are attached to the Commissions to facilitate amicable settlement of disputes where appropriate. Mediation is intended to reduce pendency and promote cost-effective resolution. However, its success depends on trained mediators and willingness of parties to engage constructively.

The appellate structure under the Act provides for appeals from the District Commission to the State Commission, from the State Commission to the National Commission, and ultimately to the Supreme Court. In addition to serving as a last resort for appeals, the National Consumer Dispute Resolution Commission (NCDRC) is

crucial in maintaining national consistency and uniformity in consumer law interpretation. Its rulings are frequently used as examples by subordinate commissions and even lawmakers when they are formulating new policies. While this ensures procedural fairness and hierarchical review, it may also prolong litigation in complex cases.

Enforcement remains a crucial determinant of effectiveness. Orders of the Commissions are enforceable as decrees of a civil court, and non-compliance may attract penalties, including imprisonment. Nonetheless, practical challenges in execution proceedings often weaken the deterrent effect of such provisions.

Taken together, the institutional and procedural machinery under the Act of 2019 reflects a deliberate effort to strengthen consumer protection through structural reform and regulatory innovation. However, the success of this framework depends not merely on statutory design but on adequate infrastructure, administrative efficiency, and consistent enforcement.

In its overall design, the institutional and procedural machinery under the Consumer Protection Act, 2019 represents a conscious shift toward a more structured, accessible and enforcement-oriented consumer protection regime. By strengthening the adjudicatory hierarchy, broadening jurisdictional access, incorporating mediation as an alternative dispute resolution mechanism, and establishing a regulatory authority with preventive and punitive powers, the Act moves beyond the limitations of its predecessor. The procedural innovations, particularly the emphasis on digital filing and summary adjudication, reflect an effort to respond to the demands of a technologically evolving marketplace. Nevertheless, the mere existence of comprehensive statutory provisions does not automatically ensure effective redressal. The real measure of this framework lies not in its legislative articulation but in its capacity to function efficiently, independently, and consistently in practice.

Critical Evaluation of Effectiveness

While the statutory framework under the Consumer Protection Act, 2019 appears normatively robust and institutionally comprehensive, its true effectiveness can only be measured through a critical assessment of its practical functioning. Legislative reform, regardless of its progressive intent, acquires substantive value only when supported by adequate institutional capacity, administrative efficiency, and structural independence. The mere establishment of adjudicatory bodies and regulatory authorities does not automatically ensure timely, accessible, and meaningful consumer redressal. In practice, the gap between legislative design and operational reality often determines whether consumer rights remain theoretical protections or evolve into enforceable remedies. Issues such as infrastructural limitations, case pendency, enforcement delays, and regulatory overlap may significantly influence the performance of the machinery established under the Act. Therefore, a systematic evaluation of institutional autonomy, procedural efficiency, enforcement mechanisms, and regulatory coordination becomes essential to determine whether the 2019 regime has genuinely strengthened consumer justice or whether its effectiveness is constrained by implementation challenges.

▪ Institutional Capacity and Infrastructure

While the Consumer Protection Act, 2019 prescribes time-bound disposal of complaints, the practical functioning of Consumer Commissions reveals persistent structural challenges. The objective of speedy and inexpensive redressal depends not only on statutory timelines but also on adequate institutional capacity. In several jurisdictions, Consumer Commissions face vacancies in key positions, shortage of technical and administrative staff, and inadequate infrastructural facilities, including insufficient courtroom space and limited digital infrastructure.

The effectiveness of quasi-judicial bodies is closely linked to their operational support systems. Without sufficient budgetary allocation and modern technological integration, procedural reforms such as e-filing and digital hearings cannot achieve their intended purpose. Thus, while the statutory framework is designed to promote efficiency, the absence of robust institutional infrastructure continues to hinder its practical realization.

▪ **Independence and Administrative Control**

Another significant concern relates to the independence of Consumer Commissions. Although the Act and the relevant Rules prescribe qualifications and procedures for appointment of Presidents and Members, the involvement of the executive in appointments and service conditions raises questions about institutional autonomy. Quasi-judicial bodies must function with a degree of independence comparable to judicial institutions to maintain impartiality and public confidence.

Excessive administrative control may create a perception of executive influence, which could undermine the credibility of consumer adjudication. Institutional legitimacy is not derived solely from statutory authority but also from procedural fairness and independence in decision-making. Therefore, ensuring transparent and merit-based appointments, along with secure tenure, is essential for strengthening the effectiveness of the adjudicatory framework.

▪ Regulatory Effectiveness of the CCPA

The establishment of the Central Consumer Protection Authority (CCPA) represents one of the most progressive features of the Act of 2019. Unlike the complaint-driven model of the earlier regime, the CCPA is empowered to initiate investigations suo motu, order recall of unsafe goods, impose penalties for misleading advertisements, and file class action suits. This marks a transition from reactive adjudication to proactive regulatory enforcement.

However, the effectiveness of the CCPA depends on its investigative capacity, coordination with sectoral regulators, and consistent enforcement practices. Overlapping jurisdiction with authorities regulating sectors such as telecommunications, insurance, and food safety may create regulatory fragmentation. Additionally, without adequate resources and specialized expertise, the deterrent impact of its enforcement powers may be diluted. The success of this regulatory innovation therefore hinges on institutional strengthening and inter-agency coordination.

▪ Procedural Efficiency and Enforcement Gaps

The Act of 2019 introduces procedural innovations such as electronic filing of complaints and statutory mediation mechanisms, aimed at enhancing access to justice. These measures reflect an attempt to align consumer dispute resolution with contemporary technological realities. However, digitalization may inadvertently exclude individuals lacking digital literacy or access to reliable internet infrastructure, particularly in rural areas.

Furthermore, although orders of Consumer Commissions are enforceable as decrees of a civil court and non-compliance attracts penalties, including imprisonment, enforcement proceedings often encounter delays. The gap between adjudication and actual execution of orders undermines the remedial purpose of consumer protection law. Effective enforcement mechanisms are essential to ensure that consumer remedies are not merely symbolic but practically realizable.

In sum, the institutional and procedural machinery under the Act of 2019 is normatively comprehensive and structurally progressive. Nevertheless, its effectiveness is contingent upon adequate infrastructure, institutional independence, administrative efficiency, and robust enforcement. Without addressing these operational challenges, the legislative promise of consumer justice may remain partially fulfilled.

Conclusion

The Consumer Protection Act, 2019 represents a comprehensive attempt to modernize India's consumer protection regime by strengthening both institutional and procedural mechanisms. Through the restructuring of Consumer Commissions, expansion of jurisdictional access, introduction of mediation and e-filing, and the establishment of the Central Consumer Protection Authority, the Act reflects a progressive and regulatory-oriented approach to consumer justice. However, as this study demonstrates, the effectiveness of this framework is not determined solely by statutory design. Persistent challenges such as infrastructural deficiencies, case pendency, enforcement gaps, and concerns regarding

institutional independence continue to affect its practical functioning. Therefore, while the Act provides a structurally robust foundation for consumer protection, its true success depends on strengthened institutional capacity, administrative efficiency, and consistent enforcement to translate legislative intent into meaningful consumer justice.

References

- Consumer Protection Act 2019, s 107 (repeal of the
- Consumer Protection Act 1986).
- Consumer Protection Act 2019, s 34 (jurisdiction of District Commission).
- Consumer Protection Act 2019, ss 10–27 (establishment and powers of the Central Consumer Protection Authority).
- Consumer Protection Act 2019, ss 37–38; ch VI (Product Liability).
- Rashba, Evsey S. "Settlement of disputes in commercial dealings with the Soviet Union." *COLUm. L. REv.* 45 (1945): 530.
- Consumer Protection Act 2019, ss 28, 42, 53.
- Consumer Protection Act 2019, s 34; ss 41, 51 (appeals).
- Consumer Protection Act 2019, s 34(2).
- Consumer Protection Act 2019, s 38(9).
- Consumer Protection Act 2019, s 38(7).
- Consumer Protection Act 2019, s 10.
- Eovaldi, Thomas L., and Joan E. Gestrin. "Justice for Consumers: The Mechanisms of Redress." *Nw. UL Rev.* 66 (1971): 281.
- Consumer Protection Act 2019, ss 18-20 .
- Consumer Protection Act 2019, s 21
- Consumer Protection Act 2019, ss 35-38.
- Consumer Protection Act 2019, s 37.
- Consumer Protection Act 2019, ss 41, 51, 67.
- Jacob, Alice. "Machinery for Redressal of Consumer Grievances against Public Utilities." *Journal of the Indian Law Institute* 26.1/2 (1984): 25-41.
- Consumer Protection Act 2019, ss 71-72.
- Consumer Protection Act 2019, s 38(7).
- Consumer Protection (Qualification for Appointment, Method of Recruitment, Procedure of Appointment, Term of Office, Resignation and Removal of the President and Members of the State Commission and District Commission) Rules 2020.
- Consumer Protection Act 2019, s 10.
- Consumer Protection Act 2019, ss 18-21.
- Consumer Protection Act 2019, ss 35-37.
- Consumer Protection Act 2019, ss 71-72.

Shashi Kiran Panwar
Research Scholar, Law
Bmu, Asthal Bohar, Rohtak
Address: H.no. 358, Vikas Nagar,
Bhiwani, Haryana, 127021
MOB. No.: 9466675043
E-MAIL: sksingh75043@gmail.com

Dr. Sonia
Assistant Professor,
Department Of Law
Baba Mastnath University,
Asthal Bohr, Rohtak

27

युवा में आत्महत्या की बढ़ती प्रवत्ति का विश्लेषण

डॉ0 सतीश चन्द अग्रवाल

सारांश

युवा अवस्था जीवन का वह चरण है जहाँ आशाएं अपने पूर्ण विस्तार में होती है, सपनों की उड़ान ऊँची होती है, संभावनाएं असीमित प्रतीत होती है और भविष्य सुनहरे रंगों से सजा हुआ दिखाई देता है परन्तु यही आशा जब, सामाजिक दबावों, आर्थिक असमानताओं और असफलताओ की कठोर वास्तविकताओं से टकराती है, तो कई बार अवसाद में परिवर्तित हो जाती हैं और यही अवसाद आज के युवा मन की सबसे बड़ी सामाजिक चुनौती बन गया है। जिसका परिणाम कई बार आत्महत्या के रूप में सामने आता हैं। जो केवल व्यक्तिगत नही बल्कि सामाजिक संरचना की विफलता का संकेत है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से युवा केवल एक आयु वर्ग नही, बल्कि परिवर्तन और संभावनाओं का प्रतिनिधि है। समाज अपनी अपेक्षाएँ युवाओं पर आरोपित करता हैं उन्हें सफल होना है, प्रतिष्ठा अर्जित करनी है, परिवार का नाम ऊँचा करना है। विशेषकर ''शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में सफलता को जीवन की अंतिम कसौटी बना दिया गया है। यदि युवा इन मानकों पर खरे नही उतरते, तो वे स्वय को असफल और अप्रासंगिक मानने लगते है। यह आत्महीनता धीरे–धीर मानसिक तनाव और अवसाद को जन्म देती हैं। प्रतिस्पर्धा व्यवस्था ने इस संकट को और गहरा दिया। सीमित अवसरों के बीच अनगिनत आकांक्षाए, संघर्षरत है, बेरोजगारी और अस्थायी रोजगार की स्थिति युवाओ के आत्मविश्वास को डगमगा देती है। केवल आर्थिक सुरक्षा नही, बल्कि सामाजिक सम्मान का माध्यम भी बन चुकी है। जब यह सम्मान प्राप्त नही होता, तो युवा अपने आस्तिव पर प्रश्नचिन्ह लगाने लगते है। यही सामाजिक तुलना और निरन्तर मूल्यांकन की प्रस्तुति उन्हे भीतर से तोड़ देती है और युवा आत्महत्या जैसा कदम उठा लेते है। यह उस क्षण का प्रतीक है जब युवा को लगता है कि उसके संधर्शो का कोई समाधान नही। सामाजिक दृश्टि से आत्महत्या को केवल व्याक्गित निर्णय नही बल्कि सामाजिक ताने–बाने की कमजोरी के रूप में भी समझा जाना चाहिये। यह सच है कि जब समाज अपने युवाओ को आशा, सहयोग और सुरक्षित वातावरण प्रदान करने में असफल रहता है तब ऐसे संकट उत्पन्न होते है। आत्महत्या वह कृत्य हैं जिसमें कोई व्यक्ति जानबूझकर अपने ही जीवन का अंत कर देता है। यह सामान्यतः गहरे मानसिक, भावात्मक या सामाजिक संकट निर्णय की स्थिति में किया गया निर्णय होता है। आत्महत्या उस पीड़ा की अभिव्यक्ति है जिसे व्यक्ति लम्बे समय से भीतर ही भीतर सहन कर रहा होता है। यहाँ हम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखे तो आत्महत्या प्रायः अवसाद, अकेलापन या असफलता की तीव्र अनुभूति से जुड़ी होती है। जब व्यक्ति को लगता है कि उसके जीवन की समस्याओं का कोई समाधान नही है और भविष्य में कोई आशा शेष नही बची, वह वह इस तरह के कदम उठाता है।

''डेविड हयूम ने अपनी किताब 'आन सुसाइड' में विश्वास जताते हुये कहा कि 'कोई भी व्यक्ति अपनी जिन्दगी यू ही खत्म नहीं कर सकता जबकि उसे जिंदगी की जरूरत है'' [1]

समकालीन समाज में युवाओं को सृजनात्मक ऊर्जा, और परिवर्तनशील चेतना का प्रतीक माना जाता है। यह वह काल खण्ड हैं जहाँ युवा अपने सपनों को आकार देता है और जीवन की दिशा निर्धारित करता है किन्तु विड़बना यह है कि वर्तमान समय में यही युवा वर्ग मानसिक तनाव, असुरक्षा जैसी समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित दिखाई देता है। आशा और अवसाद के बीच का यह संक्रमण केवल व्यक्तिगत मनोदशा का परिणाम नही बल्कि व्यापक सामाजिक संरचानाओं, सांस्कृतिक परिवर्तनों ओर आर्थिक दबावों का संयुक्त प्रभाव है। अतः इसका विश्लेषण समाजशास्त्रीय दृष्टि से किया जाना आवश्यक हैं। समाजशास्त्र मानता है कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति की चेतना, व्यवहार और मानसिक स्थिति सामाजिक परिवेश मे गहराई से प्रभावित होती है। जब सामाजिक संरचनाएँ तीव्र गति से बदलती है तब युवा अस्थिरता का अनुभव करता है।

वैश्वीकरण और बाजारीकरण ने जीवन की गति को तीव्र बना दिया है। वही सफलता को भौतिक उपलब्धियो और ब्राह्म मानको से मापा जाने लगा है। जिस कारण युवा स्वंय को निरंतर तुलना के दायरे में पाता है। यही तलुना उसकी आत्म छवि को प्रभावित करती है।

''प्रख्यात दार्शनिक अरस्तू का कथन–''आज मनुष्य सामाजिकता से दूर जा रहा है और ऐसी अवस्था में वह न तो देवता ही बन पा रहा है और न दानव। तो इसकी वजह क्या है? इस पर गौर किया जाना चाहिए।'' [2]

शिक्षा प्रणाली भी इस दबाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज शिक्षा ज्ञानार्जन का माध्यम कम और प्रतिस्पर्धा का मंच अधिक बन गई है। परीक्षा परिणाम, अधिक अंक और रैकिंक को सफलता का एक मात्र मानदंड मान लिया गया है और जब युवा अपेक्षित फल प्राप्त नहीं कर पाता तो वह स्वंय को असफल मान

बैठता है और यही धीरे–धीरे चिंता और अवसाद का रूप लेती है। डिजिटल युग ने सामाजिक संबधों की प्रकृति को भी परिवर्तित कर दिया है। सोशल मीडिया ने सवांद के नये अवसर प्रदान किये है ।परन्तु साथ ही एक आभासी प्रतिस्पर्धा भी उत्पन्न की है। दूसरों की उपलब्धियों, विलासिता और प्रसन्ता की सजी हुई छवियाँ देखकर युवा स्वंय को कमतर आँकने लगता है। यही तुलनाा हीनभावना और अंसतोश को जन्म देती है। समाजशास्त्रीय रूप से यह तुलनात्मक संस्कृति युवा मन के असुरक्षा और अकेलेपन की भावना को प्रबल करती है। वही आभासी संबध वास्तविक भावात्मक सहारे का स्थान नही ले पाते परिणाम स्वरूप मानसिक सन्तुलन प्रभावित होता हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, के छात्रो पर किए गए एक अध्ययन में पाया गया है कि अधिकांश विद्याथियों 'का मस्तिष्क चिंता से जकड़ा हुआ था।

''राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पांच विश्वविद्यालयों में 500 युवाओं पर किए गये अध्ययन से पाया पर के कि अवसाद और पढाई से जुड़ी चिंता आज विधार्थियो की सबसे बड़ी युवाओं पर समस्या है। उन विश्वविद्यालयों में डी0यू0 और जे0एन0यू0 भी शामिल है। लगभग 17.8 प्रतिशत भागीदारों ने आत्मक्षति और आत्महत्या के बारे में सोचा था और 64.6 प्रतिशत विधार्थियों ने अवसाद का अनुभव किया था।'' 3

जीवन ईश्वर का अनुपम उपहार हैं परस्तु जब यही जीवन असहनीय बोझ प्रतीत होने लगे तब युवा कभी–कभी ऐसी राह चुन लेता हैं, जो केवल अंत की ओर ले जाती है। ''मौत को गले लगाना'' कोई क्षणिक निर्णय मात्र नहीं होता इसके पीछे पीड़ा, अवसाद, असुरक्षा और निराशा की लंबी छाया होती हैं। यह केवल 'एक युंवा की त्रासदी नही, बल्कि परिवार और समाज की सामूहिक विफलता का संकेत भी है। आज के समय में युवाओ के बीच आत्महत्या की घटनाएँ चिंता का विषय बनती जा रही है। इसके पीछे अनेक कारण तो है ही प्रमुख कारणो में अत्याधिक मानसिक दबाव। शिक्षा का परिसर वह पवित्र स्थल माना जाता है जहाँ ज्ञान संस्कार और व्यक्तित्व का निर्माण होता हैं। विद्यालय महाविद्यालय और विश्वविद्यालय केवल डिग्री प्रदान करने वाले संस्थान नहीं बल्कि भविश्य के नागरिकों के निर्माण की कार्यशाला है परन्तु इसी पावन वातावरण में जब रैगिग जैसी कुप्रथा अपने पैर पसारती है तो यह शिक्षा के मूल उद्देश्य को ही आहत कर देती हैं रैगिग केवल एक माजक या परिचय का माध्यम नही बल्कि अनेक बार मानासिक, शारिरिक और भावात्मक उत्पीड़न का रूप ले लेती है। रैगिग की परंपरा को कुछ लोग वरिष्ठ – कनिष्ठ के बीच परिचय का साधन बतातें है। वे इसे मित्रता की शुरुआत मानते है परन्तु जब यह परिचय अपमान, भय, धमकी और यातना में बदल जाता है तब यह एक गंभीर सामाजिक समस्या बन जाती है। कई बार स्थिाति इतनी विकट हो जाती है कि युवा छात्र आत्महत्या जैसा भवावह कदम उठा लेते है। ऐसे उदाहरण यह स्पश्ट करते है कि रैगिग अब केवल परम्परा नहीं बल्कि एक खतरनाक प्रवित्त बन चुकी है। रैगिग का सबसे बड़ा प्रभाव विधर्थियों के मानसिक स्वास्थ पर पड़ता है।

नरेन्द्र भारती, वसीम अहमद नगरानी और डॉ0 विकास पंड़ित का मानना है कि ''आज तक कितने ही छात्र–छात्रायें रैगिग के कारण असमय मौत के मुँह में जा चुके है। रैगिग की यह बीमारी कॉलेज और विश्वविधालयों के बाद स्कूलों में भी अपने पाँव पसार चुकी है। यदि समय रहते इस पर सकती से रोक नही लगाई गयी तो आने वाले समय में हमें घातक परिणाम भुगतने पड़ सकते है'' 4

हमने देखा कि किस प्रकार सकल होने की आशा एवं अपेक्षा के बोझ ने युवाओं पर अतिरिक्त दबाव डाला जिसे कई बार सहन करने में असमर्थ रहे और परिणाम के रूप में टूट गये। आधुनिक समाज में नौकरी केवल आजीविका का साधन नही रही बल्कि वह व्यक्ति की पहचान प्रतिश्ठिा और सामाजिक स्थिति का प्रतीक बन गयी है। किसी भी युवा का मूल्यांकन अब उसके व्यक्तित्व, संवेदनशीलता या नैतिकता से अधिक उसकी नौकरी और पद से किया जाने लगा है। यही कारण है कि नौकरी से जुड़ा दबाव कई बार इतना तीव्र हो जाता है कि युवा मानसिक रूप से टूटने लगता है। जब यह दबाव असहनीय हो जाता है और युवा स्वंय को असफल मान बैठता है तब आत्महत्या जैसी त्रासद घटनाएँ जन्म लेती है। हमारे समाज मे कुछ नौकरियों को अत्याधिक प्रतिश्ठित माना जाता है। जैसे प्रशासनिक सेवाए,सरकारी उच्च पद या बहुराश्ट्रीय कंपनियों में उच्च वेतन वाली नौकरिया। इन पदों की सफलता का अंतिम मानक बना दिया गया है। इसके विपरीत अन्य कार्यो को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाता है। यह वर्गीकृत युवा के आत्मसम्मान को गहराई से प्रभावित करता। यदि कोई युवा इन तथाकथित उच्च नौकारियों में स्थान नही बना पाता तो वह स्वंय को समाज की दृष्टि में कमतर समझने लगता है।

वही दूसरी तरफ यह भी देखा गया है कि जो युवा प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते है वह भी अत्याधिक मानसिक दबाव में रहते है। वर्षो की तैयारी परिवार की अपेक्षाएँ,

आर्थिक निवेश और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न ये सब मिलकर एक ऐसा वातावरण तैयार करते है। जहाँ असफलता को स्वीकार करना अत्यंत कठिन हो जाता है और कई बार लगातार प्रयासों के बावजूद भी सफलता ना मिलने पर युवा अवसाद के गहरे गर्त में चला जाता है और उसे लगने लगता है कि अब उसके जीवन का कोई भी उद्देश्य नही है।

संजय कुमार सिन्हा का मानना है कि–''परिवार के किसी भी बच्चे पर सिविल सेवा या प्रथम श्रेणी की कोई उच्च नौकरी प्राप्त कर परिवार के उच्च स्तर को बनाए रखने का दबाव हमेशा ही रहता है। यद्यपि उच्च श्रेणी की नौकरी को पास करना अपने आप में ही गौरव की बात है, लेकिन इसे समाज में सामाजिक वर्गीकरण का मामला नही बनाना चाहिये।[5]

आज का युवा केवल अपने लिये नही बल्कि पूरे परिवार की आशाओं का केन्द्र होता है। यह अपने सपनों के साथ–साथ माता–पिता की उम्मीदों और समाज की अपेक्षओं को भी अपने कंधों पर ढोता है। ऐसे में जब उसे शिक्षा पूरी करने के बाद भी नौकरी नहीं मिलती तो यह स्थिति केवल आर्थिक संकट तक सीमित नही रहती बल्कि उसके आत्म सम्मान, मानसिक संतुलन और आस्तिव बोध पर भी गहरा आधात करती है। दुर्भाग्यवश इसी निराशा और हताशा के चरम पर पहुँचकर कुछ युवा आत्महत्या जैसा भयावह कदम उठा लेते है। नौकरी केवल आजीविका का साधन नहीं है यह व्यक्ति की सामाजिक पहचान और प्रतिश्ठा का आधार बन चुकी है। हमारे समाज में उच्च और निम्न नौकरियों का वर्गीकरण एक सामाजिक श्रेणी का निर्माण करता है। सिविल सेवा प्रशासनिक पद, सरकारी नौकरियों और प्रतिवेदन निजी क्षेत्र की नौकरियाँ सम्मान का प्रतीक मानी जाती है। वही अस्थायी या कम वेतन वाली नौकरियों को अवसर निम्न दर्ज का समझा जाता है। इस प्रकार नौकरी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को निधारित करने लगती है। जब युवा इस प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं हो पाते तो वे स्वंय को असफल ओर अयोग्य मानने लगते है।

आज के समय में शिक्षा का प्रसार तो हुआ है परन्तु रोजगार के अवसर उसी अनुपात में नही बढ़ पाए है। लाखो विधार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते है। वर्षो की मेहनत, कोचिंग संस्थाओं का दबाव, आर्थिक निवेश और परिवार की अपेक्षाएँ ये सब मिलकर एक ऐसा वातावरण बना देते है जहाँ एक दो बार असफलता होने पर भी युवा स्वंय को संभाल लेते है परन्तु जब बार–बार असफलता हाथ लगाती है, आयु सीमा निकट आने लगती है तब मानसिक तनाव गहराने लगता हैं।

यह स्पष्ट है कि युवा का सबसे बड़ा शत्रु बाहरी कठिनाइयाँ नही बल्कि उसकी निराशाजनक सोच होती है। जब युवा असफलता, बेरोजगारी, सामाजिक दबाव या परिवारिक अपेक्षाओं के कारण स्वंय को असहाय अनुभव करने लगता है। तब उसके भीतर नकारात्मक विचारों का जाल बनने लगता है। यही जाल धीरे–धीरे उसे अवसाद की गहराइयों में ले जाता है और वह आत्महत्या जैसे दुखद निर्णय की ओर बढ़ जाता है। इसलिए आवश्यक है कि हम रचनात्मक और सकारात्मक दृश्टिकोण का प्रयोग करते हुए जीवन की चुनौतियों का सामना करना सीखे। आत्महत्या किसी समस्या का समाधान नही है जिसका प्रभाव स्थायी और व्यापक होता है। यह केवल एक युवा का अन्त नहीं बल्कि उसके जुड़े अनेक संबधों, आशाओं का भी अन्त हो जाता है।

करियर और जीवन दोनों में उतार–चढ़ाव स्वाभाविक है। यदि युवा हर कठिनाई को अपनी योग्यता पर प्रश्नचिन्ह मान ले तो उसका आत्मविश्वास डगमाने लगता है। इसके विपरित यदि युवा सकारात्मक सोाच को अपनाते हुये अपनी कमियों को पहचानकर उन्हें सुधारने का प्रयास करे तो वही उनके विकास का माध्यम बन सकती है। आत्महत्या की प्रकृति अक्सर तब जन्म लेती है, जब युवा को लगता है कि उसके पास कोई विकल्प नही बचा। अतः यह अत्यत आवश्यक है कि हम युवाओं को यह सिखाए कि हर समस्या के अनेक समाधान होते हैं जैसे अधेरी रात के बाद एक नई सुबह अवश्य आती है। जीवन में संभावनाएँ कभी समाप्त नही होती कोई भी मोड़ अन्तिम पड़व नही होता, बल्कि वह एक नए मार्ग की शुरूआत हो सकता है किन्तु जब व्याक्ति निराशा असफलता या सामाजिक दबाव के कारण अपने वर्तमान को ही अन्तिम सत्य मान लेता है, तब उसके भीतर अंधकार गहराने लगता है। यही अंधकार कई बार उसे आत्महत्या जैसे दुखद निर्णय की और धकेल देता है जबकि वास्तविकता यह है कि जीवन की सड़क पर हर मोड़ के बाद एक नया अवसर हमारा इंतजार करता है। क्योकि जीवन अवसरों की अनंत सड़क है किसी एक मोड़ पर बहकर उसे अंत मान लेना उचित नहीं। साहस, आशा और संतुलन प्रयास के साथ आगे बढ़तें रहना ही सच्ची जीत है क्योंकि जीवन अमूल्य है इसें संघर्श और सकरात्मक के साथ जीना ही हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. राष्ट्रीय सहारा, उमंग रविवार, 25 अप्रैल 2010, तेरी दुनिया में तो जीने से बेहतर है कि मर जाए, विनीत उत्पल, पृ0 स0 02, दिल्ली।

2. राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, शनिवार 23 अप्रैल 2011, शहरी भारत का कड़वा सच, डॉ0 समीर पारिख, पृ0 03, दिल्ली।
3. आत्महत्या? चलना ही जिन्दगी है चलती ही जा रही है..... 'संजय कुमार सिन्हा', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण प्रथम, प्रकाशन वर्ष 2017, पृ0 सं0 55।
4. अमर उजाला, भविष्य के साथ खिलवाड़ है यह, कानपुर, रविवार 10 सितम्बर 2023, पृ0 सं0 11।
5. आत्महत्या? चलना ही जिन्दगी है चलती ही जा रही है..... 'संजय कुमार सिन्हा', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण प्रथम, प्रकाशन वर्ष 2017, पृ0 सं0 143।

डॉ0 सतीश चन्द अग्रवाल
प्रधानाचार्य
डॉ0 के0 एन0 मोदी साइंस एण्ड कॉमर्स कॉलिज,
मोदीनगर 201204 गाजियाबाद।
9410441011

28

बखेड़ापुर उपन्यास में दलित चेतना की अभिव्यक्ति और परिवर्तन की दिशा

सुनीता

शोध सारांश

हरे प्रकाश उपाध्याय हमारे समय के जागरूक कवि एवं कथाकार के रूप में जाने जाते हैं ! "बखेडापुर" ज्ञानपीठ प्रकाशन से वर्ष 2014 में प्रकाशित उनका पहला उपन्यास है ! इस उपन्यास ने अपनी व्यंग्य परकता और विलक्षण भाषिक संरचना के कारण बहुत ही कम समय में अपनी एवं अपने लेखन की पहचान स्थापित कर दी है! उपन्यासकार ने कथानक को जिस अंदाज में प्रस्तुत किया है वह कोई नई बात नहीं पर तमाम आवंतर कथाओं को समेटे हुए किसी गांव के चरित्र को उभारना व उसी गांव को "नायक" के रूप में स्थापित कर देना किसी कला से काम नहीं है! "(1)

यह आलेख हरे प्रकाश उपाध्याय के उपन्यास बखेड़ापुर में व्यक्त दलित चेतना की प्रकृति,स्वरूप तथा उसकी परिवर्तन दृष्टि का विश्लेषण करता है! उपन्यास केवल दलित जीवन की करुणा यथार्थ प्रस्तुति तक सीमित नहीं रहता बल्कि वह सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों को उजागर करते हुए दलित अस्मिता, आत्मसम्मान और प्रतिरोध की प्रक्रिया को रेखांकित करता है! इस संदर्भ में यह अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि बखेड़ापुर में दलित चेतना केवल सहानुभूति का विषय नहीं है बल्कि आत्मबोध और सामाजिक पुनर्संरचना की दिशा में एक वैचारिक हस्तक्षेप है ! शिक्षा राजनीतिक विडंबना स्त्री अनुभव और संस्थागत दमन के प्रसंग के माध्यम से उपन्यास परिवर्तन की जिस दिशा की ओर संकेत करता है वह तात्कालिक विद्रोह से आगे बढ़कर दीर्घकालिक सामाजिक चेतना के निर्माण में जुड़ी है !

मूल आलेख

उपन्यास में दलित चेतना की अभिव्यक्ति और परिवर्तन की दिशा

उपन्यास में गांव के सामाजिक संरचना स्पष्ट रूप से जाति पर आधारित दिखाई गई है ! जैसा की उपन्यास मे अभिव्यक्ति मिलती है "बखेड़ापुर गांव स्पष्ट रूप से दो वर्गों में बांटा हुआ है पहला वर्ग रेज टोली (नान्ह टोली) और वही दूसरा वर्ग बड़ टोली! नान्ह टोली में छोटी जात वाले लोग आते हैं जिसमें दलित, मजदू और अनुसूचित जातियाँ शामिल है और वही बड़टोली टोली में श्रवण यानी भूमिहार, राजपूत, कायस्थ और चार घर ब्राह्मण शामिल है।"(2)

छोटी जातियां जो बहुत मेहनत से कार्य करती हैं उन्हें अपनी मजदूरी मांगने का भी पूर्ण अधिकार नहीं था और जैसे ही उनमें अपनी मजदूरी के प्रति चेतना जगती उन्हें बड़ी जाति द्वारा खूब मारा पीटा जाता व डराया धाम गया जाता था। और इस तरह गरीब लोगो पर सामंती ताकते क्रूरतापूर्वक अत्याचार कर रही थी ! जैसा कि गरीब मजदूर भुअर दुसाध का कहना था – "षाँव में रहना मोसकील हो गया है। हम लोग भी आदमी हैं पर हमारा कोई इज्जत हो नहीं है। हमारी जनानियों को वे लोग दिन–दुपहरिया बेइज्जत करते हैं।""बिना मतलब हमसे मार–पीट करे हैं। रास्ते चलते गाली देते हैं।,टाइम पर मजूरी नहीं देते हैं। मजूरी माँगने जाओ तो ऐसे करते हैं जैसे हम भीख माँग रहे हों।"(3)

पुलिसिया छापेमारी के प्रसंग में यह वर्गीय विभाजन और अधिक स्पष्ट हो जाता हैकृनक्सलाइट के नाम पर छोटी जाति के मजदूरों की गिरफ्तारी, औरतों की पिटाई और पूरे टोले को 'संदेह' की दृष्टि से देखनाकृयह सब उस संरचनात्मक अन्याय को रेखांकित करता है, जो दलित जीवन की नियति बना दिया गया है।

किन्तु यहाँ दलित चेतना केवल पीड़ा में सिमटी नहीं है। वह प्रतिरोध के रूप में उभरती है। रूप चौधरी का चरित्र इसका उदाहरण है। वह उन गलियों में भी जाता है जहाँ अन्य उम्मीदवार "घिन" के कारण नहीं जाते। जैसा की उपन्यास मे एक प्रसंग आता है दृ " "रूप चौधरी उन छोटी जाति के घरों में भी गया, जहाँ घिन के मारे दूसरी पार्टियों के उम्मीदवार न जा सके।" यह प्रसंग दलितों के सामाजिक बहिष्कार को रेखांकित करता है, पर साथ ही यह संकेत भी देता है कि दलित समाज अब राजनीतिक रूप से स्वयं को संगठित कर रहा है।

जब रूप चौधरी सभाओं में भाषण देने के बजाय गीत गाता हैकृ"हमनी के लेले जाला पापी दुसमनवा३"कृतो यह गीत केवल भावुकता नहीं, बल्कि सामूहिक स्मृति और सामूहिक पीड़ा का राजनीतिक अनुवाद है। गीत गाते समय लोगों का रो पड़ना, परवतिया का अपने माता–पिता की हत्या का बदला वोट के माध्यम से लेने की बात करनाकृयह सब दलित चेतना के भावनात्मक और राजनीतिक मिलन–बिंदु को दर्शाता है।

बखेड़ापुर में राजनीतिक स्तर पर दलित चेतना का स्वर अत्यंत जटिल और बहुआयामी रूप में सामने आता है। यहाँ लोकतंत्र केवल एक आदर्श व्यवस्था नहीं, बल्कि संघर्ष का मैदान है–जहाँ अधिकार, प्रतिनिधित्व और सत्ता की आकांक्षा आपस में टकराती हैं। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि दलित समुदाय अब राजनीतिक प्रक्रिया से बाहर खड़ा दर्शक नहीं हैय वह उसमें सक्रिय भागीदारी चाहता है। किंतु इसी भागीदारी के भीतर लोकतांत्रिक विडम्बनाएँ भी गहराई से मौजूद हैं।

उपन्यास का चुनावी परिदृश्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ लोकतंत्र एक उत्सव भी है और विडम्बना भी। शराब, नोट, हथियार, बूथ कब्जा–इन सबके बीच रूप चौधरी जैसे पात्र का उभार आशा की किरण बनता है। वह उन गलियों में जाता है जहाँ अन्य उम्मीदवार घिन के कारण नहीं जाते। उसके पास धन नहीं, पर विश्वास है। उसके पीछे भूखे–प्यासे लोग पैदल चलते हैं। यह दृश्य दलित समुदाय की लोकतांत्रिक चेतना का प्रतीक है। मोहनदास नैमिशराय का कथन है– "लोगों को दुःख होता है हमारी आजादी से.. हम स्वयं कुछ कहें तो हमें आँखे दिखाते हैं।" बखेड़ापुर का चुनाव इसी मानसिकता से टकराव का दृश्य है। दलित समुदाय अब वोट को हथियार की तरह प्रयोग करना सीख रहा है। हिंसा और बूथ घेराबंदी के बावजूद मतदान की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी लोकतांत्रिक चेतना का संकेत देती है।

उपन्यास में शिक्षा की स्थिति दयनीय है। स्कूल पुलिस छावनी में बदल गया है। शिक्षक स्थानांतरण करा लेते हैं। पढ़ाई–लिखाई का माहौल नष्ट हो जाता है। यह स्थिति प्रतीकात्मक हैकृजहाँ शिक्षा का अभाव है, वहाँ शोषण स्थायी हो जाता है।डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा था कि बिना शिक्षा मुक्ति संभव नहीं। दलित साहित्य की परंपरा भी शिक्षा को परिवर्तन का आधार मानती है। शिक्षा केवल रोजगार का साधन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का स्रोत है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने ज्योतिबा फूले के संदर्भ में लिखा है

"गुलामी की यातना जो सहता है वही जानता है, और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है।" यह भोगा हुआ यथार्थ जब शिक्षा और जागरूकता से जुड़ता है, तब वह चेतना में रूपांतरित होता है। बखेड़ापुर में यह प्रक्रिया धीमी है, पर स्पष्ट है।

बखेड़ापुर' की एक विशेष उपलब्धि यह है कि वह दलित स्त्री के अनुभव को केंद्र में लाता है। स्त्री पात्र केवल कहानी के सहायक तत्व नहीं हैंय वे दलित चेतना के संवेदनशील और निर्णायक हिस्से के रूप में उभरते हैं। पर्वतीय का चरित्र पूरे बखेड़ापूर उपन्यास में स्त्री स्थिति का सबसे सशक्त और त्रासदी पूर्ण उदाहरण है। पर्वतीय जो की भूअर दुसाध की बेटी है जिसके साथ जगह जगह पर शरीरिक शोषण किया गया है, कहीं रमेश काका द्वारा बगीचे में उसे जकड़ लिया गया। जैसा की लेखक ने उपन्यास मैं व्यंग्य किया है– उन्होंने बाज की तरह झपटकर उसे अपनी गोद में बैठा लिया। एक हाथ से छाती दबाने लगे। दूसरे से उसकी कमर कसकर पकड़े रहे। वह उनकी गोद में जल से बाहर निकाली मछली की तरह छटपटाने लगी। "काका, छोड़िए ना। का कर रहे हैं ई?"(4)

तो वहीं दूसरी और जब उसके पिता भूअर की तबियत खराब होती है तो देवनारायण सिंह डॉक्टर द्वारा भी उसके साथ शोषण होता है "घर से बाहर निकलकर गली में सुनसान पाकर परवतिया की छाती दबोच लेते हैं देवनारायण सिंह।(5) पिता की मृत्यु

पिता की मृत्यु के बाद पर्वतीय की मां की मृत्यु भी बलात्कार के चलते हो जाती है जिसका घिनौना शिकार खुद पर्वतीय दोबारा बनती है जिसके कारण उसे काफी गहरी अंदरूनी चोट भी आई होती है। जो पर्वतीय अपनी मां के जीवित रहते हुए भी सुरक्षित नहीं थी अब वह मां की मृत्यु के बाद एक खुली वस्तु बन जाती है! पर्वतीय के साथ बार–बार होने वाली ये यौन हिंसा उस सामंती मानसिकता को दर्शाती है जिसमें निम्न जाति की स्त्रियों का शरीर सामंती पुरुषो द्वारा सार्वजनिक संपत्ति समझा जाता है!

दलित स्त्री जाति और लिंगकृदोनों स्तरों पर उत्पीड़न का सामना करती है, किन्तु उपन्यास उसे केवल पीड़िता के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। वह अपनी अस्मिता की खोज में सक्रिय है और परिवर्तन की प्रक्रिया में सहभागी भी। परवतीया का यह प्रसंग दृ "परवतिया भी इसके खिलाफ हो गयी है३ यौन शोषण के आरोप लगा दिहिस है।" यह स्त्री की मुखरता को दर्शाता है। दलित स्त्री अब चुप रहने को तैयार नहीं। स्त्री शिक्षा के माध्यम से इन शोषणों पर वार कर सकती है, जैसा की एस,. के. पंचम का कहना है दृ"जब तक दलित स्त्रियाँ आगे नहीं आयेगी उनका शोषण यूँ ही जारी रहेगा.....उनका अधिकार उनको नहीं मिल सकेगा.... आज अच्छा अवसर है पढ़ने का, लिखने का, बहुमुखी विकास का"(5)

इस प्रकार 'बखेड़ापुर' में दलित चेतना किसी एक घटना या संघर्ष में सीमित नहीं है। वह एक क्रमिक प्रक्रिया हैकृपहले अस्वीकार, फिर आत्मबोध, और अंततः परिवर्तन की दिशा में संगठित प्रयास। उपन्यास यह संकेत देता है कि वास्तविक बदलाव बाहरी सुधारों से नहीं, बल्कि भीतर जागी चेतना से संभव है। यहाँ परिवर्तन का अर्थ केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों की पुनर्संरचना है।

निष्कर्ष

बखेडापुर ष्सामंतीष उत्पीडन और शोषण को जीवंत करने वाला एक उम्दा प्रलेख है। व्यंग्य और भाषाई रंगीनियत के आवरण में लेखक ने गरीबी और जलालत की दर्दनाक गाथा लिख दी है। यह गाथा केवल ष्बखेडापुरष् की ही नहीं है अपितु असमान वितरण एवं जातीय संघर्षों से त्रस्त सम्पूर्ण भारतीय गावों की है। आदर्शवादी आवरण में छिपे चरित्रों का खतरनाक पतन

है। विश्वास के सहारे कामुकता का अभिजनवादी नंगा नाच है। लेखक की प्रतिबद्धता को उपन्यास के इस बिंदु में खोजा जा सकता है। उपन्यास में जितने भी अभिजात्य पात्र आये हैं लेखक किसी प्रति भी संवेदनशील नहीं है। लेखक की प्रतिबद्धता को उपन्यास के इस बिंदु में खोजा जा सकता है। उपन्यास में जितने भी अभिजात्य पात्र आये हैं लेखक किसी प्रति भी संवेदनशील नहीं है। "संगीता मैडम" के प्रति भी नहीं क्योंकि वह भी अंततः सामंतवादी राजनेताओं के हाथ में कठपुतली बन जाती है। लेखक की संवेदना खुले तौर पर रूप चौधरी और परवतिया के साथ है। ये दोनों सामंती परिवेश के प्रतिरोध में खड़े हैं जागरूक हैं, वर्ग चेतन हैं। परवतिया की वर्ग चेतना जातीय उत्पीडन की कोख से पैदा हुई है तो रूप चौधरी की चेतना सामाजिक ताने–बाने की अनिवार्य बुनावट है। रूप चौधरी और परवतिया का विवाह संपन्न कर के लेखक ने "जड़तावादी" समाजों में टूट रहीं रूढ़िवादी मायताओं के आलोक में जातीय टूटन का सकारात्मक सन्देश दिया है। भुअरा की मौत इस उपन्यास में एक बड़ी घटना है, भुअरा का दोष इतना है कि वह नीची जाति का है, गरीब है। गरीबी का कारण भी समाज का सामंतवादी ढांचा है। बखेडापुर में भुअरा की मौत केवल भुअरा की मौत नहीं है वह बहुआयामी घटना है। सम्पूर्ण व्यवस्था की मौत है, मनुष्यता की मौत है, संवेदना की मौत है, भुअरा की मौत के साथ ही सत्ता और व्यवस्था में काबिज बुर्जुवा वर्ग की स्वार्थपरकता और जातीय नफरतों का काला चिटठा खुल जाता है। जिस व्यवस्था के सरंक्षण हेतु "ग्राम स्वराज" जैसी अवधारणाओं को "राम–राज" जैसे शब्दों से नवाजा जाता है उस व्यवस्था का खूनी चेहरा भुअरा की मौत के साथ ही पाठक को कारुणिक संवेदनायुक्त आक्रोश से भर देता है। बखेडापुर के माध्यम से लेखक ने पूरे देश की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति का मूल्यांकन किया है। इस मूल्यांकन में मुख्य औजार है व्यंग्य और भाषाई भंगिमा। यहाँ व्यंग्य हँसाने के लिए नहीं आया अपितु पीड़ा महसूस कराने के लिए आया है।

संदर्भ सूची :–

1. हरेप्रकाश उपाध्याय के उपन्यास बखेड़ापुर पर उमाशंकर सिंह परमार की समीक्षा जुलाई 15, 2015
2. उपाध्याय, हरे प्रकाश – बखेड़ापुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 49
3. उपाध्याय, हरे प्रकाश – बखेड़ापुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014,अध्याय– 2
4. उपाध्याय, हरे प्रकाश – बखेड़ापुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 79
5. ..एस. के पंचम–दलित दहन, पृ.83

सुनीता

चतुर्थ वर्ष, 9871828173

लेडी श्री राम कॉलेज फॉर विमेन

(दिल्ली यूनिवर्सिटी),

नई दिल्ली – 110024

29

बहूरानी : प्रेम और कर्त्तव्य की अनूठी कहानी

डॉ० छटु राम

सारांश :

विजय संदेश की कहानी 'बहूरानी' 21वीं शती की कहानियों में नई हलचल पैदा करनेवाली, अत्यंत प्रखर और बहुचर्चित कहानी है। कहानी के पाठ से प्रतीति होती है कि इसमें नई पीढ़ी के लिए नई संभावनाओं के संकेत तो हैं ही, सर्जनात्मक ऊर्जा की वैचारिक संवेदना भी है। कहानी में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना की पृष्ठभूमि में आधुनिक संवेदना और उसकी भावात्मक गहराई को बड़े ही घटनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। बहूरानी कहानी का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें नगरीय और ग्रामीण पृष्ठभूमि का संयोजन इस तरह किया गया है कि देखकर आश्चर्य होता है। कथानायक अमरकांत और नायिका रजनी दोनों पेशे से चिकित्सक हैं और अपने पेशे के प्रति समर्पित हैं। दोनों का एक–दूसरे के प्रति प्रेम, त्याग और समर्पण अदभुत है। वे सामाजिक पूर्वग्रहों को चुनौती देते हुए मानवीय–गरिमा के पक्ष में खड़े हैं तो इसका एक कारण उनके पारिवारिक संस्कार हैं। नायक–नायिका के आदर्श चरित्र से यह ध्वनित होता है कि कहानी में अमरकांत और रजनी भारतीय पुरुष एवं स्त्री के आदर्श के प्रतीक–प्रतिनिधि हैं। कहानी के कथ्य और भाषा–शैली में नयापन है, जिसमें यात्रा का सुख और कहानी का आनंद भी लिया जा सकता है।

बीज शब्द : भावात्मक, तकनीकी, मुहूर्त, कसौटी, संस्कार, सम्मान, सोच, पूर्व–दीप्ति।

विषय प्रवेश :

विजय संदेश प्रमुख हिन्दी समकालीन कहानीकार हैं और "झारखंड के नामचीन कहानीकारों में उनका नाम शुमार है।"[1] अद्यतन उनके दो कहानी संग्रह 'बेकसूर और अन्य कहानियाँ' तथा 'कामवाली बाई और अन्य कहानियाँ' के अतिरिक्त पत्र–पत्रिकाओं में कई छोटी–बड़ी कहानियाँ प्रकाशित हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना और उसकी चिंताओं को संवेदना के धरातल पर दर्शाया गया है, जिसमें उनकी भावात्मक गहराई को देखा और महसूस किया जा सकता है। प्रख्यात आलोचक दिनेश श्रीवास लिखते हैं कि "वर्तमान समय के कई कहानीकार अपनी–अपनी कहानियों में संवेदन–शून्य स्थितियों को उजागर कर रहे हैं। विजय संदेश भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानीकार हैं।"[2] 'बहूरानी' एक ऐसी ही कहानी है, जिसमें समकालीन समाज के यथार्थ की सीधी, बेबाक और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मेरी कहानियों में इक्कीसवीं सदी के ग्रामीण भारत के साथ–साथ छोटे–छोटे कस्बों और नगरों के यथार्थ–चित्र हैं।"[3] कहानी में जहाँ शिल्प की नवीनता है, वहीं भाव–बोध की अभिनव प्रस्तुति भी है। यह कहानी प्राचीन और नवीन मानसिकता की बदली कहानी हुई।

बहूरानी घटनात्मक और भावात्मक प्रेमकथा की कहानी है। इस प्रेमकथा का नायक डॉ० अमर और नायिका डॉ० रजनी है। कहानी का आरंभ कहानीकार ने बड़े रोचक ढंग से किया है। डॉ० अमर हृदय रोग विशेषज्ञ है और उसे 'हृदय रोग : समस्या और उपचार' विषय पर व्याख्यान देने के लिए नीदरलैंड जाना है। डॉ० रजनी उसे नीदरलैंड विदा करने के लिए मुंबई तक आती है, किंतु दुर्योग से मुंबई से राँची वापसी का प्लेन कुछ तकनीकी खराबी के कारण अचानक रद्द हो जाता है और अगले चार दिनों तक कोई विकल्प नहीं है। डॉ० रजनी के लिए यह एक अमंगलकारी सूचना थी। पर, डॉ० रजनी ने अपने लैपटॉप पर रेलवे का विकल्प तलाशा। मुंबई से गया साप्ताहिक में उसे एक थ्री–एसी० का टिकट मिल गया। अब यहीं से कहानी की वास्तविक शुरुआत होती है। डॉ० रजनी का ट्रेन अपराह्न 1.30 में मुंबई के छत्रपति शिवाजी टर्मिनस से था। अभी उसके पास मुंबई में छह घंटे का समय शेष था। इस समय के सदुपयोग के लिए रजनी ने मुंबई की शान अरब सागर के तट को चुना। कहानीकार ने मुंबई के इस सागर तट का जिस रोचक और रोमांचक ढंग से उल्लेख किया है, वह अद्भुत है। वे लिखते हैं– 'उसके होटल के सामने ही अरब सागर लहरें मार रहा था। संयोगवश होटल के कमरे की खिड़की अरब सागर की ओर खुलती थी। अरब सागर में हवाओं के कारण लहरें उफान मार रही थी, जिसने रजनी का ध्यान आकर्षित कर रखा था।... सामने एलिफेंटा पहाड़ियों के ऊपर बादल अट्ठखेलियाँ करते नजर आ रहे थे।'[4] प्रकृति के इस अद्भुत नजारे का लुत्फ रजनी दोपहर के बारह बजे तक लेती रही। और, ससमय वापसी के लिए छत्रपति शिवाजी टर्मिनस चल पड़ी। ट्रेन अपने निर्धारित समय से चली। अँधेरा घिरते ही रजनी हल्के–फुल्के डिनर के बाद अपने बर्थ पर सो गई। ब्रह्म मुहूर्त में बगल की बोगी में एक बुजुर्ग अचेत हुए तो चार्ट के माध्यम से खोज करते हुए टी०टी०ई० आये और उनसे मेडिकल सहायता माँगी तो टी०टी०ई० के अनुरोध पर वह तुरंत चल पड़ी। बुजुर्ग का प्राथमिक उपचार किया और अपने पेशे के प्रति ईमानदारी दिखाते हुए उन बुजुर्ग के पास ही बैठ गई जिससे कि यात्रा के दौरान उन्हें फिर से कोई परेशानी न हो। ट्रेन अपनी गति से चलती रही। पूरा बोगी पुनः शांत हो गया। ऐसे शांत क्षणों में रजनी को भी झपकी आ गई और उसके अधमुंदे नेत्रों के आगे उसकी और अमरकांत के बीच

की स्मृतियाँ दौड़ने लगी। इन स्मृतियों में मेडिकल कॉलेज की वह घटना भी शामिल थी, जिसे डॉ० रजनी आज तक जीती आ रही है।

वह नये साल का प्रथम दिन था। राजेन्द्र आयुर्विज्ञान संस्थान, राँची से छात्रों का एक दल नव वर्ष के उपलक्ष्य में पिकनिक के लिए दशम फॉल गया हुआ था। उस दल में रजनी और अमरकांत भी शामिल थे। प्रकृति के सुरम्य और शांत वातावरण में अमर ने अपने प्रेम का इजहार किया तो रजनी ने भी आँखों ही आँखों से मौन समर्थन दिया। अमरकांत ने जब अपने पिता बलवंत सिंह से रजनी के संबंध में बातचीत की तो जातीय–दंभ के कारण उसे पिता के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। अमरकांत के लिए पिता को समझाना सरल कार्य नहीं था। क्योंकि उसके पिता बलवंत सिंह पुराने ख्यालों के और अपनी जातीय परंपरा को ढोनेवाले व्यक्ति थे। इसके साथ ही आधुनिकता की एक ओछी मिसाल भी उनके सामने थी। उनके मित्र और सहकर्मी वसंतनारायण सिंह के पुत्र माधव ने अपने पिता की सहमति लिए बिना ही प्रेम विवाह कर लिया था। उसका भी घातक परिणाम बलवंत सिंह देख चुके थे। यही कारण था कि बलवंत सिंह ने अमरकांत और रजनी के रिश्ते को स्वीकार नहीं किया था। बलवंत सिंह का यह रवैया एक ओर उनके अपने अनुभवों और सामाजिक परंपराओं के प्रति तो दूसरी ओर जातिगत भेदभावों के कारण भी था।

अमरकांत ने अपने पिता को समझाने की भरपूर कोशिश की, लेकिन बलवंत सिंह अपने निर्णय पर अडिग रहे। इसके बावजूद पिता–पुत्र दोनों में एक समझदारी बनी रही। पिता को अपने बेटे पर भरोसा था कि वह उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेगा और बेटे को विश्वास था कि एक न एक दिन वह अपने पिता को मना लेगा। इसी भरोसे और विश्वास की ताकत ने दोनों को ही रिश्ते की मजबूती दे रखी थी। अपने विश्वास की ताकत पर अमरकांत ने रजनी को आश्वासन ही नहीं एक तरह से वचन भी दे रखा था कि ताउम्र वह उसके साथ रहेगा। समय के अंतराल में दोनों की मेडिकल की पढ़ाई पूरी होती है और दोनों ही 'लाइफ लाइन नर्सिंग होम एंड रिसर्च सेंटर' खोल लेते हैं। दोनों की कर्म–निष्ठा और समर्पण भाव से नर्सिंग होम चल पड़ता है।

कहानी में एक बार फिर से नया मोड़ तब आता है, जब अमरकांत अपनी नीदरलैंड की यात्रा से लौटता है। राँची एयरपोर्ट से हजारीबाग लौटने के क्रम में रजनी एकबार फिर उस एक–एक पल की घटना को दुहराती है, जिसे उसने ट्रेन में उस बुजुर्ग की देख–भाल में बिताया था। वह यह भी बताती है कि वे बुजुर्ग अभी अपने ही नर्सिंग होम में हैं। रजनी के द्वारा उस बुजुर्ग के साथ घटी घटनाओं का आँखों देखा वर्णन अमरकांत को उस बुजुर्ग के प्रति आकर्षण पैदा कर देता है। नर्सिंग होम पहुँचते ही वह उन बुजुर्ग के कमरे में जाता है, जिस कमरे में वह थे। उन्हें देखकर वह ठिठक जाता है क्योंकि वे बुजुर्ग कोई और नहीं स्वयं अमरकांत के पिता थे। अपने पिता को सामने देखकर अमरकांत मानों चेतना–शून्य हो रजनी से लिपटता हुआ कहता है– 'यही मेरे पिताजी हैं रजनी! यही मेरे पिता जी हैं।'[5] कहानी का यह चरम विंदु है पर कहानी यहीं खत्म नहीं होती। दोनों ही पिता के चरणों में गिर जाते हैं। बलवंत सिंह को समझते देर नहीं लगती कि यह वही डॉक्टर है, जिसकी कभी उसने उपेक्षा की थी। रजनी के प्रति बलवंत सिंह का हृदय–परिवर्तन होता है और पहली बार वे उसे बहूरानी संबोधित करते हैं। उनके मन का जातीय–दंभ काफूर होता है और वे कह उठते हैं– "बेटे, तुम्हारी माँ हमेशा कहा करती थी कि स्त्री की कोई जाति नहीं होती। वह तो बहती हुई सरिता के जल की तरह निर्मल और सदैव प्रेम में बहनेवाली धारा की तरह होती है।"[6] बलवंत सिंह का यह कथन कहानी को चरम उत्कर्ष तक ले जाता है और स्त्री–जाति की सार्वभौमिकता और उसकी पहचान को रेखांकित करता है।

इस कहानी की सामाजिक प्रासंगिकता आज के आधुनिक भारतीय समाज के संदर्भ में अनुकूल और महत्वपूर्ण है। वर्तमान दौर के भारतीय समाज में आज जिस तरह से परंपरा और आधुनिकता का मिश्रण देखने को मिल रहा है, बहूरानी कहानी उस कसौटी पर सौ फीसद खरा उतरती है। शिक्षा और वैश्वीकरण ने आज के मनुष्य के दृष्टिकोण को बदला अवश्य है पर जातीय परंपराएँ कुछ–कुछ अभी भी जीवित हैं। यही कारण है कि अंतर्जातीय विवाह कई परिवारों के लिए अभी भी सामाजिक मुद्दा बना हुआ है। रजनी और अमरकांत का शुद्ध–सात्विक प्रेम और उनकी निःस्वार्थ–सेवा समाज के लिए एक उत्प्रेरणा तो है ही, मानवीय दृष्टिकोण अपनाने के लिए जागरण का संदेश भी है। डॉ० रजनी का एक अनजान व्यक्ति बलवंत सिंह की प्राण–रक्षा के लिए तत्पर रहना उसकी मानवीय संवेदनशीलता का प्रतीक और कहानी की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह डॉ० रजनी की मानवता के प्रति निःस्पृह संवेदनशीलता और उसके अपने पेशे के प्रति पूर्ण ईमानदारी का द्योतक है। कहानी के अंत में डॉ० रजनी के कार्य–व्यवहार से न केवल बलवंत सिंह के भीतर का पूर्वग्रह टूटता है बल्कि कहानीकार यह संदेश देने में सफल हैं कि प्रेम और मानवता मनुष्य के सभी बंधनों से ऊपर हैं।

बहूरानी कहानी में परंपरा और आधुनिकता

के बीच टकराव है, जिसमें पिता बलवंत सिंह और पुत्र डॉ० अमरकांत के सहारे पारंपरिक मान्यताओं और आधुनिक विचारों की अपेक्षाओं के मध्य संघर्ष है। यह एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसकी पहली पीढ़ी में पारंपरिक संस्कार हैं, जबकि दूसरी पीढ़ी में आधुनिक सोच है। कहानीकार ने यह रेखांकित करने की कोशिश की है कि सोच में अंतर होने के बावजूद दोनों पीढ़ियों में कहीं भी एक–दूसरे के प्रति असम्मान की भावना नहीं है बल्कि दोनों पीढ़ी एक–दूसरे का सम्मान करते हैं। बलवंत सिंह परंपरा के और डॉ० अमरकांत आधुनिक विचारों के प्रतीक–प्रतिनिधि हैं। इस टकराव और संघर्ष के बावजूद कहानीकार की यह जादूगरी ही कही जायेगी कि उन्होंने बड़ी समझदारी से पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच संतुलन दिखाया है। डॉ० अमरकांत का अपने पिता बलवंत सिंह के प्रति सम्मान का भाव है तो बलवंत सिंह के द्वारा भी नई पीढ़ी के डॉ० अमरकांत को स्पेश देने की कोशिश की गई है। दोनों पिता–पुत्र एक–दूसरे के विचारों का सम्मान करते हुए अंततः एक–दूसरे के विचारों से सहमत होते हुए एक सामान्य विंदु पर ठहर जाते हैं और रिश्तों की अहमियत को प्रधानता देते दिखाई पड़ते है। इससे दोनों पीढ़ियों में संवादहीनता की जगह भरोसा और विश्वास बढ़ता है। कहानीकार ने संकेत किया है कि पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी के साथ और नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी के साथ वैचारिक सामंजस्य बिठाना समय की माँग है, जो इस माँग के साथ तालमेल नहीं बिठा पाते, समय उनको हाशिए पर छोड़ देता है।

विजय संदेश ने बहूरानी कहानी में काल्पनिक पात्रों की अपेक्षा जीवन–संघर्ष से जूझते पात्रों का सृजन किया है। डॉ० अमरकांत और डॉ० रजनी पेशे से डाक्टर होते हुए भी वे जीवन–संघर्ष में आसन्न सामाजिक परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। पूरी कहानी डॉ० अमरकांत और डॉ० रजनी के इर्द–गिर्द बुनी गई है जिसमें प्रेम, त्याग और कर्म की भावना सन्निहित है। नायिका रजनी के प्रेम में उच्चादर्श है, जिसमें नायक अमरकांत के प्रति प्रेम है, त्याग है और समर्पण है। किंतु, यह केवल प्रेम–कहानी नहीं है प्रत्युत् इसमें मानवीय संवेदनाओं के साथ–साथ अपने पेशे के प्रति ईमानदारी और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर करनेवाली टिप्पणी भी है। कहानी की शुरुआत भले ही मुंबई से राँची–हजारीबाग की रेल–यात्रा से होती हो, जिसमें एक आपात चिकित्सा स्थिति और कहानी के अंत में अप्रत्याशित पारिवारिक पुनर्मिलन के माध्यम से मानवीय–गरिमा और सामाजिक पूर्वग्रहों को चुनौती देते हुए उसके प्रक्षालन की यथासंभव कोशिश है। कहानी के पाठ से प्रतीति होती है कि इसमें सामाजिक–सांस्कृतिक और नैतिक निहितार्थों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह कथा एक मार्मिक कहानी होने के साथ–साथ प्रेम और कर्त्तव्य के माध्यम से समाज में सकारात्मक बदलाव लाने का एक सार्थक प्रयास है। बहूरानी का प्रतीक रूप डॉ० रजनी के आदर्श चरित्र से कहानीकार ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि बड़ों का आदर करना और अपने पेशे के प्रति कर्त्तव्य–निष्ठा तथा समर्पण ही भारतीय परंपरा और संस्कृति की आत्मा और पहचान है। रजनी पेशे से डॉक्टर और उच्च शिक्षित है, इसके बावजूद वह एक आदर्श भारतीय नारी की तरह अपनी सोच, संस्कार और व्यवहार–कुशलता से न केवल परिवार–समाज का दिल जीता बल्कि भविष्य के समाज के लिए एक आदर्श भी बनी। वह एक सच्ची प्रेमिका है तो आदर्श बहूरानी होने का गुण भी उसमें है। परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं रहने के बावजूद परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की दृढ़ता, आत्मविश्वास और साहस उसके भीतर है। डॉ० रजनी के दृढ़ चरित्र और आत्मविश्वास के आधार पर यह टिप्पणी की जा सकती है कि कथा में केवल डॉ० रजनी का प्रेम–मात्र नहीं है प्रत्युत् उसके व्यक्तित्व में संघर्ष की जीवटता और कर्तव्यनिष्ठा का विशिष्ट योग है। कहानी में अमरकांत का चरित्र एक प्रबुद्ध नायक के रूप में है तो रजनी एक सशक्त स्त्री–चरित्र के रूप में प्रस्तुत है, जो अपनी चिकित्सीय विशेषज्ञता और संवेदनशीलता के साथ सदियों से चली आ रही रूढ़ियों को चुनौती देती है। वह अपने पेशे में उत्कृष्ट और निजी जीवन में धैर्यपूर्ण है।

बहूरानी कहानी की संवाद–योजना अप्रतिम है। इसमें कई पात्र कई स्थलों पर आपसी बातचीत करते हैं। संवाद कहीं लंबे तो कहीं छोटे हैं। कहानी में आये संवादों से कहानी को न केवल गति मिली है बल्कि इससे पात्रों के मनोभाव आदि को भी स्पष्ट किया जा सका है। डॉ० अमरकांत और उसके पिता बलवंत सिंह के बीच जो संवाद है, उससे दोनों के बीच के रिश्तों, मतभेदों और उनके जुड़ाव की कई परते खुलती है। इन परतों से कहानी की एकरसता को तोड़ने और कहानी को सजीव बनाने में कहानीकार को अभूतपूर्व सफलता मिली है। पूर्व–दीप्ति शैली में लिखी गई इस कहानी के संवाद कथा के परिवेश को अर्थपूर्ण बनाते हुए, सकारात्मक विस्तार देने में सक्षम है। बहूरानी कहानी जब जब किसी विंदु पर शिथिल हुई है, कहानीकार ने उसकी गतिशीलता के लिए संवाद–योजना का सहारा लिया है। कहानी के इस संवाद ने कहानी को गति तो दिया ही है, पूर्णता देने में भी सार्थक हस्तक्षेप किया है। यथा–

'हलो अमर! मैं बाबूजी बोल रहा हूँ।

उधर से अमरकांत की आवाज आई– बाबूजी, प्रणाम।

बाबूजी ने कहा– खुश रहो। सुखी रहो।

परस्पर अभिवादन के बाद थोड़ा रूककर ठिठकते हुए अमरकांत ने कहा– "बाबूजी, कई दिनों से एक बात मैं कहना चाह रहा था, पर हिम्मत नहीं हो रही थी। बलवंत सिंह ने बड़े प्यार से कहा– ऐसी कौन–सी बात है बेटे, जो तुम मुझसे नहीं कह सकते। खैर, मुझसे नहीं कह सकते तो अपनी माँ से कहो और स्पीकर ऑन करके फोन पत्नी को दे दिया।"[7] पिता–पुत्र के बीच का यह संवाद कहानी को सार्थक गति देता है, जिससे कहानी को अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता मिली है।

बहूरानी कहानी में मुंबई से लेकर राँची–हजारीबाग तक के देश–काल की सुंदर प्रस्तुति हुई है। मुंबई का समुद्र तट हो या हो राँची का दशम फॉल प्रकृति के सुंदर नजारों का कहानीकार ने दर्शन करवाया है। दोनों स्थलों के प्राकृतिक दृश्य अपने आप में अद्‌भुत हैं। नायिका रजनी के साथ कहानीकार ने मुंबई के अरब सागर–तट का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है तो वहीं राँची के दशम फॉल का बिंब लुभाता है। ये दोनों बिंब कहानी को बेहतरीन दृश्यात्मक आयाम देने में सक्षम है।

निष्कर्ष :

ऐसा माना जाता है कि "मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचानने की धारणा ने जातिगत चाहरदीवारी को ढाह दिया है।"[8] बहूरानी कहानी के अंत में भी जातीय अवधारणाओं के टूटने और आधुनिक मान्यताओं के स्वीकार की जो कारीगरी कहानीकार ने की है, वह स्तुत्य है। इसकी कथा मार्मिक तो है ही इसमें प्रेम और कर्त्तव्य के बीच समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की अनुगूँज भी है। इस अनुगूँज का संकेत यह है कि हमारे समाज में जो सामाजिक जटिलताएँ और जातीय भेद–भाव पसरा हुआ है, उसका एकमात्र समाधान रुढ़ियों और आधुनिक सोच के संतुलन में है। अभिप्राय यह कि यथास्थिति से चिपके रहने की अपेक्षा युगीन समाज की संवेदनाओं से जुड़ जाना मनुष्य के सेहत–स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। मेरी दृष्टि में कहानी का मूल उद्देश्य भी मानवीयता और प्रेम के साथ–साथ एक बेहतर समावेशी समाज की स्थापना है।

संदर्भ संकेत :

1. कच्छप, पार्वती. विजय संदेश की रचनाधर्मिता : रंग और रेखाएँ. (सं०) अनिल सिंह और अनंत द्विवेदी, दिल्ली : अनुज्ञा प्रकाशन, 2023, पृ० 180.
2. श्रीवास, दिनेश. विजय संदेश की कहानियों में संवेदना और शिल्प. गाजियाबाद : इंडियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न, सितम्बर–अक्टूबर 2023, पृ० 97.
3. संदेश, विजय कुमार. कामवाली बाई और अन्य कहानियाँ. दिल्ली : अनुज्ञा प्रकाशन, 2025, (अपनी बात), पृ० 07.
4. संदेश, विजय कुमार. कामवाली बाई और अन्य कहानियाँ. दिल्ली : अनुज्ञा प्रकाशन, 2025, पृ० 89.
5. संदेश, विजय कुमार. कामवाली बाई और अन्य कहानियाँ. दिल्ली : अनुज्ञा प्रकाशन, 2025, पृ० 96.
6. संदेश, विजय कुमार. कामवाली बाई और अन्य कहानियाँ. दिल्ली : अनुज्ञा प्रकाशन, 2025, पृ० 96
7. संदेश, विजय कुमार. कामवाली बाई और अन्य कहानियाँ. दिल्ली : अनुज्ञा प्रकाशन, 2025, पृ० 92.
8. सिंह, नरेन्द्रनाथ. समकालीन हिन्दी कहानी का सामाजिक सरोकार. गाजियाबाद : आकाश पब्लिशर्स, 2010, पृ० 174.

डॉ० छटु राम

सहायक प्राध्यापक

पाँच परगना किसान कॉलेज,

(राँची विश्वविद्यालय, राँची)

बुंडू, राँची

(M) 0870995206

Mail : chhaturam1993@gmail.com

30

The Socio-Economic Dimensions of Climate Change: Navigating Impacts on Global Agriculture, Tourism, and Employment

Nayana Treesa E T, Dr.Nivedita Agnihotri

Abstract:

This study analyzes the transformative potential of emerging technologies and innovations in climate change mitigation and environmental stewardship. While technological innovation is essential, findings indicate that effective climate action requires a holistic sociotechnical approach supported by cooperation between public and private sectors. The paper explores the "double-edged" nature of innovation, addressing how technologies like AI and renewable energy aid adaptation while simultaneously presenting challenges such as the digital divide and e-waste. Furthermore, the study emphasizes climate education as the critical bridge between scientific knowledge and community action. The research concludes that strong political commitment and inclusive strategies are necessary to drive adaptation initiatives capable of reducing the adverse impacts of global climate change. The primary role of this paper is to investigate the pivotal role of technology and innovation in climate adaptation and also to examine how advances in technology can alleviate the effects right away.

Keywords: innovation, climate change, renewable energy, technology

Introduction:

One of the biggest challenges facing our generation is climate change. It is imperative to develop effective climate adaptation at the time when climate change impacts more intense and frequent weather events like rising sea level and shifting ecosystems. Climate change represents the defining challenge of the modern era, characterized by rising global temperatures, extreme weather events, and shifting ecosystems. As noted by the Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC), human activities—both direct and indirect—remain the primary drivers influencing the Earth's atmospheric composition (Nwankwo et al., 2020). The accumulation of greenhouse gases (GHG) from the exploitation of fossil fuels in transportation, industry, and housing has created a global climate inconsistency that threatens both developed and developing nations (Filonchyk, 2024).

However, in keeping with the long-term objective of sustainability, Ai driven climate modelling, resilient infrastructure and renewable energy sources are some of the adaptive technologies used to mitigate immediate effects of climate change. (Jacob,2024) For instance, artificial intelligence used in climate modelling has made extreme climate events predictions better and therefore more effective planning and resource utilization in vulnerable areas. (Jacob,2024)

Technology and Innovation as a ResponseTechnology, defined as the application of conceptual knowledge to achieve practical, reproducible goals, has emerged as a critical tool for mitigation and adaptation (Agnihotri et al., 2022).

Innovation is anticipated to be a key factor in the increasing impacts of climate change by promoting the national and subnational decarbonization process. Since the 2015 Paris Agreement and the subsequent "Mission Innovation" initiative, global powers have doubled investments in low-carbon technologies (Sanchez & Sivaram, 2017). These include carbon capture and storage (CCS), renewable energy, and more controversial geoengineering options (Sovacool, 2021b).

Objectives of the Study: The main objectives of the study are:

1. To analyze the dual role of technology in climate education and its impact on the climate.
2. To explore the consequences of adopting transformative technologies for environmental stewardship.

Data and Methodology

This study employs a qualitative research design based on **secondary data analysis**. Information was synthesized from a comprehensive review of academic journals, research papers, doctoral dissertations, and international

organizational reports (e.g., IPCC, UNGC). The literature review focuses on studies and data published between 2018 and 2025 to capture the most recent advancements in frontier technologies.

Significance of the study

Technology and innovation significantly influence society's response to climate change, yet they also contribute to environmental pressures through increased energy consumption, resource extraction, and electronic waste. Therefore, balancing technological advancement with sustainability remains essential. Climate education plays a crucial role in fostering awareness, promoting responsible actions, and empowering future generations to develop sustainable and climate-resilient solutions.

Review of Literature

Climate change refers to long-term shifts in the Earth's typical weather patterns, including changes in temperature, rainfall, and other atmospheric conditions. Scientists play an essential role in both understanding these changes and finding ways to reduce their impacts (Kurniawan et al., 2022).

The main drivers of climate change include greenhouse gas emissions like carbon dioxide, the loss of forests that would normally absorb CO_2, and industrial activities that release harmful pollutants into the air. This global challenge affects many countries, and Kenya is no exception. (Gebre, Amekawa & Fikadu, 2023). Additionally, drought and water shortages in some regions have harmed wildlife, which in turn impacts the tourism sector, another vital contributor to Kenya's economy.

Filonchyk et al. (2024) found that the accumulation of greenhouse gases in the atmosphere is another major cause of the climate inconsistency. According to several other studies, pollution is also considered as one of the main causes for climate change.

Mittal et al., 2025 and Ahsan, 2019 found Climate-induced migration is an emerging social and economic crisis. Driven by environmental degradation, people are forced into displacement, which disrupts labor markets and exacerbates poverty and political instability.

Luthfia (2025) found that society had been facing a complex and urgent problem—climate change. This phenomenon had already brought serious consequences to people's lives, including water shortages, natural disasters, health risks, food insecurity, and a range of socio-economic challenges. Education was seen as an essential tool in responding to these issues.

In another study conducted by Kanwal et al., 2025 observed that beyond physical destruction, the "psychological footprint" of climate change includes "eco-anxiety." Innovation and technology are the "vital weapons" in the battle against climate change. **Luu et al. (2025)** argued that technology serves a dual purpose: **mitigation** (reducing emissions) and **adaptation** (adjusting to irreversible changes). Technologies such as carbon capture, energy efficiency, and renewable energy form the foundation of a low-carbon economy.

Analysis and Discussions

The variations in the climate had a very strong nexus with the environmental threat. The primary source of revenue in developed countries depends on extractive activities, which are largely dependent on a decent climate, developing nations are more affected by the relationship between climate fluctuations and environmental danger. Furthermore, climate change affects not only agricultural practices but also other human endeavors. (Nwankwo, et.al, 2020). Climate change - refers to the alteration in the climate over a period often arising from the activities as human as well as some naturally stirring events such as earthquakes, explosions, etc. The intergovernmental panel on climate change (IPCC) report states that human actions, whether direct or indirect are the main factor influencing the composition of the world's atmosphere. (Nwankwo, et.al, 2020)

The universally recognized notion is that the important cause of climate change is the emission of greenhouse gases and also the exploitation of the coal and petroleum products in the power plants, transportation, housing,

industries, etc. (Nwankwo, et.al, 2020)

The Frontier Technology Market

The market for frontier technologies is expanding exponentially. Valued at $2.5 trillion in 2023, it is projected to reach $16.4 trillion by 2033, with AI leading at a market size of approximately $4.8 trillion. AI-driven climate modeling allows for superior prediction of extreme events, enabling vulnerable regions to plan infrastructure more effectively (Jacob, 2024).

Conservative technologies – Conservation technologies encompass a range of innovation tools and approaches designed to promote the sustainable use of natural resources, protect biodiversity, and mitigate environmental degradation. (Samargandi, 2017)

Studies have shown that there is no country on the planet where its citizens at any level are insulated from the challenges of climate change and the economic recession. (IPCC 2022)

Increased production and consumption of goods and services create economic benefit through higher demands for improved technologies. (GOSSART, 2015)

CLIMATE CHANGE AND GLOBAL INEQUALTY

Climate change is largely driven by greenhouse gas emissions from highly industrialized nations of the Global North, while countries in the Global South contribute less yet experience more severe impacts. These effects extend beyond environmental degradation to social welfare, economic instability, food and water insecurity, and health risks. Climate change also deepens global and national inequalities, disproportionately affecting marginalized groups such as low-income communities, children, the elderly, and indigenous peoples (Yadav et al., 2025).

SOCIAL AND ECONOMIC IMPACTS OF CLIMATE INDUCED MIGRATION AND DISPLACEMENT

Climate-induced migration refers to the movement of people caused by environmental degradation and climate change, occurring either temporarily or permanently due to disasters such as floods, droughts, earthquakes, or gradual processes like ecosystem degradation and loss of habitable land. These environmental changes threaten human safety, housing, and livelihoods while intensifying socioeconomic vulnerabilities such as poverty, resource scarcity, and political instability (Mittal et al., 2025). In agriculture-dependent regions, prolonged drought and declining crop yields can lead to food insecurity and economic hardship, forcing migration (Mittal et al., 2025). The increasing scale of such displacement creates major challenges for societies and governments (Ahsan, 2019). Climate change also affects key economic sectors, including agriculture and tourism (Dogan, 2025; Agnihotri, 2024), highlighting the importance of sustainable development and the SDGs for balancing economic growth, environmental protection, and social well-being (Giiney et al., 2025).

Findings of the study:

As every coin has two sides, same that this study has also both the positive and negative sides. By observing positive side, we came to know that technology and innovation positively influence climate change education by making learning more accessible, engaging, and evidence-based.

Some of the important points of findings have been discussed below:

- The recent developments present both the public and private sectors with different technological approaches from low to non-carbon the consequences of global warming (Sovacool,2021b; UNGC - Accenture, 2015)
- In 2015 during the United Nations climate change conference in Paris, twenty countries including the UK, China and India committed to double their investment in low-carbon technology, as a part of the "MISSION INNOVATION "agreement. (SANCHEZ AND SIVARAM, 2017)
- Innovation in climate change includes the low carbon and non-carbon technologies, carbon reduction technologies, carbon capture and storage technologies (NEWELL 2009).

- More controversial technologies include "GEOENGINEERING"options, which seek to slow or reduce global warming through the international, large-scale modification of the climate (SOVACOOL, 2021b, WINTER 2014).

Suggestions of the Study: Innovation is anticipated to be a key factor in the increasing impacts of climate change by promoting the national and subnational decarbonization process.

- ➔ National education systems should mandate "Climate Economics" in schools to teach future generations how to adapt agricultural and industrial practices to changing ecosystems.
- ➔ Governments should provide specialized vocational training in renewable energy and carbon management to protect employment security during the transition to a low-carbon economy.
- ➔ Eco-Digital Awareness: Organizations should promote "Eco-Digital" literacy to maximize the environmental benefits of remote working, such as reduced travel emissions and optimized energy use.

Conclusion:

In conclusion, technology and innovation play a powerful role in shaping how we understand and respond to climate change, offering both opportunities and challenges. While modern tools help us track environmental changes, develop cleaner solutions, and create engaging ways to learn, they also bring issues such as unequal access, misinformation, and environmental costs. These complexities make climate education more important than ever. By teaching people—especially young learners—how to think critically, use technology responsibly, and understand the science behind climate change, we can build a more informed and resilient society. Ultimately, combining innovation with strong climate education empowers communities to make conscious choices, protect the planet, and work toward a sustainable future for all.

References:

Adam and Thornhill, 2015Gates to double investment in renewable energy projects. Financial Times. Available at: https://www.ft.com/content/4f66ff5c-1a47-11e5-a130-2e7db721f996 (2015) Google Scholar

Agnihotri et al., (2022). International migration from Rural Punjab-an analysis. *Anusandhan-NDIM's Journal of Business and Management Research. 4*(2). 12-21.

Available at: https://doi.org/10.56411/ anusandhan.2022.v4i1.2-12-21

Agnihotri, N. (2024). International Migrants from Rural Punjab—Attributes and Characteristics. *The Indian Economic Journal*, *72*(3), 554-567. Available at: https://doi.org/10.1177/00194662241235584

Amri, F. (2025). Technology innovation and climate change mitigation: effects and transmission channels. *Environmental Economics and Policy Studies*. https://doi.org/10.1007/s10018-025-00452-5

Chapter 16: Innovation, technology development and transfer. (n.d.). In *IPCC Sixth Assessment Report*. https://www.ipcc.ch/report/ar6/wg3/chapter/chapter-16/

Filonchyk,et. al. (2024). Greenhouse gases emissions and global climate change: Examining the influence of CO2, CH4, and N2O. Science of total environment. Avaialbe on: https:// www.sciencedirect.com/science/ article/pii/ S004896972403506X?via%3Dihub

Huang, Y. (2021). Technology innovation and sustainability: challenges and research needs. *Clean Technologies and Environmental Policy*, *23*(6), 1663–1664. https://doi.org/10.1007/s10098-021-02152-6

Jacob, M. (2024). Technology and Innovation in Climate

Adaptation: Balancing Short-Term Solutions with Long-Term Sustainability Goals. *JSS Journal for Legal Studies and Research*, 107–122. https://www.jsslawcollege.in/jsslc-online-journal/

Kassim, A. Z. M. (2021). International Journal of Latest Technology in Engineering, Management & Applied Science. *International Journal of Latest Technology in Engineering Management & Applied Science*. https://doi.org/10.51583/ijltemas

Kosoko-Oyedeko, G. A., Asagha, E. N. (2025). The role of educational technology in climate change related mitigation. *International Journal of Strategic Research in Public Administration and Organizational Process*, *5–5*(1), 277–278. https://internationalpolicybief.org/international-journal-of-strategic-research-in-public-administration-and-organizational-process-volume-5-number-1/

Luu, T. M. N., Yadav, M., Srivastava, A. P., & Gopal, K. (2024). Innovation and technology to address the challenges of climate change. In *Advances in environmental engineering and green technologies book series* (pp. 423–464). https://doi.org/10.4018/979-8-3693-5792-7.ch017

Matos, S., a, Viardot, E., Sovacool, B. K., Geels, F. W., & Xiong, Y. (2022). Innovation and climate change: A review and introduction to the special issue [Journal-article]. *Technovation*, *117*, 102612. https:// doi.org/10.1016/j. technovation. 2022.102612

Muccione, V., Ewen, T., & Vaghefi, S. A. (2025). A scoping review on climate change education. *PLOS Climate*, *4*(1), e0000356. https://doi.org/10.1371/journal. pclm. 0000356

Nwankwo, W., Jr., Ukhurebor, K. E., & Aigbe, U. O. (2020). Climate Change and Innovation Technology: a review [Review Article]. *Technology Reports of Kansai University*, *63*(3), 383–391. https:// www. researchgate.net/ publication/ 341051255_ Climate_ Change_and_ Innovation_ Technology_ A_Review

Nwankwo, W., Ukhurebor, K. E., Aigbe, U. O., Delta State University of Science and Technology, Edo State University Iyamho, Cape Peninsula University of Technology, & Kingsley Eghonghon Ukhurebor. (2020). Climate Change and Innovation Technology: a review. In *Technology Reports of Kansai University* (p. 383) [Journal-article]. https://www.researchgate.net/publication/341051255

Samargandi N (2017) Sector value addition, technology and CO2 emissions in Saudi Arabia. Renewable and Sustainable Energy Reviews 78:868–877.

United Nations Conference on Trade and Development. (2025). *Technology and Innovation Report 2025: Inclusive Artificial Intelligence for Development*. https://unctad.org/system/files/official-document/tir2025overview_en.pdf

First Author: Nayana Treesa E T

Department Of Education,

4th Semester ITEP)

Central University Of Punjab

Email ID – nayanahyfa@gmail.com

Co-Author: Dr.Nivedita Agnihotri

Asst.prof (Economics)

Central university of Punjab

NAYANA TREESA E T

Rani Lakshmibai girls hostel, Central University of Punjab

Badal - Bathinda road, Gudha, Punjab Bhatinda (gudda), PUNJAB 151401

India

Phone number: 9846397647

31

शेरशाह सूरी के शासनकाल में दिल्ली (1540–1545 ई.) प्रशासनिक पुनर्गठन और शहरी परिवर्तन का आलोचनात्मक अध्ययन

Jatin

सारांश

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में दिल्ली राजनीतिक उथल–पुथल का केंद्र बनी हुई थी। बाबर द्वारा स्थापित मुगल सत्ता अभी स्थिर नहीं हो पाई थी कि अफगान नेता शेरशाह सूरी ने 1540 में हुमायूँ को पराजित कर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। इस पाँच वर्षीय शासन (1540द्1545) में शेरशाह ने केवल सैन्य विजय ही नहीं की, बल्कि प्रशासनिक पुनर्गठन, राजस्व सुधार, शहरी विकास और आर्थिक स्थिरीकरण जैसी दूरगामी व्यवस्थाएँ भी कीं।

यह अध्ययन शेरशाह के शासन को एक संक्रमणकालीन चरण के रूप में देखता हैकृजो दिल्ली सल्तनत की पुरानी संरचना और परिपक्व मुगल व्यवस्था के बीच एक सेतु बनता है। प्रमुख इतिहासकारों के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि उनका शासन केवल सैन्य शक्ति का प्रदर्शन नहीं, बल्कि संस्थागत निर्माण का एक महत्वपूर्ण प्रयास था।

कीवर्ड्स (Keyword)

शेरशाह सूरी, दिल्ली प्रशासनिक पुनर्गठन, शहरी परिवर्तन, राजस्व सुधार, मुद्रा मानकीकरण, सड़क नेटवर्क, भूमि मापन, मुगल प्रभाव, संक्रमणकालीन शासन, आर्थिक स्थिरता

रिसर्च पेपर के उद्देश्य (Objectives)

शेरशाह सूरी के शासनकाल (1540–1545 ई.) में दिल्ली के प्रशासनिक पुनर्गठन की जांच करना, जिसमें केंद्रीकरण, विकेंद्रीकरण और संस्थागत ढांचे पर फोकस हो।

शहरी परिवर्तनों का आलोचनात्मक अध्ययन करना, जैसे किले का निर्माण, सड़क नेटवर्क, बाजार संरचना और संचार तंत्र का विकास।

आर्थिक सुधारों (राजस्व व्यवस्था, मुद्रा मानकीकरण, भूमि मापन) का मूल्यांकन करना और उनके दिल्ली पर प्रभाव को समझना।

न्याय व्यवस्था, सामाजिक संतुलन और शेरशाह की नीतियों के मुगल प्रशासन पर दीर्घकालिक प्रभाव का विश्लेषण करना।

शेरशाह के शासन को दिल्ली सल्तनत और मुगल काल के बीच संक्रमणकारी चरण के रूप में स्थापित करना, साथ ही इतिहासकारों के दृष्टिकोण से इसकी प्रासंगिकता को उजागर करना।

मेथडोलॉजी (Methodology)

इस रिसर्च पेपर में ऐतिहासिक अध्ययन की विधि अपनाई गई है, जिसमें प्राथमिक (Primary) और द्वितीयक (Secondary) स्रोतों का उपयोग किया गया समकालीन लेखन और आधुनिक विद्वानों की। मुख्य फोकस ऐतिहासिक दस्तावेजों, सम व्याख्याओं पर रहा।

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

अबुल फजल द्वारा लिखित आइन–ए–अकबरी (अकबर काल के दस्तावेज, जिसमें शेरशाह की नीतियों का उल्लेख मिलता है)

अब्दुल्लाह खान की तारीख–ए–शेरशाही (शेरशाह के समकालीन या निकटकालीन लेखन, प्रशासनिक विवरण के लिए)

फरिश्ता की तारीख–ए–फरिश्ता (सूरी काल का संक्षिप्त वर्णन, दिल्ली के पुनर्गठन पर)

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

सतीश चंद्रा – Medieval India: From Sultanat जव जीम डनहींसे (2005)

इरफान हबीब – The Agrarian System of Mughal India (1999)

के.आर. कनुंगो – Sher Shah and His Times (1921)

पीटर जैक्सन – The Delhi Sultanate: । Political and Military History (1999)

खलीक अहमद निजामी – Akbar and Religion (1989)

अध्ययन की विधि

ऐतिहासिक विश्लेषण (Historical Analysis): स्रोतों से तथ्यों की तुलना और व्याख्या।

तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Method): शेरशाह की नीतियों को दिल्ली सल्तनत और मुगल काल से जोड़ना।

आलोचनात्मक मूल्यांकनः विद्वानों के मतों की समीक्षा, जैसे चंद्रा और हबीब की व्याख्याओं पर आधारित।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हुमायूँ की प्रशासनिक कमजोरियाँ और अफगान सरदारों में बढ़ती असंतुष्टि ने उत्तर भारत में अस्थिरता को जन्म दिया। इसी बीच शेरशाह ने 1540 में दिल्ली पर अधिकार स्थापित किया। यह परिवर्तन मात्र राजनीतिक उलटफेर नहीं था – यह एक पूर्ण प्रशासनिक पुनर्रचना की शुरुआत थी। सतीश चंद्रा के अनुसार, शेरशाह का शासन मध्यकालीन राज्य–व्यवस्था के विकास में एक संक्रमणकारी चरण का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका अध्ययन दिल्ली के संदर्भ में विशेष महत्व रखता है।

राजधानी के रूप में दिल्ली का पुनर्गठन

शेरशाह ने दिल्ली को केवल सत्ता का केंद्र नहीं, बल्कि

प्रशासनिक नियंत्रण और सुधारों का आधार बनाया। पुराने किले को सुदृढ़ किया और नया किलाकृजिसे बाद में शेरगढ़ कहा गयाकृनिर्मित किया। यह स्थापत्य दृष्टि से ही नहीं, राजनीतिक वैधता का प्रतीक भी बना। इरफान हबीब जैसे इतिहासकार इसे एक संगठित शासक की कार्यकुशलता मानते हैं, जिसने अल्पकाल में ही स्थायी प्रभाव छोड़ा।

प्रशासनिक केंद्रीकरण, विकेंद्रीकरण और संस्थागत ढाँचा

शेरशाह सूरी की सबसे बड़ी ताकत थी–शासन को व्यक्तिगत इच्छा से हटाकर नियम–आधारित और संस्थागत रूप देना। उसने राज्य को व्यवस्थित रूप से श्सरकारश और श्परगनाश इकाइयों में बाँटा। यह ढाँचा उसने सबसे पहले अपने पैतृक क्षेत्रोंकृबिहारकृमें आजमाया, जहाँ उसकी शुरुआती जीतें हुईं। बाद में बंगाल को उसने 47 श्सरकारोंश में विभाजित किया, और प्रत्येक के ऊपर एक क्षेत्रीय अधिकारीकृजिसे श्बांगला–ए–आलम (या बांगला–ए–आलिम) कहा जाता थाकृनियुक्त किया।

हर स्तर पर अधिकार और जिम्मेदारियाँ बिल्कुल साफ–साफ तय की गईं। इससे एक खास तरह का विकेंद्रीकरण हुआकृस्थानीय स्तर पर उत्तरदायित्व का सिद्धांत लागू हुआ। मिसाल के तौर पर, अगर गाँव में कोई चोरी या अपराध हो जाता और मुकद्दम या पंच उसे पकड़ नहीं पाते, तो सजा उन्हीं पर आती। इस वजह से दूर–दराज के इलाकों में भी अपराध पर काबू पाया गयाकृखासकर दिल्ली के आसपास, जहाँ पहले लूट–पाट और अराजकता आम थी।

यह व्यवस्था दिल्ली की पुरानी प्रशासनिक अस्थिरता का सीधा जवाब थी। शेरशाह ने शासन को राजा की मर्जी से ऊपर उठाकर नियमों पर टिका दियाकृएक ऐसा बदलाव जो बाद के मुगल प्रशासन की नींव बना।

आर्थिक स्थिरता की आधारशिला

शेरशाह ने भूमि मापन और वर्गीकरण को पूरी तरह व्यवस्थित किया। दिल्ली सल्तनत और शुरुआती मुगल काल में राजस्व इकट्ठा करने में जो कमियाँ थींकृउनको दूर करने के लिए उसने कई प्रयोग किए। मुख्य रूप से तीन तरीके अपनाएरू

– उत्पादन के हिसाब से हिस्सा (भाग) लेना,

– बटाई (फसल का हिस्सा),

– और सबसे ज्यादा जोर नगद भुगतान पर।

उसका लक्ष्य था कि ज्यादातर राजस्व नकद में आए–जिससे खजाना मजबूत हो। पट्टा और कबूलियत की व्यवस्था ने पारदर्शिता लाईकृकिसान को पता था कि कितना देना है, और अफसरों की मनमानी कम हुई।

इरफान हबीब के विश्लेषण में यह नीति कृषि अर्थव्यवस्था को मजबूत संरचनात्मक आधार देती है। उन्होंने कहा कि भूमि मापन और नकद–आधारित राजस्व ने दिल्ली के आसपास के कृषि क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाया और राजकोषीय स्थिरता दी।

सड़क और संचार तंत्र

शेरशाह ने दिल्ली को एक बेहतर संचार जाल से जोड़ने के लिए लंबी दूरी की सड़कों का व्यापक नेटवर्क बनवाया। प्रमुख मार्ग बंगाल से पंजाब तक फैलेकृजो उस समय की सबसे बड़ी कमजोरी थी। दिल्ली सल्तनत और शुरुआती मुगल काल में सेना की गतिशीलता, डाक और परिवहन सब ठप रहते थे। शेरशाह ने इसे महसूस किया और सड़कों को साफ–सुथरा, चौड़ा बनवाया। साथ में सराय, कुएँ और छायादार पेड़ लगवाएकृताकि यात्री, सैनिक और व्यापारी आराम से सफर कर सकें।

उसने डाक प्रणाली को रिले तरीके से मजबूत कियाकृएक–एक स्टेशन पर घोड़े तैयार रखे, बेहतर नस्ल के घोड़े इस्तेमाल किए। इससे माल और संदेश तेजी से पहुँचने लगे। नतीजा? दिल्ली व्यापार का बड़ा संगम बन गईकृमाल का आवागमन आसान हुआ, प्रशासनिक नियंत्रण मजबूत हुआ, और शहर का जीवन ज्यादा सक्रिय और संगठित दिखने लगा।

मुद्रा सुधार और व्यापारिक स्थिरता

शेरशाह की सबसे यादगार उपलब्धि थीकृचाँदी के मानकीकृत रुपए का चलन। उसके सिक्के का वजन 178 ग्रेन (लगभग 11.5 ग्राम) था, जिसमें 175 ग्रेन शुद्ध चाँदीकृयानी लगभग 98ः शुद्धता। इससे व्यापारियों का भरोसा बढ़ा, बाजारों में विनिमय आसान हुआ, और आर्थिक लेन–देन नियमित हो गए।

आर्थिक इतिहासकारों के मुताबिक, यह स्थिर मुद्रा प्रणाली ने लंबे समय तक व्यापार को मजबूत आधार दियाकृऔर बाद में मुगलों ने भी इसे अपनाया। दिल्ली के बाजारों में अब मनमानी कम हुई, कीमतें स्थिर रहीं, और व्यापार फला–फूला।

न्याय व्यवस्था और सामाजिक संतुलन

शेरशाह ने न्याय को तेज और अपेक्षाकृत निष्पक्ष बनाने की कोशिश की। स्थानीय स्तर पर न्यायाधीश नियुक्त किए, भ्रष्टाचार पर सख्ती बरती। निजामी के अनुसार, उसकी नीति धार्मिक से ज्यादा व्यावहारिक थीकृवह कट्टर सुन्नी पृष्ठभूमि से था, फिर भी शासन में हिंदू, मुस्लिम और अन्य समुदायों को जगह दी। इससे दिल्ली में सामाजिक तनाव कम हुआ, और संतुलन बना रहा।

शहरी जीवन और बाजार संरचना

दिल्ली के बाजारों को पूरी तरह नियंत्रित और सुव्यवस्थित किया गया। आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित हुई—सड़कों और सराइयों की वजह से बाहरी व्यापारी ज्यादा आने लगे। इससे शहरी वर्ग मजबूत हुएरू व्यापारी, शिल्पकार, परिवहनकर्ताकृसबकी स्थिति सुधरी। ग्रामीण और शहरी इलाकों के बीच संबंध मजबूत होने से उत्पादन और उपभोग में संतुलन आया। नतीजा? दिल्ली का क्षेत्र फल—फूल उठाकृशहरी जीवन में नई ऊर्जा और विकास दिखाई दिया।

सुधारों का कालक्रम

- 1540 ई. — दिल्ली पर कब्जा, शासन शुरू। पुराना किला सुदृढ़ किया और नया किला (शेरगढ़) निर्माण शुरू।
- 1541 ई. — प्रशासनिक पुनर्गठनरू राज्य को सरकार और परगना में बाँटा। बिहार से शुरू, दिल्ली तक लागू।
- 1541दृ1542 ई. — भूमि मापन और राजस्व सुधाररू पट्टा—कबूलियत सिस्टम शुरू, नकद भुगतान पर जोर।
- 1542 ई. — सड़क नेटवर्क का विकासरू ग्रैंड ट्रंक रोड (बंगाल से पंजाब) बनवाया, सराइयाँ और कुएँ लगवाए।
- 1543 ई. — डाक प्रणाली मजबूतरू रिले सिस्टम से संचार तेज, दिल्ली से पूरे साम्राज्य तक।
- 1543—1544 ई. — मुद्रा सुधाररू चाँदी का रुपया मानकीकृत (178 ग्रेन, 98ः शुद्ध), सिक्के छापे।
- 1544 ई. — न्याय व्यवस्थाः स्थानीय न्यायाधीश नियुक्त, भ्रष्टाचार पर सख्ती, सामाजिक संतुलन बनाया।
- 1545 ई. — शेरगढ़ पूरा हुआ, दिल्ली को व्यापारिक और प्रशासनिक केंद्र बनाया। (उसी साल मृत्यु, लेकिन सुधार जारी रहे।)

मुगल प्रशासन पर प्रभाव

1545 में शेरशाह की मृत्यु के साथ सूरी वंश की स्थिरता खत्म हो गई, लेकिन उसकी नीतियाँ नहीं मिटीं। हुमायूँ और खासकर अकबर ने अपने प्रशासन में कई जगहों पर शेरशाह की व्यवस्थाओं को अपनायाकृजैसे राजस्व का पूरा ढाँचा, भूमि मापन और प्रशासनिक इकाइयाँ। टोडरमल द्वारा तैयार राजस्व प्रणाली भी शेरशाह के प्रयोगों का ही विस्तार लगती है—उसने जो मानक तय किए थे, वही आगे चलते रहे।

सतीश चंद्रा के विश्लेषण में यह बात साफ हैरू भूमि मापन, राजस्व निर्धारण और प्रशासनिक संरचना में शेरशाह की छाप इतनी गहरी थी कि मुगल काल में भी ये व्यवस्थाएँ लगभग वैसी ही बनी रहीं। उसने जो दीर्घकालीनआधार रखा, वो बाद के शासकों के लिए तैयार मिट्टी जैसा काम आया।

निष्कर्ष

शेरशाह सूरी का शासनकाल पाँच साल से थोड़ा ज्यादा थाकृसंक्षिप्त, लेकिन दिल्ली के इतिहास में गहरा और संरचनात्मक। राजनीतिक अस्थिरता के बीच उसने प्रशासनिक अनुशासन, आर्थिक स्थिरता और शहरी पुनर्गठन की प्रक्रिया शुरू की। इतिहासकार उसे एक सैन्य विजेता से ज्यादाकृसंस्थागत निर्माता मानते हैं।

उसकी नीतियाँ स्थायी बनीं, पर शासन स्वयं स्थिर नहीं रह सका। जैसे ही उसकी मृत्यु हुई, सूरी वंश में नेतृत्व का अभाव उभरा—कोई ऐसा उत्तराधिकारी नहीं था जो उसकी व्यवस्था को संभाल सके और दिल्ली पर फिर से कब्जा कर सके। फिर भी, उसका योगदान दिल्ली को एक नई दिशा देने वाला साबित हुआकृएक ऐसा आधार, जिस पर मुगल साम्राज्य ने अपनी इमारत खड़ी की।

संदर्भ सूची

प्राथमिक स्रोत

1. अबुल फजल. (1590—1596). आइन—ए—अकबरी. (अनुवादः ब्लोचमैन, एच., 1873). दिल्लीः एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल.
2. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम हिंदूशाह. (1606—1607). तारीख—ए—फरिश्ता. (अनुवादरू ब्रिग्स, जे., 1829). लंदनः लॉन्गमैन.
3. अब्दुल्लाह खान. (लगभग 1550). तारीख—ए—शेरशाही. (संपादनः हबीब, ए., 1940). लखनऊः नवल किशोर प्रेस. द्वितीयक स्रोत
4. चंद्रा, सतीश. (2005). Medieval India: From Sultanat to the Mughals Part 2 & Mughal Empire] 1526—1748). नई दिल्लीः हार—अनंद पब्लिकेशन्स.
5. हबीब, इरफान. (1999). The Agrarian System of Mughal India] 1556—1707 (दूसरा संस्करण). नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. कनुंगो, के. आर. (1921)- Sher Shah and His Times-कलकत्ता: ओरिएंट लॉन्गमैन.
7. जैक्सन, पीटर. (1999). The Delhi Sultanate: A Political and Military History- dSfEczt: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
8. निजामी, खलीक अहमद. (1989). Akbar and Religion-दिल्लीः इदाराह—ए—अदबियात—ए—दिल्ली.

Jatin

Net history 9306553846,

independent scholar vpo dahola,

District- Jind , Haryana

32

CIVIL DEFAMATION AS A TORT IN INDIA: NEED FOR STATUTORY CODIFICATION IN THE DIGITAL AGE

Devashish Yadav

ABSTRACT

Civil defamation as a tort in India is still a subject of common law based on English jurisprudence, where there is no general statute governing civil defamation as a subject of civil wrong. The explosion of digital communication platforms has fundamentally changed the landscape of defamatory publication and created problems to which the current common law framework, which was developed in a world of print media, is ill-equipped to respond. This paper explores the existing state of the law on civil defamation in India, analysing the doctrinal basis of the law, its judicial development and structural limitations. It argues that lack of a dedicated statute exists creates uncertainty over the standard of liability, defence available, quantum of damages and jurisdictional competence especially in the context of online defamation. Through a comparative study of statutory frameworks in the United Kingdom, the United States of America and Australia, the paper provides proof that legislative codification is a more coherent, rights-respecting and technologically adaptive framework that should be used to address the issue of reputational harm in the digital age.

Keywords: *Defamation, Digital, Tort, Intermediary, India*

INTRODUCTION

The law of civil defamation in India is rooted in common law from the English tradition but lacks specific legislation, leading to unpredictability and subjectivity in judgments. This inadequacy is particularly significant in the context of digital communication, where rapid dissemination of information can cause extensive reputational harm. The constitutional implications of this legislative gap are substantial. The defamation law is based on the intersection of two provisions under the constitution which recognize the right to the freedom of expression and speech under 19 (a) (1), and the subsidiary right to freedom of the press under Article 19(1)(b) and the right to reputation, which the Supreme Court has held to be a facet of the right to life and personal liberty under Article 21. Anybody determining a civil wrong through defamation must achieve a constitutionally sustainable balance between conflicting rights. Common law, referencing English precedent, struggles to provide transparency or predictability in this balance. The Supreme Court case "Subramanian Swamy v Union of India" highlights the necessity for legislative intervention, asserting that reputation is a fundamental part of human dignity protected by Article 21.

As of 2023, India has approximately 900 million internet users, making it one of the largest digital markets globally. The rise of social media, online news, instant messaging, and short videos has resulted in the widespread publication and consumption of defamatory material, which current common law, rooted in traditional printed media, struggles to address. The rapid, borderless, and potentially anonymous nature of digital publications necessitates a legislative response that is both principled and practical.

THE BHARATIYA NYAYA SANHITA, 2023: CONTINUITY WITHOUT REFORM

The enactment of the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (BNS) received assent from the President of India on the 25th Georgetown 2023 and came into enactment on 1 July 2024 is the momentous transformation of the Criminal law architecture in India which occurred since the times of the British. The BNS provides the criminal defamation offence under Section 356 which is very similar to Section 499 and 500 of the previous Indian Penal Code. In the context of the major argument of this present paper, the BNS is a monument to legislative missed opportunity: Parliament, given the chance of a lifetime to improve the criminal law through the most consequential occasion to do so in the history of independent India, decided doctrinal continuity rather than meaningful modernisation of the defamation structure and refused wholly to address the gaping civil law vacuum. Section 356(1) of the BNS provides that anyone who makes or publishes in any manner by word spoken or meant to be read, or sign or visible representation any imputation concerning any person intending to injure, or knowing or having reason to believe such imputation will injure, the reputation of such person is said to defame such person. The official definition section 356 BNS, the ten exceptions and the explanations provided below from Section 356 of the IPC are verbatim reproductions of the IPC provision. Sections 501 & 502 of IPC relating to printing and engraving of defamatory matter and its sale by the section has been included as sub-section (2) & (3) of Section 356 BNS. The punishment is still imprisonment for up to two years, fine or both. The offence stands in its non-cognizable, bailable, and compoundable state just as at the time of the British.

CIVIL DEFAMATION AS A TORT IN INDIA: THE

EXISTING LEGAL FRAMEWORK

COMMON LAW FOUNDATIONS

Indian tort law under Indian Law of Civil Defamation is more a result of judicial development rather than legislated law. The courts in India have invariably followed the common law principles that had been developed from the decisions of courts in England, as authorised under the application of justice, equity and good conscience under the laws of the Presidency towns and later on the application of the Civil procedure code 1908. The Supreme Court in Vishwanath Agrawal vs Sarla Vishwanath Agrawal reaffirmed that Indian defamation law is grounded in English common law but adapted to constitutional needs. This ruling maintains doctrinal continuity while hindering legislative updates, suggesting that the current common law framework suffices—a notion increasingly challenged by the digital revolution.

ELEMENTS OF THE TORT

The plaintiff in a defamation action must prove three key elements: the statement was defamatory, it identified the plaintiff, and it was published to at least one third party. An objective test determines if a statement is defamatory, based on whether a reasonable person would view it as damaging to the plaintiff's reputation. Indian courts have over the period of time developed a contextual approach for the meaning of words. In the case of D.P. Choudhary vs Manjulata, the Rajasthan High court stated that a false report in a newspaper that a young lady had eloped with a man amounted to actionable defamation as it caused serious injury to the social reputation of the plaintiff. Similarly, In Radheshyam Tiwari vs Eknath, the Bombay High Court granted damages in a case of false and defamatory allegations published in a local newspaper while in Kiran Bedi vs Committee of Inquiry, the Delhi High Court discussed the issue of qualified privilege in context of government reports. These cases show that Indian courts have evolved a reasonably coherent doctrinal structure for the assertion of defamation claims, but the lack of a statute means that the law is only available to people who know their way through a complex and scattered body of judicial precedent.

DEFENCES

The common law recognizes several defences against civil defamation claims, including truth or justification, fair comment, qualified privilege, absolute privilege, and consent. In India, the defence of justification is valid if the defendant can prove the substantial truth of all material allegations. The fair comment defence applies to honest opinions on public interest matters, provided they are based on true facts. Privilege defences relate to statements made during legislative and judicial proceedings and communications among individuals with a common interest. There is no statutory defence in Indian law similar to the 'serious harm' defence recognized in the UK, nor a codified public interest publication defence. This absence has drawn academic criticism as journalists face Strategic Lawsuits Against Public Participation (SLAPPs) that jeopardize press freedom. In the case of Tata Sons Ltd. vs Greenpeace International, the Delhi High Court relied on Reynolds privilege from English common law, highlighting the inadequacies of the existing legal framework.

DAMAGES AND REMEDIES

The damages regime for civil defamation in India is criticized for its lack of legislative guidelines on the types and amounts of damages that can be awarded. This absence of a statutory framework leads to judicial discretion, resulting in unpredictability and inconsistency in awards. Additionally, the absence of a damages cap, unlike in Australia and previously in the UK, risks imposing excessively large awards that could inhibit expression and impact smaller media entities, bloggers, or individual social media users.

DIGITAL DEFAMATION AND EMERGING CHALLENGES

THE DIGITAL LANDSCAPE IN INDIA

The scale of India's digital transformation demands a fundamental reassessment of how reputational torts are understood and remedied. Social media platforms such as WhatsApp, Facebook, Instagram, X (formerly Twitter), and YouTube command hundreds of millions of active users across India. The rapid growth of digital publishing has democratized content creation but has also led to widespread defamatory communication. Once posted, a defamatory remark can be instantly shared multiple times, each share constituting a new publication and potentially remaining online for years. Traditional common law, particularly the 'multiple publication rule' established in 1849, struggles to address issues of digital defamation, as each share complicates legal recourse. The rule on internet publication imposes an indefinite limitation period, leading to potential perpetual litigation for defendants.

INTERMEDIARY LIABILITY

A particularly acute challenge in the digital context relates to the question of the liability of the intermediary's social media platforms, online news aggregators, search engines and internet service providers. Information Technology Act, 2000 as amended in 2008 grants conditional safe harbour in section 79 to intermediaries from the liability of providing information provided by third parties on the condition that the intermediaries act merely as a channel, and take down information as soon as they receive from the person providing such information is actual knowledge of the unlawful nature. The Supreme Court in Shreya Singhal vs Union of India declared section 66A of the IT Act unconstitutional for being overly broad and vague in criminalizing offensive or threatening messages via communication devices. This landmark decision created a gap in regulating online defamatory speech, leaving victims without clear recourse and courts without legislative guidance on internet defamation, intermediary liability, and jurisdictional competence.

COMPARATIVE ANALYSIS

UNITED KINGDOM: THE DEFAMATION ACT 2013

Among common law jurisdiction, the United Kingdom has the best developed civil defamation statutory regime. Following the scoping studies of the Law Commission and the Libel Reform Campaign, the Defamation Act 2013 brought a number of revolutionary changes that are regarded as the international model of codifying law on libel. Most significantly, the first version of the Act established a threshold of serious harm, where a plaintiff should prove that the publication has already or will seriously damage his or her reputation. For bodies trading for profit, the threshold is elevated: serious financial loss must also be shown. Lachaux vs Independent Print Ltd, it was held by the Supreme Court of the United Kingdom that the threshold was an actual harm, an increase of substantially greater magnitude than that previously in the Act over defamation claims had been imposed.

UNITED STATES OF AMERICA

In the United States, the First Amendment fosters a broad scope of constitutional restrictions against defamation, particularly concerning public figures. The New York Times Co. vs. Sullivan case established the "actual malice" standard, mandating that government officials prove that a defamatory statement was published either with knowledge of its falsity or with reckless disregard for the truth. This elevated standard reflects a constitutional bias of the unfettered, robust and open public discourse and is the speech-protective mode of the jurisdictions examined. In the case of individual persons, as explained in the Gertz vs Robert Welch, Inc. case, the states may come up with their own standards of negligence, but strict liability is forbidden under the First Amendment.The Restatement (Second) of Torts serves as a quasi-codification of defamation law across US jurisdictions, and while it is argument-based, it is not legislation. The Communications Decency Act of 1996, Section 230, provides extensive immunity for online content posted by third parties, contrasting with the conditional protections found in Section 79 of the Indian IT Act. Historically, US defamation standards, particularly the factual malice standard, aim to protect media freedom but may lead to unaddressed reputational harm due to the spread of false information online.

AUSTRALIA: UNIFORM DEFAMATION LAWS AND DIGITAL REFORM

Australia provides what is perhaps the best comparative model for India, as there are structural parallels between India and Australia's legal systems as well as their common law origins and the federal nature of the Indian constitution. Recognising the patchwork of defamation laws across its states and territories, Australia enacted uniform Defamation Acts in all Australian jurisdictions based on Model Defamation Provisions developed by the Standing Committee of Attorneys-General in 2005. These uniform Acts offer a comprehensive statutory framework, codifying the elements of defamation, the defences available as well as the remedies available to plaintiffs in accessible and uniform legislation. In 2020-2021, Australia reformed defamation law by establishing a serious harm threshold, a public interest defence, and updated limitation periods for online content. The changes include a cap on general damages to ensure fair compensation for reputational harm and mandatory concerns notice procedure, improving pre-litigation processes. Additionally, the High Court's decision in Google LLC vs Defteros clarified that search engines may sometimes be viewed as publishers of defamatory material. These reforms may serve as a model for potential changes in India.

CONCLUSION

Civil defamation law in India is at a pivotal

moment due to the impact of the digital revolution, which has introduced challenges like mass defamation and intermediate responsibility that existing common law cannot address effectively. Unlike the UK, US, and Australia, which have adopted statutory frameworks, India's unique constitutional context—balancing freedom of speech under Article 19(1)(a) and the right to reputation under Article 21—calls for a legislative response. A comprehensive Defamation Act that aligns with these constitutional values and considers digital realities is essential. This legislation would benefit various stakeholders, including individuals, journalists, companies, and courts, providing clarity on liabilities and protections in the digital sphere. Such a statute would signal India's commitment to respecting rights in the digital public space, ensuring reputations are safeguarded while balancing freedom of expression with appropriate legal restrictions, making timely legislative action imperative.

References

Cases

- *Chaman Lal v State of Punjab* AIR 1957 SC 415.
- *D P Choudhary v Manjulata* AIR 1997 Raj 170.
- *Duke of Brunswick v Harmer* (1849) 14 QB 185.
- *Gertz v Robert Welch Inc* 418 US 323 (1974).
- *Google LLC v Defteros* [2022] HCA 27.
- *Justice KS Puttaswamy v Union of India* (2017) 10 SCC 1.
- *Lachaux v Independent Print Ltd* [2019] UKSC 27.
- *New York Times Co v Sullivan* 376 US 254 (1964).
- *Radheshyam Tiwari v Eknath* AIR 1985 Bom 285.
- *Ram Jethmalani v Subramaniam Swamy* (2006) 3 SCC 315.
- *Shreya Singhal v Union of India* (2015) 5 SCC 1.
- *Smt Kiran Bedi v Committee of Inquiry* AIR 1989 Del 229.
- *Subramanian Swamy v Union of India* (2016) 7 SCC 221.
- *Tata Sons Ltd v Greenpeace International* (2011) ILR 1 Delhi 33.

Legislation

- Constitution of India, art 19(1)(a).
- Constitution of India, art 21.
- Bengal, Agra and Assam Civil Courts Act 1887, s 37.
- Civil Procedure Code 1908, s 9.
- Information Technology Act 2000, s 79 (as amended by the Information Technology (Amendment) Act 2008).
- Defamation Act 2013 (UK), s 1.**Books**
- Rogers WVH (ed), *Winfield and Jolowicz on Tort* (19th edn, Sweet & Maxwell 2014).

Journal Articles

- Goldman E, 'The Third Wave of Internet Exceptionalism' (2019) 94 *Notre Dame Law Review* 1399.
- Youm KH, 'Defamation Law in India and Freedom of Expression' (2009) 36 *Hastings Communications and Entertainment Law Journal* 1.

Reports and Online Sources

- Internet and Mobile Association of India, *India Internet Report 2023* (IAMAI 2023) https://www.iamai.in/research accessed 4 March 2026.
- Reuters Institute for the Study of Journalism, *Digital News Report 2023* (University of Oxford 2023) https://reutersinstitute.politics.ox.ac.uk/digital-news-report/2023 accessed 4 March 2026.
- Telecom Regulatory Authority of India, *Telecom Subscription Data as on 31 December 2023* (TRAI 2024) https://www.trai.gov.in/sites/default/files/Report_Telecom_Dec2023.pdf accessed 4 March 2026.

Devashish Yadav
Research scholar,
phd, Sushant university,Gurugram

33

R K Narayan's The Man Eater of Malgudi: Classical Roots in Modern Writing.

Pooja Pandey

Abstract

The literature of ancient India helps us to understand Indian culture spiritually and philosophically. It answers important questions about life and morality that are still relevant today. These texts have also influenced Indian art, music, dance, and literature, making them an important part of Indian heritage. Old Indian classical literature explores human emotion, love, and beauty. It is also important today because it gives us a glimpse into the rich cultural and spiritual tradition of India. Indian English literature evolved as a result of introduction of English education in India under colonial rule, and in recent years it has attracted widespread interest both in India and abroad. It is now recognized that Indian English literature is not only a part of Commonwealth literature, but occupies a great significance in the world literature. Today, a number of Indian writers in English have contributed substantially to modern English literature and have won international acclaim and distinction. In this context, the main important writers of Indian writing are R.K. Narayan, Mulk Raj Anand, and Raja Rao, who are also known as the" Trio" in the field of Indian English literature . R. K Narayan's The Man-Eater of Malgudi is considered one of his finest satirical novels because it masterfully combines gentle humor, sharp irony, and mythological allegory to criticize uncontrolled ego, violence, and moral corruption in modern society.

Key Word: Indianness, Culture, Traditions , Human Values , Nature

Introduction

The emergence of Indian literature in a global perspective is a rich and diverse. Indian literature has a deep-rooted heritage dating back thousands of years with influence from various languages, cultures, and religious traditions. From the ancient Vedas to the modern English novels, Indian literature has evolved significantly, shaping and being shaped by the global interaction. This journey highlights how Indian writers have contributed to the world literature using their voice to address universal themes and local complexities.In the novels of R.K. Narayan things simply happens, almost like a weather. As the weather changes automatically without any effort, in the same way the novels of the R.K. Narayan also changes. Nothing is imposed here. On the other hand, the things happens automatically. Mulk Raj Anand, like G.B Shaw is a propagandist. Raja Rao writes with profound philosophy, but R.K. Narayan writes what Walter Pater says "art for art sake". The novels of R.K. Narayan are knowledgeable because they present the Indian society with all its fact of life. It is gracious because it carries artistic flair. Some of the important novels of R. K. Narayan are ,The Dark Room, Mr. Sampath, English Teacher, Bachelor of Arts, The Guide, and The Man-Eater of Malgudi. The conflict between good and evil forms the baseline of Man-eater of Malgudi written by R.K. Narayan in which his views springs automatically. This novel seems to be the mirror image of our life. In this novel, Mr. Narayan has beautifully picturized the truth that" when goodness fails in putting its effect, evil itself digs its grave". The story of this novel rotates around two characters, Natraj and Basu, in which Natraj symbolizes goodness whereas Basu plays an anchor role for devil. In the words of E.M. Forsters "Natraj is a round character and Basu is a flat character".Nataraj was a owner of a printing press and was a simple and honest person and had a wife and a son. His condition was sound from the economic point of view and he had a room in front of his press which he could put on rent, but he never uses to do so because of which people considered him fool. Nataraj says," I welcome friends rather than customers. I am not a fellow who cares for money". R.K. Narayan points out that this world is full of sordid and calculating people. Such people can never understand the emotional and personal relationship. But Nataraj is not like sordid person. On the contrary, he cares for personal relationship and as a result he allowed Basu to live in his house without charging him. Basu was a taxidermist who had negative approach. He killed his guru and now he kills the animals. The irony is that he thinks himself superior to the others. He says, "after all we are civilized human beings, educated and cultured and it

is up to us to prove our superiority to nature". There are some more characters like Sastri, poet, saint, Mathur, Rangi and Kumar. Kumar has an elephant who was adored by people of the Mempi village. People of that village considered elephant as Lord Ganesha, but irony is that Basu decides to shoot the elephant who is the symbol of God. Basu was disliked by the persons of the press of Natraj. Shastri addressed Basu as rakshasa and said "every rakshasa gets swollen with his ego. He thinks he is invincible, beyond every len, but sooner or later something or other will destroy him". Shastri compared Basu to Ravana, Mahishasura, Bhismasura and Daksha. Basu is like Bhismasura, the unconquerable who scorched everything he touched and finally reduced him to ashes by placing the tips of his fingers on his own head. The same thing happens with Basu. Basu had decided to kill the elephant but fortune never favored him. Before executing his plan, he gave a palm on his neck bone in the space of yearning to kill the mosquito sitting there, which resulted in fatality. The monster of the soul killed himself, and Shastri says," yet the universe has survived all the Rakshasas, as that were ever born. Every demon carries within him, unknown to himself, a tiny seed of self-destruction and goes up in thin air at the most unexpected moment".man-eaters indicates about the tiger or the lion, but in the novel of R. K. Narayan, it refers to a man whose name is Vasu, and the irony is that he is a man only by shape and not by form. In fact, he is more dangerous and cruel-hearted than the lion and the tigers. The word man-eater has been used by the novelist in third chapter of the novel. Vasu is seen with the forester. Both of them are presented near Natraj. R. K. Narayan describes Vasu as a different man altogether. As a matter of fact, Vasu was savage and unsophisticated in his behavior. He never maintained courtesy and good manners, but before the forester, he becomes timid and submissive. Here R. K. Narayan says," this man-eater soft-tended, sneered and cawed and tried to be agreeable only in the presence of an official". Actually, the story is related to Indian religious concept that evil forces cannot continue for a long time. If no one will kill them, they for themselves will become instrument in their destruction. R. K. Narayan gives many examples from the Indian mythology and legend to prove his belief, like Vashmasura, Mahishasura. He proved that devilish forces lose their power and identity. Basu is the incarnation of devil. He has no grain of sympathy, pity and cardinal virtue. He is a selfish brute. Profit and profit only is the goal of his life. He can kill any animal in order to get profit and he thinks himself superior to others. The two extremes of human nature have been portrayed by Narayan in the novel one, Nataraj who is courteous towards nature and another one Vasu who destroys and disturbs its existence. “Human beings will have to be sympathetic towards the whole of nature only to be sympathetic towards the human race. The sentiment of this whole affair will have to be understood by them, and in this regard, sentimentality is essential for creating a mentality of preserving nature.Women are always related to nature. In this novel, the character Rangi is brought in parallel to natuin harmony with nature and they should not completely leave out their traditional ideologies. when Natraj's wife saw him talking to Rangi she becomes angry and feels jealous. The behaviour of Mahaouts wife is full of Indianness.

Conclusion

In The Man-Eater of Malgudi, R. K. Narayan presents the universal truth that evil is essentially opposed to life, nature, and faith. Evil makes a person arrogant and blind, leading him to believe that he is the most powerful and invincible. At first, such destructive power may appear attractive and impressive. Nataraj, too, is initially entraptured by Vasu and his strong personality. However, once he realizes the cruelty and destructive nature of Vasu's actions, he begins searching for ways to free himself from his influence. Although evil often seems indestructible in the beginning, goodness ultimately prevails. Narayan illustrates the triumph of good over evil through Vasu's self-destruction and the restoration of peace and harmony in Malgudi.

References:

Iyenger, K.R.S. Indian Writing in English. Delhi:
Sterling Publication, 1983. p.380

Ne Bhaduri, Dhruba. “The Man Eater of Malgudi – A

Metaphysical Novel of R.K.Narayan." International Journal on Studies in English Language and Literature. Vol.2, Issue 11. Nov- 2014.
Mannan, A.K.M. Masudul. "A Critical Study of The Man-Eater of Malgudi from Ecofeminist Perspectives." British Journal of Arts and Humanities. Vol. 3(4). 2015
Narayan, R. K. The Man-Eater of Malgudi. Mysore: Indian Thought Publications. 1994
Sarker, Md. Ali Rayhun. "Ecocritical Analysis of R. K. Narayan's The Man - eater of Malgudi." Global Journal
Plot no -64A
Bari Co-operative
Bokaro Steel City
Jharkhand 827010

Pooja Pandey
Department of English
Visthapit Mahavidyalaya
Balidih, Bokaro

34

HUMOUR AS A WEAPON : STYLE AND NARRATIVE TECHNIQUE OF R.K. NARAYAN'S MR. SAMPATH AND SHASHI THAROOR'S SHOW BUSINESS

Sangeeta Das

Abstract

Humour has long been an integral component of Indian Writing in English, functioning not merely as entertainment but as a subtle instrument of social commentary. This article examines the use of humour as a narrative strategy in R.K. Narayan's *Mr. Sampath* and Shashi Tharoor's *Show Business*. Though separated by generations and differing in thematic concerns, both writers employ wit and satire to expose human follies and societal contradictions. While Narayan's humour is genial and compassionate, Tharoor's is sharper and politically charged. Through a comparative analysis of their narrative techniques, this article demonstrates how humour becomes a literary weapon in shaping reader perception and critiquing illusion, corruption, and moral decay.

Introduction

Indian Writing in English has achieved global recognition and critical acclaim. Over the decades, the English novel in India has evolved significantly in terms of style, theme, and narrative technique. Early writers adopted traditional storytelling methods rooted in cultural ethos, whereas contemporary writers have experimented with irony, satire, symbolism, and metafiction.

Among the notable figures who have effectively used humour in their narratives are R.K. Narayan and Shashi Tharoor. Despite belonging to different literary generations, both writers demonstrate remarkable mastery over humorous technique. However, their objectives and approaches differ considerably.

Narayan and Tharoor: A Generational Contrast

R.K. Narayan represents the first generation of Indian English novelists. His fictional universe reflects traditional Indian society. His style is simple, lucid, and free from overt political engagement. Narayan avoids ideological propaganda and instead focuses on everyday human experiences. His humour is gentle, ironic, and sympathetic. He exposes absurdities in human behaviour without bitterness or anger.

In contrast, Shashi Tharoor belongs to a modern, globalized literary generation. Influenced by multicultural experiences, Tharoor adopts a broader and more complex narrative perspective. His humour carries a sharper edge and often serves a deliberate social and political purpose. Through satire and irony, he critiques corruption, media spectacle, and moral degeneration in contemporary India.

Thus, while Narayan writes to humanize life's absurdities, Tharoor uses humour to challenge societal structures.

Humour in *Mr. Sampath*

In *Mr. Sampath*, humour permeates both character portrayal and situational development. The novel revolves around publishing and filmmaking, creating scope for comic misadventures and farcical confusion.

One of the most humorous episodes occurs during a chaotic film-shooting scene in which Ravi attempts to carry Shanti away. The resulting confusion generates a farcical atmosphere. Narayan's detached narrative tone enhances the comedy. His understated descriptions transform dramatic moments into comic relief.

Narayan employs situational comedy, irony, character eccentricity, and gentle satire. Beneath the humour lies a subtle commentary on illusion versus reality, especially within the artificial world of cinema.

Humour in *Show Business*

In *Show Business*, Tharoor presents a satirical portrait of the Bombay film industry. The protagonist, Ashok Banjara, symbolizes the merging of cinema and politics.

Tharoor's humour is layered and often biting. Symbolic naming, such as Maya (meaning illusion), reinforces the theme of deception. The novel repeatedly questions the boundary between cinematic fiction and political reality.

Tharoor humorously exposes exaggerated film conventions—improbable coincidences, melodramatic revenge plots, and unrealistic character skills. While readers laugh, they also recognize a critique of mass culture and manufactured glamour.

Unlike Narayan's gentle comedy, Tharoor's humour carries clear critical force.

Narrative Technique

Narayan employs a linear and straightforward narrative

style. His humour arises naturally from situations and dialogue.

Tharoor experiments with structure, incorporating dramatic monologues, media commentary, and shifting perspectives. His humour shapes the narrative framework and strengthens thematic depth.

Conclusion

Wit is the strongest common attribute of both writers. Despite differences in tone and intention, both demonstrate that humour can function as a powerful literary weapon.

Narayan's humour humanizes; Tharoor's humour critiques. Together, their works show that laughter can move beyond entertainment and become an instrument of social insight and artistic expression.

Work cited

1. Narayan, R.K. ***Mr.Sampath.*** Madras: Indian Thought Publications, 1956.
2. Tharoor, Shashi. ***Show Business.*** New Delhi: Penguin Books, 1994.
3. Singh, S.M.P.N. Shashi. "Beyond Irony: R.K. Narayan." *The journal of Indian Writing in English.* Vol 21,No. 1.(1993)17-21.
4. Walia, Shelly."Fictional representation of the Past"The Book Review.Volume XXV,No.10.(2021):34-35.

Sangeeta Das
M.Phil (English)
Pondicherry University

Sangeeta Das
C/O - K.G. Das 5 Air Road, Delanipurp/o
Haddonear Dr. Shanmugams Clinicsri Vijaya
Puramandaman And Nicobar Islandspin
744102PHONE... 9679558758/ 7811911284

35

Union Budget 2026 and Higher Education in India: An Analysis of Research Funding, Fellowships and Skill Development Priorities

Dr. Suresh Kumar, Dr. Surender Singh

Abstract

Union Budget 2026 reflects a strategic transformation in India's approach toward higher education financing and research development. While the overall allocation for higher education has increased considerably, funding patterns for research fellowships, innovation schemes, and collaborative programs reveal selective prioritization. This study examines institutional funding trends, research and fellowship allocations, and skill-oriented initiatives such as apprenticeship programs. Using secondary data analysis and policy evaluation methods, the paper highlights strengths, emerging challenges, and policy gaps in the current budget framework. The findings indicate that although infrastructure development and employability-focused schemes have gained momentum, sustainable research growth requires long-term financial commitment and policy coherence. The study concludes by emphasizing the need for integrated funding strategies to strengthen India's academic ecosystem and innovation capacity [1,2,4].

Keywords: Union Budget 2026, Higher Education Policy, Research Funding, Fellowships, Apprenticeship Schemes, Public Finance, India

Introduction: Higher education and research are central pillars of national development. In the contemporary global knowledge economy, countries increasingly rely on universities and research institutions to generate innovation, skilled manpower, and socio-economic progress. India, with its expanding youth population and growing demand for skilled professionals, faces the dual challenge of improving access to higher education and strengthening research capacity.

Union Budget 2026 represents an important policy instrument that reflects government priorities in the education sector [1]. The increased allocation to higher education indicates a positive policy direction, but the distribution of funds across institutions and schemes highlights varying degrees of emphasis on infrastructure, research, and skill development. This paper critically examines the budgetary trends to understand their implications for India's academic and innovation ecosystem.

1. Objectives of the Study

The study has the following objectives:

1. To analyze the overall allocation for higher education in Union Budget 2026.
2. To examine funding patterns for research and fellowship schemes.
3. To evaluate financial support for apprenticeship and skill development initiatives.
4. To identify policy gaps and implementation challenges.
5. To suggest measures for strengthening research and institutional capacity.

2. Research Methodology: -

The present study adopts a descriptive and analytical research design. The methodology is based on secondary data sources and policy document analysis.

2.1 Data Sources

- Data for this study has been collected from the following sources:
- Union Budget 2026 documents published by the Government of India.
- Ministry of Education annual reports.
- Higher education allocation data from reputed education news portals.
- Policy briefs and reports from national and international organizations.

2.2 Research Approach

A qualitative policy analysis approach has been employed to examine trends in budgetary allocation and their implications. Comparative analysis has been used to assess year-on-year changes in institutional and scheme-based funding.

2.3 Analytical Framework

- The study analyzes budget data under three major categories:
- Institutional funding (universities, IITs, NITs, UGC, IIMs)
- Research and fellowship schemes
- Skill development and apprenticeship programs
- This framework helps evaluate whether budget priorities align with national education and innovation goals.

3. Higher Education Allocation in Union Budget 2026

Union Budget 2026 allocated approximately Rs 55,727 crore to the Department of Higher Education, reflecting an increase of over 11 percent compared to the previous year. This rise indicates government commitment toward expanding academic infrastructure and strengthening institutional capacity [1,2].

Table 1: Major Higher Education Allocations in Union Budget 2026

Institution / Scheme Allocation	(Rs Crore)	Percentage Change
Department of Higher Education (Total)	55,727	11.28%
Central Universities	17,440	4.49%
University Grants Commission (UGC)	3,709	11.18%
Indian Institutes of Technology (IITs)	12,123	6.82%
National Institutes of Technology (NITs)	6,260	10.07%
Indian Institutes of Management (IIMs)	292	15.92%

The increased funding is expected to improve academic infrastructure, faculty recruitment, digital learning facilities, and student support services.

1. Research and Fellowship Funding Trends

Despite growth in institutional funding, research-oriented schemes display mixed trends.

1.1 PM Research Fellowship Scheme

The PM Research Fellowship Scheme received approximately Rs 600 crore in Union Budget 2026. This allocation reflects renewed policy focus on encouraging doctoral research and attracting talented students into advanced research programs [1].

1.2 MERITE Scheme

The MERITE scheme recorded a significant increase in allocation, making it one of the most prominently funded research initiatives. This demonstrates government emphasis on research excellence and performance-based funding models [1,5].

1.3 STARS Scheme

Funding for the STARS scheme remained largely stable. While continuity ensures program sustainability, limited expansion may restrict the scheme's broader impact.

1.4 IMPRINT Programme

The IMPRINT programme did not receive fresh allocation for the second consecutive year. This stagnation may negatively affect interdisciplinary and problem-driven research initiatives.

1.5 SPARC Scheme

The SPARC scheme witnessed a modest increase, supporting international academic collaboration [4,5]. However, the limited growth suggests the need for stronger global engagement strategies.

2. Apprenticeship and Skill Development Initiatives

Union Budget 2026 places strong emphasis on skill development and employability. The National Apprenticeship Training Scheme (NATS) received approximately Rs 1,250 crore, reflecting government commitment to industry-integrated learning. This increased allocation aims to enhance workforce readiness, reduce skill mismatch, and strengthen academia-industry partnerships [1,5]. The focus on apprenticeship programs aligns with national priorities related to youth employment, vocational training, and economic productivity.

3. Policy Implications and Challenges

3.1 Positive Outcomes

- Increased institutional funding
- Improved support for technical education
- Strengthened apprenticeship ecosystem
- Renewed focus on doctoral research

3.2 Key Challenges

- Uneven allocation across research schemes
- Limited funding stability for collaborative programs
- Need for performance-based monitoring mechanisms
- Regional disparities in research infrastructure
- These challenges highlight the importance of strategic long-term planning in education financing [3,4,5].

3.3 Recommendations

Based on the analysis, the following measures are suggested:

1. Introduce multi-year funding frameworks for research schemes.
2. Revive interdisciplinary programs such as IMPRINT with enhanced support.
3. Strengthen international research collaboration funding.
4. Promote research capacity building in state and regional universities.
5. Establish transparent evaluation and impact

assessment mechanisms.

Conclusion: -Union Budget 2026 demonstrates a progressive approach toward strengthening higher education infrastructure and skill development programs. However, selective research funding patterns indicate the need for a more balanced and consistent investment strategy. For India to achieve its long-term goals of academic excellence and global research leadership, sustained support for innovation-driven programs and institutional capacity building is essential.

References

1. Government of India. (2026). Union Budget 2026–27: Budget at a glance. Ministry of Finance.
2. Ministry of Education, Government of India. (2026). Annual report on higher education and research initiatives. New Delhi.
3. University Grants Commission. (2025). Higher education statistics and performance indicators. New Delhi.
4. OECD. (2023). Public investment in higher education: Policy perspectives. Paris: OECD Publishing.
5. World Bank. (2024). Education financing and skill development in emerging economies. Washington, DC: World Bank Publications.

Dr. Suresh Kumar
Professor and Head,
Department of Political Science
JVMGRR College, Charkhi Dadri,
Haryana, India
Email: skj01250@gmail.com

Dr. Surender Singh
Assistant Professor
Department of
Political Science
JVMGRR College, Charkhi Dadri,
Haryana, India

36

भारत की प्राचीन ज्ञान परंपराः एक ऐतिहासिक विश्लेषण

Dr. Rashmi

सारांशः–

यह शोध–पत्र भारत की प्राचीन बौद्धिक विरासत का दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा संस्थागत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद में निहित सृष्टि–विमर्श और आध्यात्मिक चिंतन ने उस वैचारिक आधारशिला का निर्माण किया, जिस पर आगे उपनिषदों और शास्त्रीय ग्रंथों ने दार्शनिक परिपक्वता प्रदान की। इस अध्ययन का उद्देश्य यह अन्वेषण करना है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय चिंतन ने ज्ञान को नैतिकता, आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। इस शोध पत्र में प्राचीन शिक्षण–पद्धति, गुरुकुल व्यवस्था तथा उच्च अध्ययन–केंद्रों जैसे नालंदा विश्वविद्यालय की भूमिका का विवेचन किया गया है। साथ ही गणित, खगोल, चिकित्सा और राज्यचिंतन के क्षेत्र में उपलब्धियों का समालोचनात्मक परीक्षण किया गया है। यह शोध पत्र प्रतिपादित करता है कि भारतीय बौद्धिक परंपरा की मूल विशेषताएँकृसमग्र दृष्टिकोण, तर्कप्रधानता और लोकमंगल की भावना समकालीन वैश्विक संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। यह लेख अतीत की बौद्धिक संपदा को वर्तमान विमर्शों से जोड़ने का प्रयास है।

मुख्य शब्दः वेद, उपनिषद, गुरुकुल, गणित, दर्शन, ज्ञान–मीमांसा।

भूमिकाः– भारतीय सभ्यता की बौद्धिक संरचना मानव इतिहास की विशिष्ट उपलब्धियों में गिनी जाती है। इसकी आधारभूमि वैदिक वाङ्मय में निहित है, जहाँ अस्तित्व, प्रकृति और चेतना के मूल प्रश्नों पर गंभीर मनन हुआ। कालांतर में उपनिषदों, दर्शन–प्रणालियों और शास्त्रीय कृतियों ने इस चिंतन को अधिक प्रणालीबद्ध और दार्शनिक आयाम प्रदान किया। प्राचीन काल में अध्ययन की प्रक्रिया केवल बौद्धिक प्रशिक्षण तक सीमित नहीं थी, बल्कि चरित्र–निर्माण, अनुशासन और सामाजिक दायित्व से भी संबद्ध थी। गुरुकुल परंपरा तथा तक्षशिला जैसे शिक्षण–केंद्रों ने इस संरचना को संगठित रूप दिया। यहाँ विविध विषयोंकृदर्शन, चिकित्सा, गणित, व्याकरण और नीति का समन्वित अध्ययन होता था। यह प्रस्तावना शोध के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, अध्ययन की आवश्यकता तथा विषय की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। वर्तमान वैश्विक बौद्धिक परिदृश्य में, जहाँ मूल्य–संकट और ज्ञान–विखंडन की प्रवृत्ति स्पष्ट है,वहाँ प्राचीन भारतीय चिंतन का पुनर्मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है।

उद्देश्य :–

- भारतीय सभ्यता की प्राचीन बौद्धिक परंपरा के उद्भव और ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण करना।
- वैदिक वाङ्मय, विशेषतः ऋग्वेद, तथा उपनिषदों में निहित दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना करना।
- गुरुकुल व्यवस्था एवं उच्च शिक्षण संस्थानों जैसे नालंदा विश्वविद्यालय और तक्षशिला की संरचना तथा उनके वैश्विक प्रभाव का अध्ययन करना।
- गणित, चिकित्सा, राज्यचिंतन और दर्शन के क्षेत्रों में उपलब्ध प्राचीन उपलब्धियों का समालोचनात्मक परीक्षण करना।
- भारतीय बौद्धिक परंपरा की मूल विशेषताओं समग्र दृष्टिकोण, नैतिक अभिमुखता तथा तर्कप्रधानता को समकालीन वैश्विक संदर्भ में पुनर्मूल्यांकित करना।
- अतीत की वैचारिक विरासत और वर्तमान शैक्षिक विमर्श के मध्य अंतर्संबंध स्थापित करना।

अनुसंधान पद्धतिः–

प्रस्तुत शोध गुणात्मक एवं ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। इसमें द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत आधुनिक इतिहासकारों, दार्शनिकों तथा शिक्षा–विचारकों के शोध–ग्रंथों और शोध–पत्रों का समीक्षात्मक परीक्षण किया गया है। अध्ययन में तुलनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिससे विभिन्न कालखंडों में ज्ञान–धाराओं के परिवर्तन एवं निरंतरता को समझा जा सके। इस प्रकार यह अनुसंधान ऐतिहासिक स्रोत–समालोचना एवं वैचारिक विश्लेषण की पद्धति द्वारा विषय की वस्तुनिष्ठ तथा प्रामाणिक प्रस्तुति सुनिश्चित करता है।

भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा :– वैदिक ज्ञान परंपरा भारतीय बौद्धिक चेतना की मूलाधार–शिला है, जिसकी नींव वेदों में निहित है। विशेषतः ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रकृति के तत्वों, देवत्व तथा ब्रह्मांडीय व्यवस्था 'ऋत' पर गहन चिंतन मिलता है। 'नासदीय सूक्त' जैसे मंत्र अस्तित्व के रहस्य, सृष्टि के प्रारंभ और परम सत्य के स्वरूप पर दार्शनिक प्रश्न उठाते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि वैदिक ऋषि केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे गहन दार्शनिक जिज्ञासा से प्रेरित चिंतक थे। अन्य वेदकृयजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में यह ज्ञान अधिक व्यवस्थित और जीवनोपयोगी रूप में विकसित हुआ। यजुर्वेद ने यज्ञीय अनुष्ठानों के माध्यम से सामाजिक और नैतिक व्यवस्था को संगठित किया, सामवेद ने संगीत और उपासना की सांस्कृतिक परंपरा को समृद्ध किया, जबकि अथर्ववेद में औषधि, स्वास्थ्य, गृहस्थ जीवन और लोकविश्वास से संबंधित ज्ञान का विस्तार मिलता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य धर्म, दर्शन, समाज और विज्ञान का समन्वित स्रोत

रहा। उपनिषदों ने वैदिक चिंतन को दार्शनिक परिपक्वता प्रदान की। विशेषतः बृहदारण्यक उपनिषद और छांदोग्य उपनिषद में आत्मा (आत्मन) और ब्रह्म की एकता का सिद्धांत प्रतिपादित हुआ। "अहं ब्रह्मास्मि" और "तत्त्वमसि" जैसे महावाक्य ज्ञान को बाह्य कर्मकांड से हटाकर आत्म–साक्षात्कार और मोक्ष से जोड़ते हैं। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल सूचना प्राप्त करना नहीं, बल्कि अस्तित्व के परम सत्य का अनुभव करना है। इस प्रकार उपनिषदों ने भारतीय दर्शन को आध्यात्मिक गहराई और सार्वभौमिक दृष्टि प्रदान की।

भारतीय दर्शन की षड्दर्शन परंपरा – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त कृ ने ज्ञान की प्रकृति और उसके साधनों का व्यवस्थित विश्लेषण किया। न्याय दर्शन ने प्रमाण–मीमांसा को वैज्ञानिक रूप दिया तथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द को ज्ञान के साधन के रूप में स्वीकार किया। सांख्य दर्शन ने प्रकृति और पुरुष के द्वैत सिद्धांत द्वारा सृष्टि की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की। योग दर्शन ने मानसिक अनुशासन, ध्यान और आत्मसंयम को ज्ञान–प्राप्ति का साधन माना। वेदान्त ने ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को सर्वोच्च सत्य के रूप में स्थापित किया। इस परंपरा को दार्शनिक दृढ़ता प्रदान करने में आदि शंकराचार्य का विशेष योगदान रहा, जिन्होंने अद्वैत वेदान्त को सुसंगठित रूप देकर ज्ञान को मोक्ष का प्रधान साधन माना। प्राचीन भारत में शिक्षा–व्यवस्था भी इस ज्ञान परंपरा का महत्वपूर्ण अंग थी। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा केवल बौद्धिक प्रशिक्षण नहीं, बल्कि जीवन–पद्धति थी, जिसमें अनुशासन, सेवा, नैतिकता और आध्यात्मिक विकास पर बल दिया जाता था। उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्रों में तक्षशिला, नालंदा विश्वविद्यालय तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नालंदा में हजारों विद्यार्थी और आचार्य अध्ययन–अध्यापन में संलग्न थे। यहाँ बौद्ध दर्शन, चिकित्सा, व्याकरण, तर्कशास्त्र और गणित का उच्चस्तरीय अध्ययन होता था। ये संस्थान अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक आदान–प्रदान के केंद्र थे, जहाँ चीन, तिब्बत और अन्य देशों से विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे।

वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में भी भारत की ज्ञान परंपरा अत्यंत समृद्ध रही। गणित और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में आर्यभट्ट ने ग्रहों की गति का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और गणितीय चिंतन को नई दिशा दी। भास्कराचार्य ने 'लीलावती' के माध्यम से गणितीय सिद्धांतों को सरल और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। आयुर्वेद और चिकित्सा के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत का योगदान अद्वितीय है। सुश्रुत की शल्य–चिकित्सा पद्धतियाँ अत्यंत उन्नत थीं, जिससे उन्हें शल्य–चिकित्सा का जनक कहा जाता है। राज्यशास्त्र और अर्थनीति के क्षेत्र में कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में शासन–व्यवस्था, कूटनीति और प्रशासन का सुव्यवस्थित विवेचन मिलता है, जो प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन की परिपक्वता का प्रमाण है।

बौद्ध और जैन ज्ञान परंपराओं ने भी भारतीय बौद्धिक धारा को समृद्ध किया। गौतम बुद्ध ने तर्क, अनुभव और करुणा को ज्ञान का आधार बनाया तथा मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया। बौद्ध विहार शिक्षा के केंद्र बने और ज्ञान का लोकतंत्रीकरण हुआ। जैन परंपरा में महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा और अनेकांतवाद ने सत्य की बहुआयामी व्याख्या प्रस्तुत की, जिससे बौद्धिक सहिष्णुता और संवाद की परंपरा सुदृढ़ हुई।

समग्रतः भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह दर्शन, तर्क, विज्ञान, चिकित्सा, गणित, राजनीति और नैतिकता का समन्वित तंत्र थी। इसकी विशेषता समग्र दृष्टिकोण, संवाद–परंपरा, अनुभव और तर्क का संतुलन तथा लोककल्याण की भावना में निहित है। यही कारण है कि यह परंपरा न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि आज भी मानवता को बौद्धिक गहराई, नैतिक संतुलन और आध्यात्मिक दिशा प्रदान करने में सक्षम है।

प्राचीन भारत की ज्ञान प्रणाली की विशेषताएँः–

प्राचीन भारत की ज्ञान प्रणाली अत्यंत समृद्ध, समन्वित और बहुआयामी थी। यह केवल सैद्धांतिक चिंतन तक सीमित नहीं थी, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र कृ धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाज और नैतिकता को समाहित करती थी। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. समग्र दृष्टिकोण – भारतीय ज्ञान प्रणाली में आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के बीच संतुलन स्थापित किया गया। वेदों और उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा और प्रकृति के संबंध पर चिंतन के साथ–साथ चिकित्सा, कृषि, गणित और खगोलशास्त्र जैसे विषयों का भी विकास हुआ। ज्ञान का उद्देश्य केवल बौद्धिक उन्नति नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास था।

2. अनुभव और तर्क का समन्वय – भारतीय दर्शन में ज्ञान के साधनों (प्रमाणों) की स्पष्ट व्याख्या की गई। न्याय दर्शन ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द को प्रमाण माना। इससे स्पष्ट है कि यहाँ अंधविश्वास नहीं, बल्कि तर्क और अनुभव को महत्व दिया गया।

3. संवाद और शास्त्रार्थ की परंपरा – प्राचीन भारत में प्रश्नोत्तर,

वाद–विवाद और शास्त्रार्थ की सशक्त परंपरा थी। गुरुकुलों और विश्वविद्यालयों में विचारों का स्वतंत्र आदान–प्रदान होता था। विभिन्न दार्शनिक मतकृजैसे वेदान्त, सांख्य, बौद्ध और जैन आपस में संवाद करते हुए विकसित हुए।

4. नैतिकता और लोककल्याण – ज्ञान का अंतिम उद्देश्य लोकमंगल और आत्मकल्याण था। "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसी भावना समाज–हित को सर्वोपरि मानती है। शिक्षा का लक्ष्य केवल जीविका नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण भी था।

5. गुरुकुल एवं विश्वविद्यालय परंपरा – शिक्षा जीवन–पद्धति का अंग थी। तक्षशिला और नालंदा जैसे केंद्रों में विविध विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती थी। यह प्रणाली अनुशासन, सेवा और आत्मसंयम पर आधारित थी।

6. बहुलतावाद और सहिष्णुता – भारतीय ज्ञान प्रणाली में विभिन्न मतों और विचारों को सम्मान मिला। जैनों का अनेकांतवाद और बौद्धों का मध्यम मार्ग इस बौद्धिक उदारता के उदाहरण हैं।

7. वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि – गणित, आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र, ज्योतिष और राज्यशास्त्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। शून्य, दशमलव प्रणाली, शल्य–चिकित्सा और प्रशासनिक नीतियाँ इसकी वैज्ञानिकता को दर्शाती हैं।

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली की वर्तमान प्रासंगिकताः– प्राचीन भारत की बौद्धिक विरासत आज भी समकालीन विश्व के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो रही है। इसकी मूल अवधारणाएँकृसमन्वय, संतुलन, नैतिक चेतना और आत्मानुशासन आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करती हैं। पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में वैदिक चिंतन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद में प्रकृति को दैवीय स्वरूप मानकर उसके संरक्षण का संदेश दिया गया है। यह दृष्टिकोण वर्तमान जलवायु परिवर्तन और संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के दौर में टिकाऊ विकास की अवधारणा को सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह परंपरा प्रेरणास्पद है। प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था में बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ आचरण, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व पर बल दिया जाता था। आज की प्रतिस्पर्धात्मक व्यवस्था में जहाँ केवल व्यावसायिक दक्षता पर ध्यान केंद्रित हो रहा है, वहाँ मूल्य–आधारित शिक्षण की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है। इस संदर्भ में भारतीय दृष्टिकोण संतुलित व्यक्तित्व निर्माण की दिशा दिखाता है। स्वास्थ्य और जीवनशैली के क्षेत्र में योग तथा आयुर्वेद की स्वीकार्यता निरंतर बढ़ रही है। पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग–सूत्र मानसिक शांति और शारीरिक संतुलन के प्रभावी साधन माने जाते हैं। वैश्विक स्तर पर ध्यान, प्राणायाम और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों का प्रसार इस परंपरा की उपयोगिता को प्रमाणित करता है। सामाजिक स्तर पर बहुलतावादी दृष्टिकोण भी अत्यंत प्रासंगिक है। जैन और बौद्ध चिंतन में प्रतिपादित सहिष्णुता, संवाद और मध्यम मार्ग की भावना विविधताओं से भरे समाज में सामंजस्य स्थापित करने में सहायक है। भौतिक उन्नति के साथ उत्पन्न मानसिक तनाव और नैतिक संकट के समय यह विरासत संतुलित एवं मानवीय विकास की दिशा प्रदान करती है। अतः यह धरोहर केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरक आधार है।

निष्कर्षः–

भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा विश्व सभ्यता की एक अनुपम धरोहर है, जिसने मानव चिंतन को गहराई, व्यापकता और नैतिक दिशा प्रदान की। इस परंपरा में तर्क और अनुभूति, अध्यात्म और व्यवहार, विज्ञान और दर्शन का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है। वैदिक दर्शन से लेकर उपनिषदों, दर्शन–शास्त्रों, आयुर्वेद, गणित तथा राज्यशास्त्र तक विकसित यह बौद्धिक धारा मानव जीवन के प्रत्येक आयाम को स्पर्श करती है। इस विरासत की सबसे बड़ी विशेषता इसकी समग्र दृष्टि और सार्वभौमिकता है, जिसने व्यक्ति को आत्मबोध के साथ सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर उन्मुख किया। संवाद, सहिष्णुता और बहुलतावाद की भावना ने विविध विचारधाराओं को स्थान दिया तथा चिंतन की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित किया। आज के परिवर्तित वैश्विक परिदृश्य में, जब मानवता नैतिक संकट, मानसिक तनाव और पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रही है, तब यह प्राचीन बौद्धिक धारा संतुलित, मूल्य–आधारित और मानवीय विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। अतः यह परंपरा केवल ऐतिहासिक स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य के लिए भी प्रेरक प्रकाशस्तंभ है, जो ज्ञान को जीवन–उत्थान का साधन बनाती है।

संदर्भ सूची :–

- चट्टोपाध्याय, डी. पी. (1978). भारतीय दर्शनरू एक लोकप्रिय परिचय, नई दिल्लीः पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।
- दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ. (1922). भारतीय दर्शन का इतिहास (खंड 1दृ5), कैम्ब्रिजरू कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस।
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1953). भारतीय दर्शन (खंड 1–2), नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
- शर्मा, राम शरण. (2005). भारत का प्राचीन अतीत, नई दिल्लीरू ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
- थापर, रोमिला. (2002). प्रारंभिक भारतरू उत्पत्ति से 1300 ई. तक, नई दिल्लीरू पेंगुइन।

- अल्तेकर, ए. एस. (1944). प्राचीन भारत में शिक्षा, वाराणसीरू नंदकिशोर एंड ब्रदर्स।
- काणे, पी. वी. (1930दृ1962). धर्मशास्त्र का इतिहास (खंड 1–5), पुणेः भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।
- पाटिल, डॉ. दीपक. और कन्नूर सतीलाल. (2024). प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा, अथर्व पब्लिकेशन्स।
- श्रीवास्तव. के.सी. (2022). प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, विजनियस पब्लिकेशन्स।
- शुक्ल, रजनीश कुमार शुक्ल. (2021).भारतीय ज्ञानपरंपरा और विचारक, प्रभात पब्लिकेशन्स।

Correspondence Address :

Dr. Rashmi

House No- 4650]

Sector -11, Near Eklavya Stadium]

Jind, Pincode- 126102

Contact No- – 9812532133, 8168726874

Official Address:

Dr. Rashmi

Assistant Professor Of History

Hindu Kanya Mahavidyalaya,

Jind

Contact No- – 9812532133]8168726874

Email – rashmiashok4@gmail-com

37

डॉ० राजश्री कृत 'दिल से खाकी' में व्याप्त वर्तमान पुलिस की मनोव्यथा का यथार्थ चित्रण

अनिता

सारांश

डॉ० राजश्री ने पहले ही प्रयास में वर्ष 1990 में हरियाणा पुलिस सेवा में उप अधीक्षक के रूप में नियुक्ति प्राप्त की। दो वर्ष के प्रशिक्षण के पश्चात् विभिन्न जिलों में तैनात रही। उनकी पहली स्थायी पोस्टिंग रोहतक में उप अधीक्षक के रूप में रही। वर्श 1999 में भारतीय पुलिस सेवा में उनकी प्रोन्नति हुई। इसके बाद विभिन्न उच्च पदों पर कार्यरत रही हैं। वर्तमान समय में वे हरियाणा पुलिस में पुलिस महानिदेशक के पद पर तैनात हैं। इसी पद पर रहते हुए उन्होंने साहित्य की दिशा में भी कदम उठाया। इसी कारण उनकी रचनाओं, काव्य संग्रहों में पुलिस की वर्तमान दशा का यथार्थ चित्रण हुआ है।

'दिल से खाकी' राजश्री कृत खाकी वर्दी के प्रति समर्पण, त्याग और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करने वाली एक मार्मिक पुस्तक है। खाकी सिर्फ वर्दी ही नहीं, बल्कि एक संन्यासी की तरह सब कुछ त्यागकर सेवा करने का जज्बा है। यह पुलिसकर्मी के पीछे छिपे इंसान की कहानी है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि खाकी वर्दी को सजावट का सामान नहीं, बल्कि जिम्मेदारी और त्याग का प्रतीक बताया गया है। इसके साथ–साथ उन्होंने अपने पुलिस सेवा के अनुभवों के आधार पर वर्दी के प्रति सच्चे समर्पण का रेखांकित किया है। यह पुस्तक पुलिस की कठिन दिनचर्या, उनके बलिदान और कर्त्तव्यों के प्रति निश्ठा को दिल से बंया करती है।

'दिल से खाकी' कविता में राजश्री ने स्पश्ट किया है कि खाकी सिर्फ नाम ही नहीं है, यह सभी की भावनाओं का सम्मान करने का नाम भी है। खाकी के ऊपर बहुत सी जिम्मेवारियों का बोझ होता है। खाकी का भी दिल होता है, उसके भी जज्बात होते हैं। लेकिन कभी खाकी किसी को शिकायत नहीं करती, बल्कि यही सभी की रक्षा करती है। बदले में किसी से कुछ भी नहीं लेती है। यही खाकी सभी लोगों का विश्वास है। सभी कुर्बानियों के इतिहास को इसने अपने अंदर समेटा हुआ है। राजश्री के शब्दों में,

''शिकवों की आदत ही नहीं ...
अक्सर कुछ कहना होता है
तो खुद से ही कह लेती है
ये ख़ाकी दुनिया भर का दर्द
अपने आप ही सह लेती है
ख़ाकी का दूसरा नाम है
लोगों का विश्वास
ख़ाकी समेटे हैं
कुर्बानियों का अमिट इतिहास।''[1]

'खाकी–2' के माध्यम से राजश्री ने स्पश्ट किया है कि ये ख़ाकी वर्दी वाले न तो समय पर खाना खा पाते हैं, न ही समय पर सो पाते हैं। हर समय हर जरूरतमंद के मगर साथ होते हैं। सभी इसको हालांकि नफरत की नज़र से देखते हैं, लेकिन ये फिर भी सबको इंसान की नज़र से देखते हैं। आखिरकार होते तो ये भी इंसान भी हैं। चौक–चौराहों पर खड़े होकर भी कभी शिकायत नहीं करते हैं। कभी–कभी तो ये अपने परिवारजनों से भी नहीं मिल पाते, बस मन ही मन उन्हें याद करते रहते हैं। ये हमेशा यही फरियाद करते हैं कि मेरा देश सलामत रहे। एक खाकी पहने इंसान के मन में भी होता है कि वह भी अपनी बूढ़ी माँ से मिले। जब यह सारी दुनिया अपने घरा में चैन की नींद सोती है, तो एक खाकीधारी व्यक्ति ही चौराहों पर मुस्तैद रहकर भीड़ का सामना करता है। राजश्री के शब्दों में,

''सलामत रहे ये मेरा देश,
बस यही फरियाद करती है।
मेरे सीने में भी दिल है, नब्ज़ धड़कती है।
मिल लूँ मैं बूढ़ी माँ से अपनी,
ये कामना भी होती है।
जब सारी दुनिया घर में सोती है,
ये खाकी चौराहों पे मुस्तैद खड़ी होती है।''[2]

'खुशी' कविता के माध्यम से राजश्री ने स्पश्ट किया है कि त्योहारों पर जब छुट्टियाँ नहीं मिलती तो खाकी वालों को भी उदासी होती है। उन्हें भी वहाँ बार्डर पर अपनी माँ–बहन की याद आती है। यादों की बदली अब आँखों में गई है। कहने को तो यूं जीवन में बहुत सौगाते हैं, जीवन में बहुत अच्छे लोग बेशक आते–जाते हैं, खुशियों की कभी भी कभी नहीं होती, पर जो मरहूम हुए उनकी बहुत–बहुत याद आती है। राजश्री के शब्दों में,

''कहने को त्योहार हैं, पर आज उदासी बहुत छाई है।
माँ–बहन दोनों की आज तो याद बहुत आयी हैं,
अब ना पूछे मेरे दिल का हाल कोई
यादों की बदली आँखों में उमड़ आयी है।''[3]

'पुलिस की व्यथा' कविता में राजश्री ने स्पश्ट किया है कि किस तरह लोग कोरोना की महामारी में पुलिस वालों को गालियाँ देते हैं। इसी मनोव्यथा का चित्रण करते हुए वे कहती हैं कि लोगों को घर पर बैठने के लिए कहना, क्या उससे उनका कोई मकसद

हल हो रहा है। क्या सभी लोगों को समझाने में उनके स्वार्थ का हित हो रहा है। इसी के साथ–साथ अपने घर से सड़कों पर आकर ड्यूटी देने में, लोगों की गालियाँ एवं लाठियाँ खाने में, लोगों से सख्ख्ती से बात करने में उन्हें क्या आनंद आ रहा है। ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। हम भी इंसान है, कोई काठ या लोहे के नहीं बने हैं। हमें भी अपनों के बिछुड़ जाने का डर सता रहा है। हमें सुकून मिलता है जब हम अपनी ड्यूटी एवं फ़र्ज सही तरह से निभाते हैं। सेवा, सुरक्षा एवं सहयोग की शपथ जो हमने ली होती है, उसी शपथ को निभाना हमें भी अच्छा लगता है।

''नहीं–नहीं हम नहीं बने हैं लोहे और काठ के,
हमको भी डर लगता है अपनों के बिछुड़ जाने में
सुकून मिलता है बस, अपना इंसानी फ़र्ज और ड्यूटी

भरपूर निभाने में अच्छा लगता है हमको सेवा, सुरक्षा और सहयोग की शपथ निभाने में चैलेंज है यह महामारी, छोड़ो क्या रखा है हमको यूँ आजमाने में।''[4]

'एक सिपाही' कविता के माध्यम से राजश्री ने एक सिपाही की व्यथा का यथार्थ चित्रण किया है। किस तरह से एक माँ अपने पुत्र को अपने पिता से गले लगने के लिए भी रोकती है। ड्यूटी पर जाते पत्नी न जाने क्या–क्या सोचा होगा। बूढ़ी माँ ने भी न जाने क्या–क्या सोचा होगा। कोरोना से बचकर रहना ऐसा ही कहकर अपने बेटे को रोका होगा। बूढ़े बाबा ने भी खिड़की से झांककर बेटे को जाते देखा होगा। रोते हुए अपने पोता–पोती की कहानियों से बहलाया होगा। न जाने कब बाजारों में चहलकदमी होगी। हमें हिम्मत से, हौंसले से इन सबका निपटारा करना होगा। इस प्रकार स्पश्ट है कि कोरोना महामारी के समय पुलिस वालों की अंर्तदशा कैसी थी। कैसे वे अपने परिवारजनों की सुरक्षा के प्रति सचेत रहे तथा हिम्मत एवं बहादुरी के साथ उन सबका सामना किया। राजश्री के शब्दों में,

''जाने इस दौर में क्या–कया सबने भोगा होगा!
बच्चों को पापा को हग करने से माँ ने कैसे–कैसे
ड्यूटी पे जाते देख के पत्नी ने, जाने क्या–क्या सोचा होगा!
दूर से बूढ़ी माँ ने अविरल बहती अश्रु धारा को बहने से रोका होगा
कोरोना से बच के रहना बेटे! ऐसा कहके उसने टीका होगा
बाबा ने भी धुँधली आँखों से खिड़की से जाते देखा होगा।''[5]

राजश्री ने स्पश्ट किया है कि खाकी तो यही चाहती है कि हर चमन में सुंदर फूल खिलें, हर तरफ भाईचारे की लहर फैले। सांझा हो हमारा ये सारा आकाश। साझी हो हमारी गंगा–यमुना की धारा। हर तरफ प्यार की खुशबू फैले। खाकी–खाकीी सब करते हैं, पर उसके अंजाम से सब डरते हैं। खाकी पर इल्ज़ाम तो सब धरते हैं। यदि आप सुरक्षित रहना चाहते हैं तो आपको सीना तान कर बुराइयों से लड़ना होगा और सभी को ख़ाकी को सिर्फ दिल से ख़ाकी बनना होगा।

''खिलें सुंदर फूल हर चमन
फैले हर ओर भाईचारा
साँझा हो हमारा ये विशाल गगन
साँझी हमारी गंगा–यमुना की धारा
फैले प्यार की खुशबू हरसू
महके खुशियों से जहाँ ये सारा

एक बादा, सबको करना होगा
बस दिल से ख़ाकी बनना होगा।''[6]

राजश्री ने स्पश्ट किया है कि पुलिसवालों को वर्तमान समाज कुछ नहीं समझता हू। वे तो हमारे परिवार, गाँव एवं शहर, जिला एवं राज्य अथ्रत् सभी की रक्षा का भार उठाते हैं। फिर भी जब कोई भी हत्याकांड होता है। पुलिसय दोशी को गिरफ्तार करती है, तो उन्हीं पर पत्थर बरसाए जाते हैं। गोलियों से उनका स्वागत किया जाता है। यहाँ तक कि उन्हें माना तथा चाचा कहकर बुलाया जाता है। फिर भी चाहे कितनी ही कठिनाईयों का उन्हें सामना करना पड़े, वे हर फर्ज शिद्दत से निभाते हैं।

''हम पत्थर खाते हैं रोज गाली खाते हैं
कभी मामा, कभी चाचा कहलाते हैं
फिर भी, कितना ही कठिन हो फर्ज़
परवाह नहीं, बड़ी शिद्दत से निभाते हैं।''[7]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में हम कह सकते हैं कि राजश्री जी ने पुलिस की पीड़ा एवं व्यथा का चित्रण 'दिल से ख़ाकी' काव्य संग्रह में किया है। उनका कहना है कि हमें ख़ाकी को दिल से अपनाना चाहिए। ख़ाकी के माध्यम से ही वर्तमान पुलिस सेवा, सहयोग एवं सुरक्षा का दायित्व संभाले हुए है। अपनी निजी आवश्यकताओं को छोड़कर ख़ाकी में लिपटा इंसान देश सेवा के कर्त्तव्य को बखूबी निभाता है। चाहे दिल हो या रात ख़ाकी अपने कर्त्तव्य से कभी पीछे नहीं हटती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 29
2. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 31
3. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 35
4. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 41
5. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 42
6. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 55
7. दिल से ख़ाकी, राजश्री, पृष्ठ संख्या 74

अनिता

Shakti Photo State Near Jat College

Delhi main road Rohtak 124001

38

नागार्जुन की रचनाओं में स्त्री चेतना

रीमा रेणु कन्डुलना

भूमिका

नारी चेतना का मूल अर्थ स्त्री का अपनी पारंपरिक सामाजिक भूमिकाओं माँ, बेटी, पत्नी–से ऊपर उठकर एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में अपनी अस्मिता के प्रति सजग होना है। यह पितृसत्तात्मक मिथकों और शोषणकारी ढांचों को चुनौती देकर अपने अस्तित्व, अधिकारों और निर्णय लेने की स्वतंत्रता को पहचानने की प्रक्रिया है। हिंदी साहित्य के प्रगतिशील कवि और कथाकार नागार्जुन ने स्त्री को देवी के कल्पित सिंहासन से उतारकर मानवी के यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। उनका स्त्री–विमर्श उनके व्यापक जनवादी दृष्टिकोण का ही विस्तार है, जहाँ वे नारी को समाज के सबसे शोषित किंतु सृजनशील वर्ग के रूप में देखते हैं।

नागार्जुन के कालजयी उपन्यास रतिनाथ की चाचीश में मिथिलांचल के रूढ़िवादी समाज में विधवा जीवन की दारुण यंत्रणा और उसके नैसर्गिक अधिकारों का साहसी चित्रण मिलता है। नागार्जुन ने स्पष्ट किया कि विधवा होने से स्त्री की मानवीय इच्छाएँ समाप्त नहीं हो जातीं और समाज का दोहरा चरित्र पुरुष के व्यभिचार पर मौन रहकर स्त्री की विवशता को कलंक मानता है। उनकी कविताओं में स्त्री का सौंदर्य गहनों में नहीं, बल्कि जेठ की दुपहरी में धान रोपते हुए उसके माथे पर चमकती पसीने की बूंदों और उसके श्रम में झलकता है। वे दिखाते हैं कि कैसे सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था में जाति और वर्ग का दोहरा दमन स्त्री की स्थिति को और अधिक दयनीय बना देता है। निष्कर्षतः, नागार्जुन की दृष्टि में नारी मुक्ति का मार्ग केवल सहानुभूति से नहीं, बल्कि उसे आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और पूर्ण मानवीय गरिमा प्रदान करने से ही प्रशस्त होगा।

बीज शब्दः नारी चेतना, अस्मिता–बोध, पितृसत्ता, जनवादी दृष्टिकोण एवं यथार्थवाद

आज की नारी माँ, बहन, बेटी और पत्नी से पहले एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में अपनी पहचान के प्रति सचेत हो रही है। अतः इसे नारी चेतना की संज्ञा दी जाती है। नारी चेतना का अर्थ है। नारी का अपने अस्तित्व व अपनी सत्ता के लिए सजग होना। यह सचेत होने की प्रक्रिया या भावना ही वास्तव में नारी चेतना है।

नारी चेतना से अभिप्राय नारी के अपने अस्तित्व बोध से है। समाज की एक इकाई के रूप में अपने होने के एहसास से ही अस्तित्व की पहचान होती है। किन्तु नारी अस्मिता और उसकी चेतना का प्रश्न केवल अपने होने, अपनी शक्ति और क्षमता की पहचान करने मात्र से नहीं जुड़ा है। नारी को तो अपने व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में अपना आपा पाने के लिए पुरातन स्थापित मिथकों से हर पल जूझना पड़ा है।1

"मिथक ऐसी कल्पनाओं या वस्तु–स्थितियों का जाल होता है, जिसमें स्थापित मूल्यों पर आस्था रखने वाली नारी सहज ही गिरफ्त में आ जाती है। नारी के लिए वास्तविक अनुभव के स्थान पर एक आदर्श स्थापित कर दिया जाता है और इस आदर्श के मिथक में वह जीने के लिए अभिशप्त रहती है।"2

स्त्री चेतना से तात्पर्य स्त्रियों में अपने अस्तित्व, अधिकार, अस्मिता और स्वतंत्रता के प्रति जागरूकता से है। यह अवधारणा स्त्रीवादी आंदोलन और सामाजिक–राजनीतिक चेतना के विकास से जुड़ी हुई है, जिसमें महिलाएं अपने पारंपरिक, शोषणकारी और पितृसत्तात्मक ढांचे को चुनौती देती हैं। नारी चेतना महिलाओं के सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो उन्हें अधिक स्वतंत्र, सशक्त और समान समाज में योगदान करने के सक्षम बनाता है।

चेतन होने का अर्थ ही उत्तरदायी होना है– किसी बाह्य सत्ता के प्रति नहीं, बल्कि अपनी अस्मिता के प्रति उत्तरदायी होना। अपनी चेतना के प्रति उत्तरदायी होना समाज की विकास प्रक्रिया में अपनी भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास है। यही आज की नारी की मांग भी है और नारीवादी आंदोलनों का आधार भी।3

"चेतना की सार्थक बहस कहीं न कहीं मनुष्यत्व की अवधारणा पर जाकर टिक जाती है। मनुष्यत्व की व्याख्या अनेक संदर्भों एवं प्रसंगों से की जा सकती है, लेकिन मनुष्यत्व का केंद्रीय स्वर सर्वस्वीकृत है कि वह अन्य जीव यानी पशु जगत से गहरे अर्थों में भिन्न है। यह भिन्नता चेतना के स्तर पर है और यही उसे प्राणी जगत में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।"4

नागार्जुन हिंदी साहित्य के उन बिरले रचनाकारों में से हैं जिन्होंने जनमानस की पीड़ा को केवल देखा ही नहीं, बल्कि उसे जीकर शब्दों में ढाला है। उनकी रचनाओं में स्त्री चेतना का स्वरूप किसी आधुनिक सिद्धांत की उपज नहीं, बल्कि भारतीय गाँवों की मिट्टी, चूल्हे की धुआँस और पितृसत्तात्मक बेड़ियों के बीच छटपटाती और अंततः विद्रोह करती नारी की वास्तविक पुकार है। नागार्जुन ने स्त्री को देवी के कल्पित और वायवीय सिंहासन से उतारकर मानवी के यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। उनके साहित्य में स्त्री केवल एक भावुक पात्र नहीं है, बल्कि वह खेत–खलिहानों में पसीना बहाने वाली, सामाजिक कुरीतियों को झेलने वाली और अपने अस्तित्व के लिए वर्ग–संघर्ष करने वाली एक सजग इकाई के रूप में

उभरती है। भूमिका के रूप में यह समझना आवश्यक है कि नागार्जुन का स्त्री विमर्श उनके जनवादी दृष्टिकोण का ही विस्तार है, जहाँ वे नारी को समाज के सबसे शोषित और उपेक्षित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में देखते हैं।

नागार्जुन के कथा साहित्य, विशेषकर उनके कालजयी उपन्यास रतिनाथ की चाची को हिंदी में स्त्री विमर्श का एक क्रांतिकारी दस्तावेज माना जाता है। इस उपन्यास में उन्होंने मिथिलांचल के रूढ़िवादी ब्राह्मण समाज में विधवा जीवन की उन दारुण स्थितियों का चित्रण किया है, जिन्हें अक्सर मर्यादा की आड़ में दबा दिया जाता है। चाची का पात्र उन हजारों विधवाओं का प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें पति की मृत्यु के बाद समाज मृतप्राय मान लेता है। नागार्जुन ने यहाँ साहस के साथ यह प्रतिपादित किया कि विधवा होने से स्त्री की स्वाभाविक और नैसर्गिक इच्छाएँ समाप्त नहीं हो जातीं। "चाची का गर्भवती होना समाज के लिए कलंक हो सकता है, लेकिन लेखक की दृष्टि में यह एक जीवंत मनुष्य की देह की पुकार और उसकी अस्मिता का प्रश्न है। उन्होंने दिखाया कि कैसे धर्म के ठेकेदार पुरुष के व्यभिचार पर मौन रहते हैं, लेकिन एक असहाय विधवा की विवशता पर पत्थर बरसाते हैं"5 यहाँ स्त्री चेतना अपने स्व और अपनी देह पर अधिकार की मांग के रूप में प्रकट होती है।

नागार्जुन के कथा साहित्य, विशेषकर उनके कालजयी उपन्यास रतिनाथ की चाची को हिंदी में स्त्री विमर्श का एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु माना जा सकता है। इस उपन्यास में उन्होंने मिथिलांचल के ग्रामीण परिवेश में एक विधवा स्त्री की यंत्रणा, उसकी स्वाभाविक नैसर्गिक इच्छाओं और समाज के दोहरे चरित्र को बड़ी बेबाकी से चित्रित किया है। चाची का पात्र उन हजारों विधवाओं का प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें धर्म और मर्यादा के नाम पर जीवित रहते हुए भी मृत घोषित कर दिया जाता है। नागार्जुन ने यहाँ स्पष्ट किया है कि स्त्री की अस्मिता केवल उसके पति से नहीं जुड़ी है, बल्कि एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में उसकी अपनी शारीरिक और मानसिक आवश्यकताएं भी हैं। उन्होंने विधवा के गर्भवती होने की घटना के माध्यम से समाज की उस कूपमंडूकता पर प्रहार किया है जो पुरुष के व्यभिचार को तो अनदेखा कर देती है, लेकिन स्त्री की विवशता को कलंक मानकर उसे प्रताड़ित करती है।

नागार्जुन की कविताओं में भी स्त्री के प्रति अत्यंत प्रगतिशील और मानवीय दृष्टिकोण झलकता है। सिंदूर तिलकित भाल जैसी कविता में जहाँ वे निर्वासन की पीड़ा के बीच अपनी पत्नी की यादों के माध्यम से गृहस्थ जीवन की पवित्रता और स्त्री के प्रति गहरे अनुराग को व्यक्त करते हैं, वहीं गुलाबी चूड़ियाँ में एक पिता और पुत्री के सूक्ष्म संबंधों के जरिए स्त्री के उस वात्सल्यमयी रूप को दिखाते हैं जो कठोर परिश्रम वाले जीवन में भी रस भर देता है। नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में खेत–खलिहानों में काम करने वाली ग्राम युवतियों और मजदूर स्त्रियों के श्रम को विशेष महत्व दिया है। उनके लिए स्त्री की असली सुंदरता उसके गहनों में नहीं, बल्कि उसके माथे पर चमकती पसीने की बूंदों में है। वे स्त्री को उत्पादन की प्रक्रिया और सामाजिक बदलाव की कड़ी के रूप में देखते हैं।"6

नागार्जुन का विमर्श दलित और शोषित वर्ग की स्त्रियों तक भी विस्तृत है। वे दिखाते हैं कि कैसे जाति और वर्ग का दोहरा दमन स्त्री की स्थिति को और अधिक दयनीय बना देता है। उनकी कविताओं में उपेक्षित और वंचित समाज की स्त्रियाँ अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती नजर आती हैं। नागार्जुन ने जहाँ रूढ़ियों पर प्रहार किया, वहीं स्त्री के भीतर की विद्रोही चेतना को भी स्वर दिया। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल सहने वाली श्अबलाश नहीं है, बल्कि समय पड़ने पर वह व्यवस्था को चुनौती देने वाली शक्ति भी है। उन्होंने पुरुष प्रधान समाज के अहंकार और वर्चस्ववाद को ढहाने के लिए स्त्री की बौद्धिकता और उसके स्वावलंबन पर बल दिया।

नागार्जुन का स्त्री विमर्श जनवादी चेतना से ओत–प्रोत है। उन्होंने स्त्री को लोक के केंद्र में रखा और उसकी समस्याओं को केवल व्यक्तिगत न मानकर व्यापक सामाजिक और आर्थिक ढांचे से जोड़कर देखा। उनकी लेखनी ने स्त्री को रिश्तों की जकड़न से निकालकर एक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया, जहाँ वह अपनी पसंद, नापसंद और निर्णय लेने की क्षमता रखती है। नागार्जुन का साहित्य आज भी हमें यह सीख देता है कि नारी मुक्ति का मार्ग केवल नारों से नहीं, बल्कि उसे श्रम और सम्मान की बराबरी देने से ही प्रशस्त होगा।

नागार्जुन की कविताओं में भी स्त्री के प्रति अत्यंत प्रगतिशील और यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। वे रीतिकालीन कवियों की भांति स्त्री के अंगों के वर्णन के बजाय उसके श्रम के सौंदर्य का गान करते हैं। उनके लिए वह स्त्री अधिक सुंदर और चेतनासंपन्न है जो जेठ की दुपहरी में धान रोप रही है और जिसके माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं। ग्राम युवतियाँ जैसी कविताओं में वे स्त्री को उत्पादन की प्रक्रिया और प्रकृति के साथ जोड़कर देखते हैं, जो उसे उपभोग की वस्तु के बजाय सृजन की शक्ति के रूप में स्थापित करती है। वहीं सिंदूर तिलकित भाल जैसी कविताओं में वे अपनी पत्नी को केवल एक घरेलू स्त्री नहीं, बल्कि अपनी जीवन–यात्रा की सहचरी और

स्मृतियों का आधार मानते हैं। यहाँ स्त्री चेतना पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली और उसे कठिन समय में संबल प्रदान करने वाली प्रेरणा के रूप में चित्रित है।

नागार्जुन ने सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर स्त्री के दोहरे शोषण को बहुत बारीकी से उकेरा है। बलचनमा और नयी पौध जैसी रचनाओं में वे दिखाते हैं कि कैसे जमींदार और सत्तासीन लोग गरीब वर्ग की स्त्रियों को अपनी जागीर समझते थे। यहाँ नागार्जुन की स्त्री चेतना वर्ग चेतना के साथ घुल–मिल जाती है। वे यह संदेश देते हैं कि "जब तक समाज से आर्थिक विषमता और सामंती सोच खत्म नहीं होगी, स्त्री की वास्तविक मुक्ति संभव नहीं है। उनकी रचनाओं की स्त्रियाँ केवल आँसू नहीं बहातीं, बल्कि वे अपनी परिस्थितियों के विरुद्ध मुखर होकर विद्रोह भी करती हैं।"7 वे पितृसत्ता के अहंकार को चुनौती देती हैं और शिक्षा तथा स्वावलंबन के माध्यम से अपनी पहचान गढ़ने का प्रयास करती हैं। नागार्जुन ने बाल–विवाह, अनमेल विवाह और दहेज जैसी कुरीतियों पर अपनी लेखनी से जो प्रहार किए, वे स्त्री को वस्तु समझने वाली मानसिकता के विरुद्ध एक वैचारिक युद्ध थे"। 8

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारी की अस्मिता की रक्षा करना स्त्री मुक्ति की सबसे पहली लड़ाई है, उसे मानव के रूप में स्थापित करने की है। क्या है यह स्त्री – चेतना? जिसने आज स्त्रियों के भीतर इतनी बेचैनी भर दी है। मात्रा होने भर की स्थिति या कुछ और भी। वास्तव में अस्मिता–बोध वह चेतना है जिसने एक स्त्री की भीतर उसकी पहचान, उसकी स्थिति, उसके स्वाभिमान, उसकी नियति को एक नए सिरे से टटोलना शुरू कर दिया है। अब वह चाहती है कि उसका भी एक व्यक्तित्व हो। उस व्यक्तित्व की अपनी पहचान, पसंद–नापसंद हो। उसके पास अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निर्णय की क्षमता और चयन की स्वतंत्रता हो। अपने जीवन से जुड़ी समस्याओं और प्रश्नों को वह नए सिरे से देखना और समझना चाहती हैं। नारी ने समझ लिया है कि उसका भी अस्तित्व और अस्तित्व जनित अनेक संभावनाएं है जिनमें से वह किसी एक संभावना का चयन करने का अधिकार रखती है नारी ही वह चेतनाद शक्ति है जो सृष्टि संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

नागार्जुन का साहित्य एक ऐसी नई मानवी के उदय का उद्घोष है जो अपनी नियति स्वयं तय करने का साहस रखती है। उन्होंने स्त्री को रिश्तों की पारंपरिक जकड़न से निकालकर एक स्वतंत्र और बौद्धिक व्यक्तित्व प्रदान किया। उनके विमर्श का निचोड़ यह है कि नारी मुक्ति का मार्ग केवल सहानुभूति से नहीं, बल्कि उसे आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और निर्णय लेने का समान अधिकार देने से ही प्रशस्त होगा। नागार्जुन ने स्त्री को उसकी पूर्ण मानवीय गरिमा, उसके श्रम और उसकी अस्मिता के साथ प्रतिष्ठित किया, जो आज के समय में भी स्त्री चेतना के संघर्ष के लिए एक सशक्त मशाल का कार्य कर रहा है। उनकी लेखनी ने यह सिद्ध किया कि समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब आधी आबादी को मात्र एक नाम या रिश्ता न मानकर उसे एक पूर्ण मनुष्य के रूप में स्वीकार किया जाए।

संदर्भ सूची

1. प्रकाश अलका, "नारी चेतना के आयाम", लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2007, पृष्ठ संख्या – 13
2. प्रकाश अलका, "नारी चेतना के आयाम", लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2007, पृ.सं. – 13
3. प्रकाश अलका, "नारी चेतना के आयाम", लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2007, पृ.सं. – 13
4. प्रकाश अलका, "नारी चेतना के आयाम", लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2007, पृ.सं. – 13
5. नागार्जुन (1952), रतिनाथ की चाची (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. नागार्जुन (2003), नागार्जुन रचनावली (खण्ड 1 से 7), संपादकः शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। (विशेषकर कविता संग्रहः युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई आँखें)।
7. नागार्जुन (1952), बलचनमा (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. नागार्जुन (1953), नयी पौध (उपन्यास), किताब महल, इलाहाबाद।

रीमा रेणु कन्डुलना
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
रांची विश्वविद्यालय रांची (झारखण्ड)
दूरभाष – 7258971790
ईमेल पता – reemakandulna15@gmail.com
पत्राचार का पता
रीमा रेणु कन्डुलना
मेरी बारला
कोकर खोरहा टोली दुअंबा मैदान – 1
पोस्ट – जी.पी.ओ.
थाना – सदर , रांची
पिन – 834001, झारखंड
मोबाइल नंबर – 7258971790

39

साहित्यिक पत्रकारिता में नंद किशोर पाण्डेय जी का योगदान

डॉ. सुमन राठी, सुमन छापोला

भूमिकाः

साहित्य समाज के दर्पण के रूप में काम करता है। साहित्यिक पत्रकारिता समाज और साहित्य के बीच सेतु का काम करता है। जो समाज की अनेक गतिविधियों को आम लोगों तक पहुँचाने में सक्षम है जिस प्रकार नदी एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँचने में एक सेतु की भूमिका निभाता है। ठीक उसी प्रकार साहित्य रुपी पहले किनारे को समाज रुपी दूसरे किनारे तक पहुँचने में साहित्यिक पत्रकारिता एक सेतु का काम करती है। साहित्य और पत्रकारिता का सम्बन्ध अटूट है, जो साहित्य सम्प्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है जो समाज के साथ सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित मेल बनाए हुए है। साहित्यकार और पत्रकार दोनों ही क्रान्ति के जनक है दोनों ही समाज में हो रही गतिविधियों को लोगों के सामने रखते है। पत्रकारिता समाज के ज्वंलत मुद्दों पर लेख प्रकाशित कर साहित्यकारों को प्रेरित करती है कि वे अपनी लेखनी के माध्यम से समाज सुधार में अपना सहयोग दें। पत्रकारिता और साहित्य दोनों मिलकर जन–जागृति व समाज में परिवर्तन लाने में अपना योगदान देते है। आधुनिक समय डिजिटल पत्रकारिता के दौर में ऑनलाइन व ब्लॉग के माध्यम से भी साहित्यकार सामने आ रहे है। पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले हर क्षेत्र चाहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक सभी शोध आलेखों में पाठक वर्ग व जनसाधारण के लिए प्रेरणा–दायक होते है। साहित्यकार समाज के हर वर्ग को आधार बनाकर अपने साहित्य का सृजन करते है। पत्रकारिता के माध्यम से आज साहित्य जन–जन तक पहुँचकर समाज को साहित्यिक चेतना व नवीन दृष्टिकोण देने में अहम् भूमिका निभाती है। पत्रकारिता व साहित्य में घनिष्ठ संबंध है दोनों की दिशा और दशा एक होते हुए भी उनके कर्त्तव्य व कर्म आपस में मेल नहीं खाते। इन दोनों का अपने कर्तव्यों के प्रति अग्रसर रहना ही इनकी नियति है।

साहित्यिक पत्रकारिता में प्रोफेसर नंद किशोर पाण्डेय जी का योगदानः

बीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के जिस सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना, वैचारिक गंभीरता और बौद्धिक प्रतिबद्धता के साथ नंद किशोर पाण्डेय का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में केवल सूचना–प्रेषण को माध्यम न मानकर सांस्कृतिक विवेक, वैचारिक संवाद, राष्ट्रीय चेतना व भारत बोध के संवाहक रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है। प्रोफेसर नंद किशोर पाण्डेय जी ने साहित्यिक पत्रकारिता को हिंदी साहित्य की वह धारा बनाई, जिसने साहित्य को समाज, राष्ट्र, संस्कृति और समकालीन चेतना के साथ जोड़े रखा है। उन्होंने पत्रकारिता को केवल सूचनाओं और आलोचना तक सीमित न करके उसे विचारों, नैतिक मूल्यों और सामाजिक–सांस्कृतिक विमर्श को नया आकार देने में अपना योगदान दिया है। उनके द्वारा संपादित पत्रिकाओं को बाजाः प्रवृत्तियों से बचाकर भारतीय सांस्कृतिक चेतना, परम्पराओं और आधुनिकता के संवाद पर गंभीर विमर्श का मंच तैयार किया। "बाजार के हाथों नियंत्रित चंद समाचार पत्रो को छोड दे, तो हिंदी पत्रकारिता ने अब भी अपने भाषाई स्वरूप को विखंडित नहीं होने दिया। वैसे भी बाजार से लड़ने के लिए आपको बाजार में उतरना ही होगा। वर्तमान दौर में हिन्दी भाशा ने बाजार की कॉरपोरेट सत्ता को न्यू मीडिया के छोटे–छोटे गैजेट्स से चुनौती देते हुए इस दिशा में अपने कदम बढ़ा दिए हैं। अब हिंदी भारत की सीमाओं के भीतर ही नहीं, बल्कि विश्व में अपनी प्रतिष्ठा के लिए ग्लोबल भाषा के रूप में अपने को विकसित कर चुकी है। भाषा और तकनीक के इस सामंजस्य से हिंदी समाज ने आभासी संसार में भी यथार्थ दुनिया की आवाज को बुलंद कर पाने में सफलता अर्जित की है। आने वाला समय पुनः जनपक्षधरता की पत्रकारिता को जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में देखेगा और हिंदी पत्रकारिता इसका प्रतिनिधित्व करेगी।" [1] प्रोफेसर नंद किशोर पाण्डेय द्वारा संपादित पत्रिका में हिंदी भाषा के बढ़ते प्रभाव को दिखाया गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आज हिंदी एक विकसित व प्रभावशाली भाषा के रूप में स्थापित हो गई है। उनके द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पाठक वर्ग को सोचने के लिए जागरूक करना है। पाण्डेय जी ने भारतीय संस्कृति, परम्पराओं व मूल्यों को सुरक्षित रखकर हिन्दी साहित्यिक पत्रिकाओ के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाने का अतुलनीय योगदान दिया। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में राष्ट्रीय चेतना को केवल भौगोलिक सीमा में बाँधकर नहीं रखा अपितु राष्ट्र को संस्कृति व भाषा के साथ–साथ लोक जीवन व ऐतिहासिकता के समन्वय रूप दिखाया। उनका मानना है किसी देश की राष्ट्रीय चेतना उसकी सांस्कृतिक व मूल्यों में निहित होती है, जिसने भिन्न–भिन्न परिस्थितियों व कालों में स्वयं को जीवित रखा है।

"किसी भी देश की माटी को प्रणम्य बनाने और कालखंड को अमरता प्रदान करने में साहित्यकार की अहम भूमिका होती है।" डॉ राम प्रसाद किचलू के शब्द है "यदि कोई कवि या साहित्यकार अपने साहित्य में देश के गौरव तथा उसकी सांस्कृतिक एवं

सामाजिक चेतना को जगाने का कार्य करता है, तो वह राष्ट्रीय ही है। वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना की समग्रता के लिए राष्ट्रीय भावात्मक एकता आवश्यक है।" [2]

नंद किशोर पाण्डेय जी की राष्ट्रीय चेतना उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक उत्तरदायित्व व भाषायी संवेदनशीलता के साथ निर्मित हुआा जिसके चलते उन्होंने हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता व भारतीय सांस्कृतिक चिंतन के क्षेत्र में अपना अद्वितीय योगदान दिया।

इनकी संपादकीय नीति व दृष्टि में विषय–वैविध्य और संतुलन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उन्होंने हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता को सांस्कृतिक गहराई, गंभीरता व शोधपरक गरिमा प्रदान करते हुए एक वैचारिक आन्दोलन के रूप में सांस्कृतिक उदारता और नई मानवीय दृष्टि को जोड़ने में अहम भूमिका निभाई।

उन्होने भारतीय संस्कृति की निरन्तरता के साथ–साथ राष्ट्रीय अस्थिता को भी ध्यान में रखा। उन्होंने भारतीय जीवन का मूल उद्भव लोक संस्कृति को माना है। लोक संस्कृति किसी क्षेत्र की परम्पराओं, रीति–रिवाजो और जनसाधारण की जीवन–शैली पर आधारित होती है।

"भारतीय जीवन के अनन्त स्त्रोतों मूल उद्गम लोक–संस्कृति ही है। संस्कृति शब्द बहुत ही व्यापक और गम्भीर अर्थ का बोधक है। भारतीय संस्कृति का संस्कार लोक संस्कृति द्वारा ही हुआ है। यह लोक–संस्कृति अपने प्रकृत रूप में आज भी हमारे ग्रामों, वनों और पर्वतों में प्रकृति की छाया में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए हैं।" [3]

लोक संस्कृति में सामूहिकता, सहअस्तित्व और नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ करती है। यह संस्कृति जनजातियों, स्थानीय समुदाय और ग्रामीण–जीवन से निर्मित होती है। ये हमें पीढ़ी–दर–पीढ़ी परम्पराओं व संस्कारो से संचरित होती आई है। "संस्कृति आदि काल से उपार्जित संस्कारों एवं परम्पराओं का संस्कारित रूप होती है जिसके अपने कुछ आदर्श एवं जीवन मूल्य होते हैं तथा जो अपनी समग्रता मे लोक कल्याणकारी होती है। मानव समाज को उत्तम जीवन जीने की प्रेरणा अपनी संस्कृति से प्राप्त होती है। इसीलिये संस्कृति को उच्चतम मानवीय गुणों का बीजरूप भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में प्रो. उमेश चन्द मिश्र लिखते है, 'संस्कृति किसी समाज या राष्ट्र की अन्तरात्मा की मूक वाणी है, स्पष्ट दर्पण है, जिसमें किसी राष्ट्र का गौरवमय अतीत, गुण, उच्चादर्श एवं जीवन मूल्य प्रतिबिम्बित होते है।" [4]

भारतीय लोक संस्कृति भावी पीढी के लिए एक सांस्कृतिक धरोहर है जिससे उन्हे जीवन जीने के लिए समग्र पद्धति के रुप में विरासत में मिली है। भारतीय संस्कृति हर व्यक्ति को प्रेम, मानवता, सहिष्णुता और नैतिकता जैसे

मानवीय मूल्यों का संदेश देती है। प्रोफेसर नंद किशोर पाण्डेय द्वारा संपादित पत्रिकाओं में हमें समसामयिक सामाजिक मुद्दों जैसे भाषा–नीति, शिक्षा, सामाजिक विसंगतियो, नैतिक मूल्यों और मूल्यहीनता पर शोध–आलेखों को प्रकाशित किया है– "समकालीन परिवेश की यह संवेदना मन को आंदोलित करती है। राष्ट्रीय प्रेम की करूण त्रासदी को राजस्थान की कवयित्रीयों ने अपनी पूरी संवेदन अस्मिता से सहज अभिव्यक्ति दी है। आजकल पूरा विश्व आतंकवाद से पीड़ित, शोषण, दहेज की मार से पीड़ित नारियों की दुर्दशा के सम्बन्ध में जो अखबार पढने को मिलता है, उस सम्बन्ध में कवयित्रियों ने अपने काव्यों में मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है, जो हमारे हृदय को गहराई तक स्पर्श करता है।" [5]

आधुनिक युग में पाश्चात्य सभ्यता का रंग आज की युवा पीढी पर पूर्ण रूप से चढ़ चुका है। आज मनुष्य अपनी पहचान खो चुका है जिसके चलते संस्कृति व मानवीय मूल्यों का नाश होता जा रहा है। सदाचरण, आचरणहीन और आवरणों सज्जित है संस्कृति और सभ्यता इस आधुनिक युग से लज्जित है।

आज मनुष्य के जीवन में दिखावटी और बाहरी सजावट ने जगह बना ली है जिसके कारण अपनी सच्ची शोभा, विनम्रता, चरित्रता और नैतिकता को पीछे छोड़ दिया। प्रो. नंद किशोर पाण्डेय द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं में विषयों में वैविध्यता देखने को मिलती है। इन्होंने अपनी साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से हर विषय पर नवीन दृष्टि प्रदान की। उन्होंने साहित्यिक पत्रिका को सिनेमा और साहित्य के परस्पर सम्बन्धो को दृष्टिगोचर किया। उन्होंने साहित्य को आधार मानकर सिनेमा का मूल्यांकन जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया– "फिल्मकारों ने साहित्यिक कृत्तियों को लेकर फिल्में बनाने की कोशिश की, जिनमें कुछ सफल तो कुछ विफल साबित हुई। ऐसा प्रयास हॉलीवुड और बॉलीवुड दोनों में ही हुआ। फिल्मकारों ने फिल्में बनाने के लिए कहानियाँ और उपन्यासो को लेकर उनका नाट्य रुपांतरण कर मंचन करने का प्रयास किया। देवेन्द्र राज अंकुर ने कहानी का रंगमंच खड़ा करने की सफल कोशिश की है। श्री लाल शुक्ल के कालजयी उपन्यास 'राग दरबारी' का भी मंचन किया गया। लेकिन यह हमारा लक्ष्य साहित्यिक कृत्तियों पर बनी फिल्मों का विवेचन है, क्योंकि सिनेमा आज हमारा प्रतिनिधि और लोकप्रिय लोककला का रुप बन गया है।" [6]

निष्कर्ष:

इनकी संपादित पत्रिकाओं में हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में रचनात्मक अभिव्यक्ति के साथ साथ वैचारिक, भारतीय सांस्कृतिक व शोधपरक विमर्श को केन्द्र में रखा। उन्होंने परम्परा आधुनिकता के बीच में पत्रिकाओं के माध्यम से एक संवाद सेतु का निर्माण किया। उनकी पत्रिकाओं में आलोचनात्मक व शोधपरक आलेखों को प्रोत्साहन दिया गया ताकि प्रामाणिक व तार्किक संदर्भों का मनन करते हुए अकादमी अनुशासन को महत्त्व दिया जा सके। साहित्यिक पत्रिकाओं में पाण्डेय जी ने नवोदित रचनाकारों को नवीन मंच प्रदान किया। उन्होंने शोधकर्ताओं व युवा लेखकों को प्रोत्साहन देते हुए साहित्यिक पत्रकारिता में संवाद को व्यापक रूप देते हुए नई ऊर्जा व नवीन दृष्टि का संचार किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. संवाद पथ जनवरी–मार्च, 2017, पृष्ठ 142।
2. हिन्दी अनुशीलन दिसम्बर–2020, अंक 4, पृष्ठ 72।
3. हिन्दी अनुशीलन, जनवरी–जून, 2017, सयुक्तांक 1–2, पृष्ठ 161।
4. हिन्दी अनुशीलन, दिसम्बर–2020, अंक–4, पृष्ठ 118।
5. हिन्दी अनुशीलन, दिसम्बर–2020, अंक–4, पृष्ठ 57।
6. हिन्दी अनुशीलन, जुलाई–दिसम्बर, 2017, पृष्ठ 220।

शोध निर्देशिका
डॉ. सुमन राठी
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विष्वविद्यालय,
अस्थल बोहर, रोहतक
हरियाणा 124001

शोधार्थी
सुमन छापोला

40

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में भारतीय समाज के बदलते आयाम

डॉ0 सबा रईस

भूमिकाः

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों से तात्पर्य है –स्वतंत्रता के बाद लिखी गयीं कहानियाँ। स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनजीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ रहे थे। स्वतंत्रता के बाद कहानी में भी उसी बदले हुए समाज का चित्रण किया जाने लगा। स्वातंत्रयोत्तर कहानियाँ विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पूर्ववर्ती कहानियों से भिन्न हैं। पुरानी कहानी की अपेक्षा इस काल की कहानियाँ पूर्वग्रह से भी मुक्त हैं। इस काल की कहानियाँ विभिन्न वादों जैसे समाजवाद, नैतिकतावाद, रूमानियत तथा मनोवोश्लेषणवाद के चश्मे से संसार को न देखकर सामान्य जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास करती हैं। इस युग की कहानियों में बिना किसी लाग लपेट के जीवन के कटु सत्य को प्रस्तुत किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज की मानसिकता में बदलाव आ रहा था। अब तक प्रजातांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में जो आदर्श, कल्पनाएं की जाती थीं, वे अब बेकार साबित हो रही थीं तथा जिन्दगी की कड़वी सच्चाईयों से मनुष्य का परिचय हो रहा था। भूख, अशिक्षा, गरीबी जैसी समस्याएं मुंह खोले खड़ी थीं, जिससे आम जन–जीवन बुरी तरह प्रभावित हो रहा था। इन समस्याओं की गंभीरता को देखते हुए स्वतंत्रयोत्तर कहानीकारों ने इनको अपनी कहानियों में उठाया। इस काल की कहानियों को १९५५–५६ के आसपास नई कविता की तर्ज पर नई कहानी कहा जाने लगा। इन कहानियों में केवल साहित्यकार की कोरी कल्पनाएं ही नहीं थी बल्कि जीवन के यथार्थ को ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया था। मानव जीवन से जुड़े अनेक पक्षों को इसमें उठाया गया, इसी कारण इस युग की कहानियों में विषय विविधता बहुत अधिक दिखाई देती है। कुछ महत्वपूर्ण विषय जिनके आधार पर स्वातंत्रयोत्तर कहानी लेखन में सामाजिकता को देखा जा सकता है, उनमें प्रमुख हैं–

- नगरीय जीवन की कहानियाँ
- ग्रामीण जीवन की कहानियाँ
- मानव जीवन के खुले यथार्थ का चित्रण करने वाली कहानियाँ
- यौन वर्जनाओं, कुंठाओं आदि को चित्रित करने वाली कहानियाँ
- व्यवस्था पर व्यंग्य प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ

नगरीय जीवन से जुड़ी कहानियों में मुख्यतः नगरीय जीवन की नारकीय स्थिति का चित्रण हुआ है। साथ ही उन स्थितियों का चित्रण भी हुआ है जो कि पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय समाज में नवीन मूल्यों और प्रवृतियों को जन्म दे रही थीं। आधुनिक मूल्यों ने भारतीय परिवेश में अकेलेपन और रिक्तता की अनुभूति तथा युगीन संक्रमण को जन्म दिय। मनुष्य में स्वार्थ, ईर्ष्या, लालच आदि दुर्गुणों का समावेश हुआ। जीवन में कृत्रिमता बढ़ी। इन सारी स्थितियों को मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, अमरकान्त जैसे कहानीकारों की कहानियों में देखा जा सकता है। ग्रामीण जीवन को प्रकट करने वाली कहानियों में ग्रामीण परिवेश और संस्कृति के प्रति मोह दिखाई देता है। इस धारा में प्रमुख रूप से रेणु, नागार्जुन, शिवप्रसाद, मार्कण्डेय आदि कहानीकारों को रखा जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी आम आदमी की कहानी है। आम आदमी के संघर्षों और उसके जीवन के उतार चढ़ावों की दास्तान। इस युग की कहानियों में मानव जीवन की त्रासदियों को भी वर्णित किया गया है। नई कहानी का मुख्य विषय कोई विशिष्ठ मानव न होकर लघु मानव था। इस युग के कहानीकारों ने छोटे–छोटे वर्गों से जुड़े मामूली व्यवसाय करने वाले विभिन्न व्यसनों से ग्रसित मानव का चित्रण किया है। इसी कारण इन कहानियों के पात्र मुख्यतः गाँवों, शहरों और कस्बों में रहने वाला संघर्षरत आम आदमी ही था। परिणामस्वरूप आवश्यकताओं और जीवन के लिये संघर्षरत मानव और मानव समूह की कुंठाओं, पीड़ाओं का वर्णन इस युग की कहानियों में खुलकर हुआ है। पैसे के पीछे भागती हुई दुनिया में मूल्यहीनता की स्थिति और टूटती बिखरती हुई मानवता का वर्णन यहाँ अपनी समग्रता में दिखाई देता है। नई कहानी के कथाकार मानव जीवन की इसी पीड़ा, अन्तर्द्वन्द्व और संघर्षों को प्रस्तुत करते हैं जैसे– मोहन राकेश की 'मिस पाल' अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक' राजेन्द्र यादव की 'किनारे से किनारे तक' तथा कृष्णा सोबती की 'यारों के यार' आदि।

इस युग के कहानीकारों ने नारी को एक पूर्ण मानव का दर्जा देते हुए उसे अपने लेखन में जगह दी इसी कारण नवीन परिवर्तनों और नवीन विचारों से युक्त नारी इस काल की कहानियों में प्रमुखता से दिखाई देती है। यह तो सच है कि साहित्य के प्रारंभ से ही स्त्री पात्र लेखकों के रचनाकर्म में स्थान पाते रहे थे, परंतु यह अपने परंपरागत रूप में प्राचीन मूल्यों और पितृसत्ता का बोझा ढोते हुए अधिक दिखाई देते थे। आधुनिक युग में नारियों ने सामाजिक मर्यादाओं और मान्यताओं का चोला उतार कर फेंक दिया और जीवन के हर क्षेत्र में स्वयं को एक पूर्ण मानव के रूप में पुरुष के बरक्स प्रस्तुत करने का प्रयास किया। नारी जीवन की यह सच्चाई नई कहानी में भी बखूबी दिखाई देती है। इस युग की कहानियाँ नारी की दुविधाओं, कुंठाओं, अतृप्त यौन आकाँक्षाओं और अचेत

मानसिक ग्रंथियों का दस्तावेज नजर आती हैं। नए कहानीकारों ने जीवन की दौड़ में खंडित हो रही मान्यताओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर परखने का प्रयास किया और पारिवारिक विसंगतियों से उभर रही काम इच्छाओं को व्यापक तौर पर प्रस्तुत किया। जिससे स्त्री जीवन से जुड़े विकृत पहलू जैसे विद्रोह की पुकार, घुटन, भय, विकृत सेक्स आदि प्रकाश में आये। नारी के इस उन्मुक्त चित्रण ने कहानियों में यौन कुंठाओं, दमित वासनाओं, कामोत्तेजक बिम्बों और अतृप्त आकाँक्षाओं की कुशल अभिव्यक्ति की।

पुरूषों के साथ–साथ स्त्री लेखिकाओं ने भी इन विषयों पर लिखकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। कृष्णा सोबती की कहानियों में स्त्री जीवन से जुड़ी स्त्री मन की बहुत सी ऐसी इच्छाएं प्रकट हुई हैं जो अब तक परंपरागत समाज में दबी पड़ी रही थीं। मृदुला गर्ग सरीखी लेखिकाओं ने स्त्रियों के जीवन से जुड़ी यौन इच्छाओं और दमित वर्जनाओं को खूब उभारा। मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में स्त्रियों के मन में जागने वाली विभिन्न शंकाओं, समस्याओं और ग्रंथियों का वर्णन किया। इसके साथ ही राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर और मोहन राकेश आदि कहानीकारों ने अपनी कहानियों में स्त्री मन की गाँठे खोलने का प्रयास किया। और परंपरा से हटकर आधुनिक चेतना से युक्त उन्मुक्त स्त्री का चित्रण किया।

परंपरागत विद्रोही होने की वजह से इस युग के कहानीकारों ने विद्रोह और व्यंग्य को अत्यधिक महत्व दिया। "नयी कहानी के केन्द्र में बदलाव की प्रक्रिया का प्रमुख कारण परिवर्तित जीवन दृष्टि ही है, जिसके बदलने से कहानी का परिदृश्य बदला है पुराने लेखक का रास्ता साहित्य से जीवन की ओर बढ़ा, पर नयी कहानी में इस रास्ते को बदला है और अब यह रास्ता साहित्य से जिन्दगी की ओर है।" आज का कहानीकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर पुरानी मान्यताओं से इतर किसी भी विषय की सार्थकता निरर्थकता को देखते हुए चीजों के अर्थ तलाशने का प्रयास कर रहा है। नयी कहानी के माध्यम से कथाकारों ने जिस सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विसंगतियों को साहित्य में उकेरा था उसी को आगे बढ़ाते हुए अगली पीढ़ी के कथाकारों ने नयी कहानी का विस्तार सचेतन कहानी, अकहानी, सहज कहानी, समानांतर कहानी एवं साठोत्तरी कहानी, जनवादी कहानी आदि में किया।

अकहानी आंदोलन के प्रमुख कहानीकार ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, कृष्ण बलदेव वैद्य, श्रीकांतवर्मा, दूधनाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल आदि हैं। अकहानी आंदोलन में मुख्यतः विद्रोह का स्वर प्रमुख रूप से उभरा। शिल्प के स्तर पर इन कहानियों में नवीन प्रयोग किये गये। इस आंदोलन में मुख्यतः दूधनाथ सिंह की 'रीछ', ज्ञानरंजन की 'छलांग' कृष्ण बलदेव वैद्य की 'त्रिकोण' तथा गंगाप्रसाद विमल की 'विध्वंस' आदि प्रमुख है। अकहानी आंदोलन में भी सामाजिक समस्याओं को विषय बनाकर कहानीकारों द्वारा रचनाकर्म किया गया परंतु यौन संदर्भों की प्रमुखता के कारण इसमें बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। सेक्स केन्द्रित होने के कारण इस आंदोलन की दीर्घ जीविता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

सहज कहानी का मूल तत्व उसके कथारस में निहित था। सहज कहानी आंदोलन में कहानीकारों ने उस कथारस को बचाने का प्रयास किया जो विभिन्न कहानी आंदोलनों की विशेषताओं के कारण कहानी से गायब हो गया था। सहज कहानी के प्रवक्ता अमृतराय थे। वे मानते थे कि कहानी संबंधी प्रयोग इस कथारस को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। सहज की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा कि जो आडम्बरहीन हो, ओढ़ा हुआ न हो, वह सहज है। अमृतराय सहज कहानी के प्रथम और अन्तिम प्रवक्ता रहे। अन्य रचनाकारों ने इस आंदोलन का अधिक समर्थन नहीं किया। सचेतन कहानी आंदोलन में सचेतन दृष्टि को एक गतिशील स्थिति माना जाता है, जोकि हमारे सक्रिय जीवन बोध पर निर्भर है। सचेतन कहानीकारों ने समाज और व्यक्ति के ऊपरी संबंधों पर नहीं बल्कि आंतरिक संबंधों पर भी विश्लेषण किया। सचेतन कहानी के प्रमुख कहानीकार महीप सिंह है। वे मानते है कि सचेतन दृष्टि व्यक्तिपरक न होकर समाजपरक तथा संतुलित और सामयिक होनी चाहिये। सातवें दशक में जिन कथाकारों की कहानियों में सामाजिकता दिखाई देती है उनमें प्रमुख कहानियाँ हैं– रामदरश मिश्र की 'सीमा' बलदेव वंशी की 'एक खुला आकाश' महीप सिंह की 'युद्धमन' वेद राही की 'दरार' शैलेश मटियानी की 'उसने नहीं कहा था' रामकुमार भ्रमर की 'गिरीस्तान' तथा हिमांशु जोशी की 'चीलें' आदि।

समान्तर कहानी अपने समय के समान्तर सोच रखती है। इस आंदोलन के केन्द्र में समाज की सबसे प्रमुख इकाई आम आदमी रहा है। इसलिये इस दौर की कहानियाँ आम आदमी की लड़ाई की पक्षधर रही हैं। इस युग के रचनाकार केवल आम आदमी के संघर्ष के दृष्टा नहीं हैं वरन संघर्ष के प्रति समर्पित होकर, संघर्ष में भागीदार भी बनना चाहते हैं। समान्तर कहानी से जुड़े कहानीकार में सबसे प्रमुख नाम कमलेश्वर का है। साथ ही इब्राहीम शरीफ, कामतानाथ, मिथिलेश्वर, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, हिमांशु जोशी आदि भी प्रमुख रहे हैं।

जनवादी कहानी का प्रारंभ साहित्य में आ रहे विभिन्न मार्क्सवादी प्रभावों के फलस्वरूप हुआ। आजाद भारत में कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी, लेनिनवादी) की स्थापना के साथ ही मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार होना आरंभ हो गया था। चारू मजूमदार के नेतृत्व में किया गया आंदोलन किसानों, मजदूरों और निम्नवर्ग में चेतना बढ़ाने का काम कर रहा था। जिसका भारतीय समाज और राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। ऐसी ही विचारधाराओं का अविर्भाव साहित्य में भी होने लगा था, क्योंकि साहित्य कभी भी समाज से निरपेक्ष होकर नहीं रह सकता। कहानी साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है, इस कारण कहानी का इस ओर झुकना स्वाभाविक था। जिसके परिणामस्वरूप जनवादी कहानी आंदोलन प्रारंभ हुआ। जनवादी कहानी के बारे में बताते हुए यदुनाथ सिंह कहते हैं– "दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह आदि ने अपनी कहानी में व्यवस्था द्वारा विकृत बना दिये गये मानवीय संबंधों और स्थितियों की कुत्सित वास्तविकता को बेनकाब करते हुए तीव्र असहिष्णुता और असहमति जाहिर की और निर्भय भाषिक संरचना तथा व्यंग्य द्वारा दहशत पैदा करने वाले रूप में उन्हें प्रस्तुत किया। इसकी कहानियों में संबंधों तथा स्थितियों की अमानवीयता तथा वीभत्सता का बेझिझक साक्षात्कार तथा उनके प्रति असहिष्णुता और असहमति है।" जनवादी कहानी ने साहित्य में नए मूल्य स्थापित करने का प्रयास किया। इन कहानियों में समाज में विद्यमान समस्याओं की जटिलता तथा व्यवस्था से लड़ते हुए आम आदमी के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। जनवादी कहानी वास्तव में आम जन के भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत करती है। जनवादी कहानी के बारे में बताते हुए असगर वजाहत कहते हैं– "ये कहानियाँ समाज और उसकी समस्याओं की जटिलता को, समकालीन जीवन की गत्यात्मकता को, आर्थिक राजनीतिक शक्तियों के द्वन्द्व से जूझते आदमी की करूणा और उसकी आकाँक्षा को ऐतिहासिक विकासक्रम के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण से परखती है और सामने लाती है।" इस युग की प्रमुख कहानियाँ हैं– काशीनाथ सिंह की लाल किले के बाग, जंगल, माननीय होम मिनिस्टर के नाम, सदी का सबसे बड़ा आदमी, उदय प्रकाश की टेपचू, पुतला, पंकज सिंह की कीचड़, दिल्ली पहुँचना है, असगर वजाहत की सरगम कोला, मुर्दाबाद,ऊसर में बबूल, संजीव की अपराध, शिवमूर्ति की कसाईबाड़ा, शेखर जोशी की सीढ़ियाँ, राजी सेठ की अंधे मोड़ से आगे, नमिता सिंह की जंगलगाथा आदि।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी अपने विषय वैविध्य के कारण पुरानी कहानी से बहुत आगे आ गई है। आज का कहानीकार समाज को देख–परख कर अनुभव के धरातल पर यथार्थ को प्रकट करने का साहस रखता है। इसकों दिखाने के लिये उसने नये बिम्ब, नयी शैली, नया कथ्य तथा नयी भाषा को अपनाया है। "वातावरण निर्माण में नये कहानीकार प्रायः बिम्ब विधान का सहारा लेते हैं। ध्यान देने की बात है कि बिम्बों की प्रधानता नयी कविता में भी है। यह आकस्मिक संयोग नहीं है।बिम्ब वस्तुतः आधुनिक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम हो गया है। तथाकथित आँचलिक कहानियों की जीवंतता मुख्यतः बिम्बों द्वारा निर्मित वातावरण से उत्पन्न हुई है। शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' शिवप्रसाद सिंह की 'दीनू के साथ एक सुबह' राजेन्द्र यादव की 'नया मकान और प्रश्नवाचक पेड़' मोहन राकेश की 'आर्दा' तथा निर्मल वर्मा की 'तीसरा गवाह' कहानी में बिम्ब विधान तथा वातावरण के सार्थक प्रयोग को देखा जा सकता है। कहीं कोसी नदी की सूखी धारा घटवार के अकेलेपन का बिम्ब है, तो कठफोड़वा की किट किट तथा पनचक्की की मथानी की इच्छिट– इच्छिट सूने हृदय की निरर्थक धड़कन का नादमय चित्र है।" इस तरह के बिम्ब विधानों का प्रयोग कहानीकार के विकसित हो रहे इन्द्रियबोध को ही दर्शाता है। संवेदनशील कहानीकार में इन्द्रियबोध बहुत महत्वपूर्ण होता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार अपनी संवेदना व्यक्त करने के लिये अपनी भाषा और शैली में कई प्रयोग करते रहे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी में सामाजिक व्यवस्था को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वास्तव में साहित्यकार कभी भी अपने परिवेश से अलग नहीं हो सकता है, क्योंकि जिस परिवेश में वह जी रहा होता है वही परिवेश उसकी सर्जना का प्रेरक होता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार भी अपने समाज और अपने परिवेश में विद्यमान विसंगतियों को ही कहानियों में अभिव्यक्त करते रहे हैं। उदय प्रकाश की कहानी 'तिरिछ' सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य करती है। तिरिछ को एक संकेत की तरह प्रयोग करते हुए कहानीकार शोषणकारी व्यवस्था में पिसते हुए आम आदमी के बिम्ब को प्रस्तुत करता है। नारायण सिंह की कहानी 'अजगर' सामंतवादी सोच तथा व्यवस्था के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी में अधिकतर आम आदमी के संघर्ष को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। इन कहानियों का नायक हर बार हार नहीं मान लेता है बल्कि लड़ता है और सक्रिय संघर्ष करता है। इस युग की कहानी की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि इसमें उन वर्गों को भी स्थान मिला जो अब तक साहित्य में उपेक्षित रहे थे। स्वातंत्र्योत्तर युग में अस्मिताओं के उभार ने दलित विमर्श और

स्त्री विमर्श जैसे नये विमर्शों को साहित्य में जगह दी। स्त्रीवादी साहित्य के अंतर्गत स्त्री लेखिकाओं द्वारा स्त्रियों के जीवन पर लिखी कहानियाँ सामने आती हैं। इनमें मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, राजी सेठ, मन्नू भंडारी जैसी स्त्री कहानीकारों की कहानियाँ प्रमुख रूप से महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के बाद आधुनिक युग में समाज और परिवार के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन आया। इस परिवर्तन ने स्त्रियों की मानसिकता में भी परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। उन्हें अहसास हुआ कि अब तक उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा गया है। स्वातंत्रयोत्तर युग में स्त्री लेखिकाओं के साथ अन्य लेखकों ने भी स्त्री के इस स्वरूप को लेकर कई कहानियाँ लिखी। महीप सिंह की कहानी 'कील' में नारी मुक्ति के संघर्षरत स्त्री की छटपटाहट को व्यक्त किया गया है। मोहन राकेश ने अपनी कहानी 'फौलाद के आकाश' में भी स्त्री जीवन से जड़ी समस्याओं को उठाया है। मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' आधुनिक स्त्री के मन के अंतर्द्वन्द्वों को अभिव्यक्त करती है। प्रेमी, पति और परपुरूष के साथ संबंधों को लेकर आधुनिक स्त्री अंतर्द्वन्द्व का अनुभव करती है। आधुनिक नारी इस पारंपारिक पतिव्रता धर्म के बोध से मुक्त होने का प्रयास करती है। आज स्त्रियाँ पति के अलावा परपुरूष से संबंध रखने पर पतिव्रता धर्म के भंग होने के अहसास से स्वयं को अलग रखने की कोशिश कर रही हैं। उनकी नजरों में यौन मुक्ति जीवन की आवश्यकता है। परंतु यह सारी स्थितियाँ स्त्रियों को भीतर गहन अंतर्द्वन्द्वों को जन्म देती हैं। मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' में भी स्त्री मन के अंतर्द्वन्द्वों के साथ साथ उसकी स्वयं निर्णय लेने की क्षमता को भी अभिव्यक्त किया गया है। स्वातंत्रयोत्तर भारत में नारी के आत्मनिर्भर स्वरूप को बताते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं–"पहले की तरह पति या परिवार पर निर्भर, प्रेमी या पति की इच्छाओं पर नाचती, दया और सम्मान चाहती, अभागिन या आपकी दासी नहीं, बराबरी के हक की प्रतीक्षा और मांग करती रूढ़ि मुक्त नारी है। क्योंकि पुरूष के साथ आज उसका संबंध सच्चे अर्थों में मुक्त और स्वतंत्र है।"

वर्तमान परिवेश में स्त्री ने आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाया है। अब स्त्री के लिये आर्थिक रूप से सक्षम होना बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। इसलिए आधुनिक युग में स्त्रियों को नौकरी करते हुए देखा जा सकता है। आधुनिक नौकरीपेशा स्त्री जीवन पर कुछ महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं– मोहन राकेश की 'सुहागिने' मन्नू भंडारी की 'आकाश के आइने में' शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' राजेन्द्र यादव की 'लौटते हुए' तथा 'प्रतीक्षा' आदि कहानियों में स्त्री जीवन की स्थितियों को दर्शाया गया है कि किस प्रकार आर्थिक रूप से संपन्न होने के बाद भी स्त्री पुरूष द्वारा ही परिचालित है। स्वातंत्रयोत्तर कहानी में बदलते स्त्री–पुरूष संबंधों को लेकर भी कहानियाँ लिखी गई हैं। स्वातंत्रयोत्तर कहानी ने स्त्री के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण को तोड़ा। साथ ही नारी समर्थतता को उजागर करने का प्रयास भी किया। इस युग की कहानियों में स्त्रियों में नवीन चेतना का उदय दिखाया गया है।

इस काल में दलित चेतना से संबंधित कहानियाँ भी लिखी गयी। समाज में अब तक हाशिये के पायदान पर रहे दलित वर्ग के भीतर आ रही चेतना को दर्शाती यह कहानियाँ जातीयता के दंश से पीड़ित एक वर्ग के संघर्षों की गाथाएं हैं। इस वर्ग की पीड़ा और संघर्ष ही इन कहानियों का कथानक बना। इन कहानियों में एक ओर दलित वर्ग की पीड़ा और दुख दर्द को विषय बनाया गया है तो दूसरी ओर नवीन चेतना से युक्त संघर्ष के लिये प्रेरित वर्ग को दिखाया गया है। दलित कहानियाँ दलित जीवन की सशक्त और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ 'कूड़ाघर' तथा 'सलाम' दलित चेतना से युक्त संघर्षरत व्यक्ति की कहानियाँ है। दलित कहानियाँ समाज में दलितों के उस संघर्ष को रेखांकित करती हैं जिसके माध्यम से वे अपने स्वाभिमान को बचाने की कोशिश करते है। 'सलाम' कहानी का नायक हरीश नई नवेली दुल्हन द्वारा घर घर घूमकर सलाम करने की प्रथा को बंद करवाकर दलित वर्ग में आ रही नवीन चेतना का ही परिचय देता है।'

रमणिका गुप्ता की कहानी 'बहू जुठाई' ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'खानाबदोश' आदि कहानियाँ आर्थिक समस्या से ग्रस्त जातिप्रथा की मार झेलते हुए दलित मनुष्य की संघर्ष की कहानियाँ हैं। दलित कहानियों में दलित और स्त्री चेतना से युक्त विभिन्न नारी पात्रों को भी देखा जा सकता है, इस तरह की कुछ महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं– 'अपना गाँव, बैल बधिया', 'तिरिया चरित्तर', 'धर्म क्षेत्र–कुरूक्षेत्र' तथा 'रावण' आदि। ये कहानियाँ एक ओर दलित जीवन की कड़वी सच्चाईयों को दिखाती हैं तो दूसरी ओर शोषण के खिलाफ संघर्ष करती दलित स्री के चरित्र को भी अभिव्यक्त करती हैं, क्योंकि वर्तमान पितृसत्तात्मक व्यवस्था बहुत हद तक दलित समाज में भी विद्यमान है। सामाजिक यथार्थ का जितना सशक्त अंकन स्वातंत्रयोत्तर कहानियों में हुआ, उतना उसके पहले के युग में नहीं हुआ था। अपनी सशक्त अभिव्यक्ति के कारण ही यह कहानियाँ साहित्य में बहुत अधिक लोकप्रिय हो गईं तथा इन्होंने अन्य विधाओं को पीछे छोड़ दिया। समाज में बदलते रिश्ते, संबंध विच्छेद, नए संबंधों की तलाश, घुटन, ऊब, संत्रास, पीड़ा और द्वन्द्व ने मनुष्य के

जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है, इन सबकी अभिव्यक्ति स्वातंत्रयोत्तर कहानियों में देखी जा सकती है। क्योंकि इस युग की कहानी ने अपने परिवेश से जन्म लिया था और इसी कारण यह अपनी युगीन समस्याओं को अभिवयक्त करने में सक्षम है।

स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी कई आंदोलनों और पढ़ावों को पार करती हुई आज के वर्तमान स्वरूप तक पहुँची है। इसी कारण कई बार स्वातंत्रयोत्तर कहानी के काल को लेकर वाद–विवाद की स्थित भी उत्पन्न हुई है। सारे विवादों को झेलने के बाद वर्तमान में यह हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। आज कहानी केवल मनोरंजन, घटना विवरण और अध्य्यन अध्यापन के आदर्शवाद का ही हिस्सा नहीं रही है बल्कि अब वह जीवन को एक नए नजरिए से देखने का प्रतिमान भी बन चुकी है। जिस प्रकार बदलती हुई युगीन प्रवृतियों के कारण समाज, संबंधों और मूल्यों में बदलाव आ रहे हैं, उसकी स्पष्ट छाया स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में भी देखी जा रही है। क्योंकि यह कहानी बदलते परिवेश और संवेदनाओं को उदघाटित करने का हौसला भी रखती है।

संदर्भ

I. कमलेश्वर 'नयी कहानी की भूमिका' पृष्ठ संख्या– ४४

II.समकालीन हिन्दी कहानी 'प्रकृति और परिदृश्य' पृष्ठ संख्या–६०–६१

III.सारिका पत्रिका, फरवरी १९८४ पृष्ठ संख्या–१६

IV.नामवर सिंह, 'कहानी अकहानी' पृष्ठ संख्या–३३

V.राजेन्द्र यादव, 'कहानी संवेदना और स्वरूप' पृष्ठ संख्या–६०

संदर्भ ग्रन्थ

1. स्त्री उपेक्षिता सीमोन द बोउवार ध प्रस्तुति डॉ. प्रभा खेतान।

2. श्शृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा, संस्करण–2004

3.प्रभा खेतान 'हंस की नारीवादी उड़ान' हंस मार्च २००४

4.अनामिका 'स्त्रीत्व का मानचित्र'सारांश प्रकाशन, दिल्ली संस्करण २०००

5.अनामिका'पानी जो पत्थर पीता है' वाणी प्रकाशन– नई दिल्ली

6.अभय कुमार दुबे(संपादक) आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण–२००२

7.अरविन्द जैन 'औरत अस्तित्व और अस्मिता' सारांश प्रकाशन प्राइवेट लि. दिल्ली संस्करण १९९९

8. अर्चना वर्मा, 'अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर' मेधा बुक्स, नवीन शादहरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण २००८

9.आशारानी व्होरा 'नारी विद्रोह के भारतीय मंच' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली संस्करण १९९१

10.उमा शुक्ल 'भारतीय नारीः अस्मिता की पहचान, **लोकभारती प्रकाशन संस्करण–१९९४**

11.ऊषा कीर्ति रणावत, 'प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००७

12.कमलापति उपाध्याय – 'हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्य्यन'– साहित्य रत्नालय, गिलिस बाजार कानपुर प्रथम संस्करण १९९२

डॉ0 सबा रईस

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

एस. एम. कॉलेज

छोटी खंजरपुर

भागलपुर, बिहार

पिन कोड 812001

Dr. Saba Rais

Assistant Professor

Hindi Department

SM college TMBU Bhagalpur,

Bihar

41

Indian Knowledge Systems: Safeguarding, Transmission, and Societal Relevance

Dr. Subodh Kumar

Abstract

In the Indian context, Indian Knowledge Systems (IKS) represent long-standing intellectual traditions that have evolved over centuries across diverse domains such as healthcare (Ayurveda, Siddha, Unani, Yoga), mathematics and astronomy, agriculture and irrigation systems, architecture and crafts, linguistics and philosophy, and environmental stewardship. These knowledge traditions function as integrated systems combining science, philosophy, technology, and cultural practices. They are embedded in classical texts, regional languages, rituals, customary laws, and community-based practices.

The National Education Policy (NEP) 2020 recognizes the importance of IKS in addressing present-day challenges and promotes its integration into research, curriculum design, innovation, health systems, food security, and biodiversity conservation. Efforts are being made to identify, document, revitalize, and disseminate these traditions through academic institutions and community participation. This paper proposes strategic directions for scholars, educators, archivists, policymakers, and communities to ensure the sustainable preservation and responsible application of IKS for societal benefit.

Keywords: Indian Knowledge Systems, Holistic Traditions, NEP 2020, Preservation and Dissemination, Sustainable Development

Core IKS Perspectives Supporting Sustainability

1. Integrated Ecological Responsibility

IKS promotes a worldview that sees individuals, society, and nature as interconnected. Indian intellectual traditions have generated rich knowledge in agriculture, water systems, astronomy, health sciences, and ecological conservation. Rather than separating science from culture, these traditions integrate philosophical insight with practical application.

This integrated vision aligns with NEP 2020's objective of incorporating indigenous knowledge into modern education and innovation systems. It encourages research, interdisciplinary learning, and community engagement to address contemporary ecological and developmental challenges.

- Practices such as Zero-Budget Natural Farming (ZBNF) revive traditional soil-enriching techniques and biodiversity-friendly cultivation.
- Historic water management systems, including stepwells and rainwater harvesting methods, demonstrate sustainable resource governance.

2. **Holistic Health Frameworks**

Traditional medical systems emphasize preventive healthcare, lifestyle regulation, and harmony between body and mind.

- Ayurveda and related traditions provide cost-effective and eco-sensitive health solutions.
- Emphasis on dietary discipline, seasonal routines, and mental balance promotes long-term well-being and sustainable living patterns.

3. **Value-Oriented and Experiential Education**

Traditional learning models such as the Gurukul system prioritized ethical formation, lived experience, and holistic development.

- Education was centered on character-building alongside intellectual training.
- Such approaches encourage adaptability, resilience, and social responsibility among learners.

4. **Ethical Economic Thought**

Classical Indian texts and Gandhian economic philosophy emphasize decentralized governance, ethical leadership, and community welfare.

- Development models rooted in IKS prioritize equity and ecological balance rather than mere profit accumulation.
- These approaches support inclusive and sustainable growth frameworks.

5. **Contribution to Sustainable Development Goals (SDGs)**

IKS aligns closely with several global sustainability targets:

- **SDG 2 (Zero Hunger):** Through organic and indigenous agricultural practices.
- **SDG 3 (Good Health and Well-being):** Via traditional medical systems.
- **SDG 6 (Clean Water and Sanitation):** Through traditional water conservation techniques.

- **SDG 13 & 15 (Climate Action & Life on Land):** Through conservation ethics and biodiversity stewardship.

Policy and Institutional Framework in India

- **NEP 2020 and Institutional Support**

The National Education Policy 2020 advocates mainstreaming IKS across all levels of education. It promotes interdisciplinary curricula, research centers, and innovation initiatives. Government bodies have initiated funding programs, curriculum reforms, and thematic hackathons to integrate traditional knowledge into contemporary academic discourse.

- **Preventing Bio-Piracy: The Role of TKDL**

The Traditional Knowledge Digital Library (TKDL), established in 2001 by CSIR, systematically documents formulations from Ayurveda, Siddha, Unani, and Yoga. By translating them into formats recognizable to international patent examiners, TKDL helps prevent misappropriation of India's traditional medicinal knowledge. It emerged partly in response to controversial patent claims related to turmeric and neem.

- **People's Biodiversity Registers (PBRs)**

Under the Biological Diversity Act (2002), local Biodiversity Management Committees are required to maintain People's Biodiversity Registers. These registers record biological resources and associated traditional knowledge at the grassroots level, supporting conservation planning and equitable benefit-sharing.

- **Grassroots Innovation Ecosystems**

Networks such as the Honey Bee Network and the National Innovation Foundation have documented thousands of local innovations and traditional practices. By connecting innovators with incubation, intellectual property support, and enterprise development, these initiatives demonstrate how community knowledge can drive inclusive development.

Strategies for Preservation

Multi-Level Documentation

- **Textual Traditions:** Digitization of manuscripts, transliteration, translation, and development of searchable databases are essential for codified knowledge.
- **Practice-Based Knowledge:** Participatory documentation through audiovisual tools and community-led recording is crucial for non-codified traditions.

Legal and Ethical Safeguards

Access to biological resources and associated knowledge must comply with national laws and international agreements such as the Nagoya Protocol. Prior informed consent, mutually agreed terms, and fair benefit-sharing mechanisms are essential to protect community rights. Documentation must be ethically guided to avoid misuse. Sensitive or sacred knowledge should receive restricted access protections.

Dissemination for Public Benefit

Educational Integration

IKS can be embedded into multidisciplinary courses, foundation modules, ecological studies, and design innovation labs. Curriculum reforms and translation of classical texts will strengthen knowledge accessibility.

Living Archives and Digital Platforms

Institutions can develop layered repositories combining open-access educational materials with controlled research archives. Community museums and practitioner partnerships ensure contextual integrity.

Innovation and Problem-Solving

University “living labs” and innovation platforms can collaborate with communities to adapt traditional water systems, seed preservation methods, and herbal remedies for modern use, ensuring revenue-sharing mechanisms are in place.

Health Translation with Scientific Rigor

While traditional medical knowledge offers preventive health insights, dissemination must adhere to regulatory standards and scientific validation to avoid exaggerated claims.

Governance and Equity

Effective preservation requires balancing openness with rights protection. Access and Benefit Sharing (ABS) frameworks regulate the use of biological and knowledge resources. Policies must differentiate between publicly documented and sensitive community-held knowledge.

Practical Roadmap

1. **Foundation Phase:** Build partnerships among scholars, legal experts, and community representatives.

2. **Documentation Phase:** Train community researchers and digitize textual and oral traditions.
3. **Validation Phase:** Collaborate with laboratories and research institutions to test safety and efficacy where required.
4. **Application Phase:** Develop curriculum modules, innovation labs, and practitioner-authored publications.
5. **Benefit-Sharing Phase:** Ensure transparent revenue-sharing and community review mechanisms.

Risks and Mitigation

- **Bio-piracy:** Strengthen prior-art databases and patent monitoring.
- **Loss of Context:** Pair documentation with ethnographic insights and practitioner voices.
- **Digital Inequality:** Develop multilingual resources and offline access tools.
- **Regulatory Complexity:** Maintain clear consent-based protocols.
- **Ethical Risks:** Protect sacred knowledge and ensure community oversight.

Toward Epistemic Pluralism

Preservation should not be limited to archiving traditions; it should foster a pluralistic knowledge ecosystem. IKS provides systems thinking, ecological sensitivity, and ethical orientation that complement modern scientific methods. NEP 2020 creates an opportunity to institutionalize this knowledge diversity responsibly, without romanticization and with rigorous validation.

Conclusion

Preserving and disseminating Indian Knowledge Systems requires coordinated action that combines digital infrastructure, ethical governance, and community participation. India's existing policy framework—including NEP 2020, TKDL, biodiversity legislation, and innovation networks—offers a strong foundation. The focus must now shift to structured implementation grounded in consent, equity, and sustainability.

When effectively safeguarded and responsibly applied, IKS can contribute to environmental resilience, inclusive livelihoods, enriched education, and public well-being. In an era marked by climate challenges, mental health concerns, and uneven development, these knowledge traditions provide integrative perspectives that unite ethics, ecology, and community life. Rather than merely preserving the past, IKS can help shape a more balanced and sustainable future.

References

- Mandavkar, P. (2024). Indian Knowledge System (IKS) and National Education Policy (NEP-2020).ResearchGate.https://www.researchgate.net/publication/390478286_Indian_Knowledge_System_IKS_and_National_Education_Policy_NEP-2020
- Vanguri, R. (2025). Revitalizing higher education through Indian Knowledge System (IKS). International Journal of Scientific and Applied Technology (IJSAT), 4(2), 34–46. https://www.ijsat.org/papers /2025/2/3446.pdf
- Department of Education, Uttarakhand & Odisha. (2024). Integrating traditional Indian knowledge systems (IKS) into higher education, as advocated by NEP 2020. International Journal of Creative Studies & Publications (IJCSPUB). https://rjpn.org/ijcspub/papers/ IJCSP24C1037.pdf
- Central Council for Research in Ayurvedic Sciences (CCRAS). (2023). Ayurveda research and global health integration. Ministry of AYUSH, Government of India.
- Council of Scientific and Industrial Research (CSIR). (2001). Traditional Knowledge Digital Library (TKDL): Protecting India's traditional knowledge. Government of India.
- National Biodiversity Authority. (2002). The Biological Diversity Act, 2002. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India.
- Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India. https://www.education.gov.in/nep/
- World Intellectual Property Organization (WIPO). (2017). Protect and promote your culture: Traditional knowledge and traditional cultural expressions. WIPO Toolkit.
- Gupta, A. K. (2012). Innovation, investment, enterprise: Building on grassroots creativity. Indian

Journal of Traditional Knowledge, 11(1), 5–16.
- Honey Bee Network. (2019). Learning from grassroots: The Honey Bee Network approach. National Innovation Foundation–India.
- National Mission for Manuscripts. (2003). National Mission for Manuscripts Annual Report. Ministry of Culture, Government of India.
- UNESCO. (2003). Convention for the Safeguarding of the Intangible Cultural Heritage. Paris: UNESCO.

Dr. Subodh Kumar
Assistant professor,
RTC B.Ed college Ranchi
(Ranchi University Ranchi Jharkhand)

42

खोरठा लोक साहित्य में लोकगीत : एक वर्णनात्मक अध्ययन

अमित कुमार करमाली

सारांश

जहाँ तक खोरठा लोकगीतों का अध्ययन है, यह क्षेत्र विपुल लोक गीतों का अक्षय भंडार है। सच कहा जाय तो सम्पूर्ण खोरठा क्षेत्र में परिव्याप्त इनके लोक गीत ही खोरठा शिष्ट साहित्य के जनक हैं। प्रकृति के उन्मुख प्रांगण में आरण्याच्छादित कर्मभूमि के बीच, पार्वत्य क्षेत्र की गोद में कलकल निनादित नदियों, झरनों, सरिताओं की असंख्य धाराओं के साथ इनके लोकगीत, गली–मुहल्लों, चौपालों–आखराओं, ग्रामीण हाट–मेलों, खेत–खलिहानों में आज भी गुंजारित हो रहे हैं।

खोरठा के लोकगीत ही खोरठा क्षेत्र की पहचान है। इनके लोकगीत खोरठा क्षेत्र की संस्कृति के संवाहक हैं। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नानाविध लताद्रूमों से परिपूर्ण हरित वनप्रान्तर के मध्य पर्वत श्रृंखलाओं, सर–सरिताओं के वातावरण में इनके भू–हृदयस्थली से निस्तृत सदा सलिला कलकल निनादित सरिताओं और निर्झरों ने क्षेत्र के निवासियों के जीवन में गीत, संगीत और नृत्य को जन्म दिया।

<u>प्रस्तावना</u> :

आदिम मानव जब अपने सुख–दुख से आन्दोलित हुआ होगा, तभी उनके कंठ से लोकगीतों की धारा प्रस्फुटित हुई होगी। लोकगीत के उद्‌गम से संबंधित डॉ० देवेन्द्र सत्यार्थी के विचार माननीय हैं – ''कहाँ से आते हैं इतने गीत? स्मरण–विस्मरण की आँख–मिचौनी से। कुछ अट्टहास से। कुछ उदास हृदय से, कहाँ से आते हैं इतने गीत? वास्तव में मानव स्वयं आश्चर्यचकित है। ये असंख्य गीत असंख्य कंठों से असंख्य धाराओं में प्रवाहित हो रहे हैं।' इसकी व्यापक परिधि में चर्चा करते हुए डॉ० श्याम परमार लिखते हैं – ''स्त्री–पुरूष ने थक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटायी है, इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आयी है, बुढ़ों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटायी है, विधवाओं ने अपनी एकांकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावट दूर की है, किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।'' सृष्टि के आदिकाल में सामाजिक चेतना के समय ही लोकगीतों का उदय हुआ। इसलिए लोक साहित्य के मर्मज्ञ श्री सूर्यकरण पारीक का विचार – ''आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है।''

<u>खोरठा साहित्य में लोकगीत</u> :

लेकगीत हमारे विकास की अमूल्य निधि हैं। मानव हृदय की उद्धार सुख–दुख, हर्ष–उल्लास, संयोग–वियोग आदि भावनाएँ भिन्न–भिन्न प्रथाओं के गीतों के रूप में व्यक्त हुई है, ऐसे ही एक सहियारी (मित्रता) खोरठा लोकगीत प्रस्तुत हैं –

गुड सोवाद, मिसरी सोवाद आर सोवाद चीनी रे
चीनी ले जे आरो सोवाद सहिया हामर धनी रे
सिमइर फूल पियर, चिलोम फूलो पियार
से हो ले उपरे पियार, सहिया के ले गनी रे
सिन्दूर लाल, गेरू लाल, आरो ललका रंग रे
तकरो ले टहटह लाल, सहिया लागे धनि रे।

यह गीत सहिया पाताइ के समय गया जाता है। इस गीत के माध्यम से कहा गया है कि गुड़, मिस्री और चीनी से भी मीठा मेरा सहिया है। सिन्दूर, गेरू, लाल से भी अधिक लाल मेरा सहिया हैं। इस प्रकार अपनी मन की खुशी को उजागर करने के लिए किसी अजनबी के कंठ से स्वतः ही गीत निकल गया होगा।

खोरठा लोकगीत उतना ही पुराना है, जितना ही मानव जीवन, क्योंकि जनमानस ने हर दिन किसी न किसी रूप में लोक साहित्य का प्रयोग करता ही है। खोरठा लोक साहित्य के अंतर्गत लोकगीत के अलावे लोककथा, लोकगाथा, लोकोक्ति, पहेलियाँ, मुहावरा, मंत्र आदि आते है। लोक साहित्य अमूल्य ज्ञान का भंडार है। इसके अध्ययन से कई महत्पूर्ण तथ्य हमारे सामने उभरकर आते है। जिससे समाज के कई पहलूओं को जाना एवं समझा जा सकता है। इस बात को हम एक लोकगीत के माध्यम से जान सकते है।

चारी पहरी राती विनिया डोलावयइ जी
भिनसरे दम छुटीगेले रे भाय
मानुस जनम दिन चारी हो।
चाइर जुवाना मिली खटिया उठावइ जी
लइ गेलथीन दामुदरेक तीरे रे भाई
मानुस जनम दिन चारी रे भाई।
छुटी गेलय रे भाय गाँव–ग्रामवा हो
केहु नाही संग–संगतिया रे भाई
मानुस जनम दिन चारी हो।

उक्त गीत के माध्यम से मनुष्य जीवन का यथार्थ चित्रण दर्शाया गया है कि मनुष्य की जिंदगी चार दिन की है – बचपन, जवानी, प्रौढ और बुढ़ापा। मर जाने के बाद चार आदमी खाट उठाकर दामोदर नदी के तट पर दाह–संस्कार हेतु ले जायेंगे। आगे–आगे अग्नि की हांड़ी नाती लेकर जायेगा। लोक शवयात्रा में

शामिल होंगे। कुछ सगे–सम्बन्धी चार–छः माह रोयेंगे कुछेक वर्ष भर तक फिर संसार की गतिविधि पूर्ववत जारी रहेगी। उपरोक्त निर्गुण लोकगीत में गंभीर अर्थ छिपा है कि मानव अहंकार न करें।

लोकगीत सत्य का संसार है। लोक गायक के अंतर्भावों का वास्तविक चित्रण यहाँ रहता है। जटिलता, दुरुहता, गोपनीयता का अभाव लोकगीतों में होता है। तडक भड़क से दूर गाँव के सरल वातावरण में हरे भरे लहलहाते खेतों में घनी आबादियों की छाया में सरिता तट के रेतीली भूमि में मेघाच्छान्दित नभ मंडल के नीचे इन गीतों की रचना होने के कारण प्रकृति के सम्पूर्ण मधुरता का समावेश इनमे होता है। यह पारदर्शी शीशे की तरह स्वच्छ, फूलों की कोमलता, वृक्षो की तरह उदार, सूर्य के प्रकाश एवं कोमल की मिठास से लोकगीत सरोवर रहता है। करुण, हास्य, श्रृंगार आदि रसों से भरे हुए यें गीत कंठों से फूटकर युग–युग से कंठों पर ही खेलते चले आ रहे है। एक गीत निम्नलिखित है –

आसा जे देले नूनी गे, भरोसा जे देले गे
ओ रे नीमा तरे, राखले डंडाइ।
ओ नीमा पतइ झरीगेल गे, भंउरा गुजरी गेल
ओ रे आबे नूनी नखो बिदसुवास।
ओ सोझ सिरे कहतले गे, दू–दू मन छाडतलें
ओ रे दुइयो संगे पोसाइ पिरित।

उपरोक्त लोकगीत वियोग श्रृंगार रस प्रभावित है। इस डोहा में प्रेमी अपनी बिछुड़ी प्रेमिका को पुकारते कहता है, तुम्हारे वादे के अनुसार मैं नीम पेड़ के नीचे बैठकर घंटो शाम को खड़ा रहा पर तुम नहीं आयी। तुमने वादा खिलाफी क्यों की? तुम्हे तो स्पष्ट कह देना था कि मुझसे तुम प्रेम नहीं करती। अब तुम्हारे ऊपर विश्वास खत्म होता जा रहा है।

इस प्रकार हमारे पूर्वजो ने जो बात किसी विशेष परिस्थितियों में बोलते थे, उसे राग में गाकर बोलते थे, वह लोकगीत बना। ऐसा करने से उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती थी। गीत गाने से दुःख–दर्द के साथ थकान दूर होता है तथा ऊर्जा प्राप्त होने का अनुभव होता है। दिन भर अपने खेतों में काम के पश्चात रात्रि भोजन के बाद अपने गाँव के अखड़ा में नृत्य–गान करते है। इसलिए डॉ० गिरिधारी राम गौंझू जी ने ठीक ही कहा है कि ''नृत्य में थकावट नहीं, तरावट आती है।'' तभी तो झारखण्डी अखड़ा में गीत–नृत्य रात–रात भर चलता रहता है।

खोरठा लोकगीतों में इस प्रकार उनके हरेक घटनाओं का जिक्र लोकगीतों में होते है। यानि खोरठा लोकगीतों में जनजीवन की सच्ची झांकी निहित है। खोरठांचल समाज जिस मौसम में पर्व–त्योहार मनाते है, उसी मौसम का नाच–गान तथा बजा के ताल होतें है। मौसम के आधार पर समय के अनुरूप ही गीतों एवं स्वरों की रचना की गई है। दूसरे मौसम का गाना और बजाना वर्जित हैं। जैसे करम गीत के राग या ताल को सरहुल गीत या राग में नहीं गया जा सकता है। चूँकि खोरठांचल समाज में मानना है कि असामयिक गीत गानें से हमारें पूर्वज नाराज हो जाते है। लेकिन स्थान विशेष पर कुछ अंशों में कुछ फर्क मालूम पड़ता है, चूँकि यह गीत मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्थांतरित होते रहते है। लेकिन अब कुछ वर्षों से लोकगीत को लिपिबद्ध किया जा रहा है।

निष्कर्ष :

झारखण्ड। अबुआ झारखण्ड। एक संस्कृति प्रधान नवोदित राज्य। समरसता पूर्ण, श्रमशील संगीत प्रधान झारखण्ड। यहाँ का चलना ही नृत्य है, बोलना ही संगीत है, वह झारखण्ड।

''गेन गे सुसर काजि गे दुरंग।''
''एकना दिम तोकना, कथादिम डंडी।''

झारखण्ड में जब कोई शिशु जन्म लेता है तब कांसे की थाली का घंटा अथवा मांदर बजाया जाता है। उस बाजे के ताल पर नवजात शिशु अपने रूदन गान से अपने आने की खबर देता है। उस शिशु के रूदन गान को सुनकर लोग कह उठते हैं, देखो अखरा का एक और कलाकार आ गया। ये है झारखण्ड आदिवासी– सदान जीवन का आरंभ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खोरठांचल समुदाय की वास्तविक पहचान उनकी लोक साहित्य में है। लोक साहित्य में सबसे रोचक एवं प्राचीन विधा ''लोकगीत'' है। लोकगीत को खोरठांचल समाज का दर्पण कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। चूँकि लोकगीत खोरठांचल समाज के सभी जनजीवन के क्रियाकलाप परिलक्षित होतें है। इसे हमें संरक्षित एवं समृद्ध करना अतिआवश्यक हैं, क्योंकि लोकगीत में ही खोरठांचल समाज का इतिहास छिपा हुआ है। इसलिए खोरठा लोकगीत हमारें जीवन में बहुत ही महत्पूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्रमाणिक, शिवनाथ – खोरठा लोक साहित्य, पृथ्वी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1985, पृ०–33
2. प्रमाणिक, शिवनाथ – खोरठा लोक साहित्य, पृथ्वी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1985, पृ०–34
3. ओहदार, डॉ० बी०एन० – खोरठा लोक साहित्य, रामगढ़,

संस्करण–2007, पृ० –39
4. प्रमाणिक, शिवनाथ – खोरठा लोक साहित्य, पृथ्वी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1985, पृ०–41
5. गौंझू, डॉ० गिरधारी राम – झारखण्ड का लोक संगीत, झारखण्ड झरोखा, राँची, संस्करण–2015, पृ०–45
6. ओहदार, डॉ० बी०एन० – खोरठा भाषा साहित्य (उद्‌भव एवं विकास), मार्गदर्शन पब्लिकेशन, रामगढ़, संस्करण–2007, पृ०–48
7. ओहदार, डॉ० बी०एन० – खोरठा भाषा साहित्य (उद्‌भव एवं विकास), मार्गदर्शन पब्लिकेशन, रामगढ़, संस्करण–2007, पृ०–56
8. प्रमाणिक, शिवनाथ – खोरठा लोक साहित्य, पृथ्वी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1985, पृ०–61
9. ओहदार, डॉ० बी०एन० – खोरठा भाषा साहित्य (उद्‌भव एवं विकास), मार्गदर्शन पब्लिकेशन, रामगढ़, संस्करण–2007, पृ०–59
10. झा, डॉ० ए०के० – खोरठा लोक साहित्य, झारखण्ड जनजातीय कल्याण शोध संस्थान, राँची, संस्करण–2012, पृ०–161

नाम : अमित कुमार करमाली
पिता–शनिचर करमाली
ग्राम–पतरातु, पोस्ट–बेतुलकला, थाना–गोला,
जिला–रामगढ़, पिन कोड–829110, झारखण्ड
मो०नं०–6202645805

43

बौद्ध धर्म और सामाजिक संरचनाः एक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विश्लेषण

मुकुंद कुमार

सारांश

यह लेख एक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य से बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों और उनके सामाजिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों की पड़ताल करता है। लेख इस बात पर केंद्रित है कि कैसे गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग जैसे दार्शनिक सिद्धांतों ने केवल व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग ही नहीं दिखाया, बल्कि एक नैतिक, समतामूलक और करुणापूर्ण समाज के निर्माण का सैद्धांतिक आधार भी प्रस्तुत किया। इसमें कर्म सिद्धांत, अहिंसा, अनात्मवाद और प्रतीत्यसमुत्पाद (सह–उत्पन्न होना) जैसी अवधारणाओं के माध्यम से व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंध को समझाया गया है। लेख यह प्रतिपादित करता है कि बौद्ध दर्शन ने जाति–आधारित कठोर सामाजिक विभाजन को चुनौती देकर व्यक्ति के कर्म और नैतिकता को सामाजिक हैसियत का आधार बनाया। इस प्रकार, यह आलेख दर्शाता है कि बौद्ध धर्म एक धार्मिक सिद्धांत से कहीं आगे बढ़कर एक सामाजिक पुनर्गठन का दर्शन था, जिसका प्रभाव प्राचीन भारतीय समाज की संरचना पर गहरा पड़ा और जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

मुख्य शब्द कुंजीः बौद्ध धर्म, सामाजिक संरचना, चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, कर्म सिद्धांत, अहिंसा, अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, समता, जाति व्यवस्था, ऐतिहासिक विश्लेषण।

1. प्रस्तावनाः एक क्रांतिकारी दार्शनिक एवं सामाजिक प्रस्थान

छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व का भारतीय उपमहाद्वीप गहन दार्शनिक चिंतन और सामाजिक उथल–पुथल का काल था। इसी समय, एक ऐसे विचारधारात्मक आंदोलन का उदय हुआ जिसने न केवल धार्मिक जीवन को, बल्कि सामाजिक संरचना की मूलभूत अवधारणाओं को भी मौलिक रूप से प्रश्नांकित किया। यह आंदोलन था बौद्ध धर्म। सिद्धार्थ गौतम यानी बुद्ध द्वारा प्रतिपादित यह मार्ग मूलतः व्यक्ति के दुख से मुक्ति का मार्ग था, किंतु इसकी गहरी पैठ सामूहिक जीवन की व्यवस्था में भी हुई। बुद्ध ने अपने समय की कर्मकांड–केंद्रित धार्मिक प्रथाओं और जाति–आधारित कठोर सामाजिक ऊंच–नीच पर सीधा प्रहार किया। उनकी शिक्षाओं ने वैयक्तिक नैतिकता और बौद्धिक जागरण को समाज परिवर्तन का केंद्रीय सूत्र बनाया।

इस लेख का उद्देश्य एक इतिहासवेत्ता के नजरिए से यह समझना है कि बौद्ध धर्म के मूल दार्शनिक सिद्धांतों ने किस प्रकार एक वैकल्पिक सामाजिक संरचना की संभावना को जन्म दिया। हम देखेंगे कि कैसे कर्म का सिद्धांत जाति के आधार पर मिली हुई हैसियत के स्थान पर व्यक्ति के कृतित्व को महत्वपूर्ण बनाता है। कैसे अनात्मवाद की अवधारणा एक स्थायी, अटूट ष्स्वष के भ्रम को तोड़कर अंतर्निर्भरता को समझने का आधार देती है। और कैसे प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत यह दर्शाता है कि समाज का हर घटक एक–दूसरे पर निर्भर है। यह कोई सामाजिक सुधार का सीधा राजनीतिक घोषणापत्र नहीं था, बल्कि एक गहन मनोवैज्ञानिक और नैतिक पुनर्परिभाषा थी, जिसके सामाजिक परिणाम स्वाभाविक रूप से क्रांतिकारी थे (राहुल सांकृत्यायन, 1956)। इस प्रकार, बौद्ध धर्म को केवल एक धर्म न मानकर एक सामाजिक–दार्शनिक व्यवस्था के रूप में देखना अधिक उचित होगा।

2. बौद्ध धर्म के वे मूल दार्शनिक सिद्धांत जो सामाजिक दृष्टि को आकार देते हैं

बौद्ध धर्म की सामाजिक संरचना पर पड़ने वाली छाप को समझने के लिए सर्वप्रथम उसकी दार्शनिक बुनियाद को समझना आवश्यक है। ये सिद्धांत ही वह आधारशिला हैं, जिन पर बौद्ध समाज की कल्पना खड़ी होती है।

2.1. चार आर्य सत्यः समस्या की पहचान और समाधान का आधार

बुद्ध के पूरे दर्शन का केंद्र दुख और उससे मुक्ति का प्रश्न है। चार आर्य सत्य इसी की व्यवस्थित व्याख्या करते हैं।

1. दुख सत्यः यह स्वीकार करना कि जीवन में दुख, असंतोष और असंतुलन का अस्तित्व है। यह सिर्फ व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि सामाजिक विषमता, अन्याय और संघर्ष के रूप में भी प्रकट होता है।
2. समुदय सत्यः दुख के कारणों की पहचान। दुख का मूल कारण तृष्णा (लालसा, लगाव) और अविद्या (अज्ञान, वास्तविकता को न समझ पाना) है। समाज में यह अविद्या मैं और मेरा की अतिशय भावना, भेदभाव और लोभ के रूप में दिखती है।
3. निरोध सत्यः यह विश्वास कि दुख का निरोध संभव है। तृष्णा और अविद्या के समूल नाश से एक शांत, मुक्त अवस्था (निर्वाण) प्राप्त की जा सकती है। इसका सामाजिक अर्थ है संघर्ष और शोषण से मुक्त एक शांतिपूर्ण व्यवस्था की संभावना।
4. मार्ग सत्यः दुख निरोध का व्यावहारिक मार्ग, यानी अष्टांगिक मार्ग। यह मार्ग ही बौद्ध सामाजिक नैतिकता का मूलाधार है।

2.2. अष्टांगिक मार्गः नैतिक एवं बौद्धिक पुनर्निर्माण का मार्ग

अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगों को तीन भागों में बांटा जा सकता है, जो व्यक्ति के नैतिक, मानसिक और बौद्धिक विकास का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं (सोमदेव, 1998)।

- प्रज्ञा (बुद्धि का विकास):
- सम्यक दृष्टिः चीजों को यथार्थ रूप में देखना, अविद्या को दूर करना।
- सम्यक संकल्पः निर्मल, हिंसारहित और त्यागपूर्ण विचारों का निर्धारण।
- शील (नैतिक आचरण):
- सम्यक वचनः सत्य, मृदु और सारगर्भित भाषण।
- सम्यक कर्मान्तः अहिंसक और ईमानदार कार्य।
- सम्यक आजीवः ईमानदार और अहिंसक जीविका।
- समाधि (मानसिक अनुशासन)रू
- सम्यक व्यायामः कुशल मानसिक गुणों को विकसित करने का प्रयत्न।
- सम्यक स्मृतिः सजग और स्पष्ट चित्त की अवस्था।
- सम्यक समाधिः एकाग्र और शांत चित्त की गहन अवस्था।

इस पूरे मार्ग का स्पष्ट सामाजिक निहितार्थ है। शील के अंग सीधे तौर पर सामाजिक संबंधों को नियमित करते हैं। झूठ, चोरी, हिंसा और अनुचित व्यवसाय समाज को खोखला करते हैंय अतः इनसे बचना समाज के स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। प्रज्ञा व्यक्ति को समाज में फैले भ्रम और पूर्वाग्रहों से मुक्त करती है। इस प्रकार, अष्टांगिक मार्ग एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए आदर्श नागरिक का निर्माण करने की एक शिक्षा–प्रक्रिया है।

2.3. अनात्मवाद और प्रतीत्यसमुत्पादः अंतर्निर्भरता की समझ

यह बौद्ध दर्शन का सबसे मौलिक और क्रांतिकारी सिद्धांत है। अनात्मवाद कहता है कि कोई स्थायी, अपरिवर्तनशील, स्वतंत्र आत्मा या स्व नहीं है। व्यक्ति पांच स्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) का एक बदलता हुआ प्रवाह मात्र है। इस सिद्धांत का गहरा सामाजिक प्रभाव है। यह जन्म आधारित अस्मिताओं (जैसे मैं ऊंची जाति का हूं) की नींव को ही खोखला कर देता है। यदि कोई स्थायी ष्आत्माष नहीं है, तो जन्म के आधार पर किसी को श्रेष्ठ या हीन ठहराना निरर्थक है।

इसी से जुड़ा है प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत। इसके अनुसार, कोई भी वस्तु या घटना स्वतंत्र रूप से उत्पन्न नहीं होतीय बल्कि अनेक कारणों और परिस्थितियों की एक साथ उपस्थिति से उत्पन्न होती है और सब कुछ एक–दूसरे पर निर्भर है। इसका सामाजिक अनुवाद यह है कि समाज एक जाल की तरह है, जहां हर व्यक्ति, हर वर्ग और हर घटना एक–दूसरे से जुड़ी हुई है। समाज का कल्याण व्यक्ति के कल्याण से और व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यह विचार सामुदायिक भावना और सामाजिक जिम्मेदारी को एक दार्शनिक आधार प्रदान करता है (कालुपहाणा, 1975)। इन सिद्धांतों ने मिलकर एक ऐसा दार्शनिक लेंस तैयार किया, जिसके माध्यम से बुद्ध ने अपने समय की सामाजिक संरचना का विश्लेषण किया और उसके विकल्प की रूपरेखा प्रस्तुत की।

3. बौद्ध दृष्टि में समाजरू जाति व्यवस्था की आलोचना और एक नैतिक समुदाय की स्थापना बौद्ध दर्शन ने जिस आत्मदर्शन और विश्व–दृष्टि को प्रस्तावित किया, उसका सीधा टकराव तत्कालीन भारतीय समाज की मुख्यधारा की सामाजिक संरचना, विशेषकर वर्ण–जाति व्यवस्था, से हुआ। बुद्ध ने इस व्यवस्था की मान्यताओं को दार्शनिक और नैतिक दोनों स्तरों पर चुनौती दी।

3.1. जाति व्यवस्था पर प्रहाररू कर्म बनाम जन्म

प्राचीन भारत में समाज का विभाजन जन्म के आधार पर निर्धारित वर्णों में हो चुका था और यह व्यवस्था धार्मिक ग्रंथों द्वारा समर्थित थी। बुद्ध ने इस जन्मगत श्रेष्ठता के दावे को सिरे से खारिज किया। उन्होंने कर्म (क्रिया) और चरित्र को मनुष्य की पहचान और मूल्य का एकमात्र आधार बताया।

बुद्ध स्पष्ट कहते थे कि न कोई ब्राह्मण माँ के गर्भ से ब्राह्मण होता है, न कोई निम्न जाति में पैदा होने से ही नीच होता है। असली ब्राह्मण वह है जो शील (नैतिकता), समाधि (मानसिक अनुशासन) और प्रज्ञा (बुद्धिमत्ता) से युक्त है। ष्वसल सुत्तष् जैसे प्रवचनों में उन्होंने घोषणा की कि व्यक्ति केवल अपने बुरे कर्मों से ही नीच होता है और अच्छे कर्मों से ही श्रेष्ठ बनता है (तिपिटक, सुत्तपिटक)। यह एक भूकंपीय सांस्कृतिक बदलाव का आह्वान था। इसने समाज में गतिशीलता और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के द्वार खोले। हैसियत अब पूर्वनिर्धारित नहीं, बल्कि अर्जित होने वाली चीज बन गई।

3.2. संघः समता और भाईचारे का प्रायोगिक मॉडल

बौद्ध धर्म की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक देन थी संघ की स्थापना। यह भिक्षुओं और भिक्षुणियों का एक धार्मिक समुदाय था, जो वास्तविक जीवन में बौद्ध सामाजिक आदर्शों को जीने का एक प्रयोगशाला जैसा था।

- समता का आधारः संघ में शामिल होने वाला हर व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति, वर्ण या सामाजिक पृष्ठभूमि से आया हो, अपने पिछले सामाजिक पद को त्याग देता था। सभी एक समान वस्त्र (चीवर) धारण करते, एक समान भोजन ग्रहण करते और समान नियमों के अधीन रहते थे। यह जातिगत भेदभाव के विरुद्ध एक जीता–जागता प्रदर्शन था।
- लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँरू संघ के निर्णय सामूहिक चर्चा और सहमति से लिए जाते थे। इसमें वोट द्वारा निर्णय (वत्थुपमुत्तक) की प्रथा भी थी। यह तत्कालीन समाज में

लोकतांत्रिक मूल्यों और सहभागिता का एक अनूठा उदाहरण था।

- शिक्षा और उन्नति का अवसररू संघ ज्ञान और शिक्षा का केंद्र था। यहां सदस्यों को पालि भाषा में शिक्षा दी जाती थी और उन्हें दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेने का मौका मिलता था। इसने ज्ञान के एकाधिकार को तोड़ने में मदद की।
- इस प्रकार, संघ ने दर्शाया कि समता, भाईचारा और अनुशासन पर आधारित एक सामाजिक इकाई कैसे कार्य कर सकती है। यह बौद्ध विचारधारा का एक जीवंत प्रतिरूप था।
- 3.3. अहिंसा और करुणारू सामाजिक संबंधों का आधारस्तंभ
- बौद्ध नैतिकता का केंद्रीय सिद्धांत अहिंसा है, जो करुणा और मैत्री की भावना से उपजती है। यह सिर्फ शारीरिक हिंसा नहीं, बल्कि वचन और विचार की हिंसा से भी बचने का आग्रह है। एक बौद्ध समाज में सामाजिक संबंध इसी आधार पर बनने चाहिए।
- शासक और प्रजा के संबंधरू बुद्ध ने राजाओं को धम्म (धर्मध्न्याय) के अनुसार शासन करने का उपदेश दिया। एक आदर्श राजा (धम्मिक धम्मराज) वह है जो प्रजा के कल्याण को सर्वोपरि रखे, न कि अपनी ताकत या सुख को। उसे दस राजधर्मों का पालन करना चाहिए, जिनमें दान, नैतिक आचरण, त्याग, ईमानदारी, सौम्यता, तपस्या, क्रोध न करना, अहिंसा, सहनशीलता और जनविरोधी न होना शामिल हैं। यह लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का प्रारंभिक स्वरूप था (अम्बेडकर, 1957)।
- सामुदायिक जीवनः करुणा के सिद्धांत ने सामाजिक सुरक्षा और पारस्परिक सहायता को प्रोत्साहित किया। दान (दान) को एक महत्वपूर्ण पुण्य कर्म माना गया, जिससे समृद्ध लोग जरूरतमंदों की सहायता कर सकें। इससे एक पारस्परिक निर्भरता और देखभाल का माहौल बनाने का प्रयास हुआ।
- बौद्ध दृष्टि में, एक स्वस्थ समाज वह है जहां व्यक्ति केवल अपने अधिकारों के बारे में नहीं, बल्कि दूसरों के कल्याण और दुख–निवारण की जिम्मेदारी के बारे में भी सोचे। यही करुणा की सक्रिय अभिव्यक्ति है।

4. ऐतिहासिक प्रभाव एवं निष्कषर्रू एक स्थायी विरासत

बौद्ध धर्म के उदय ने प्राचीन भारतीय समाज पर एक गहरा और बहुआयामी प्रभाव छोड़ा। भले ही भारत में इसका संगठित रूप कमजोर पड़ गया, किंतु इसकी सामाजिक और बौद्धिक विरासत भारतीय सभ्यता का एक अविभाज्य अंग बन गई।

4.1. सामाजिक संरचना पर दीर्घकालिक प्रभाव

☐ जाति व्यवस्था में छिद्ररू बौद्ध धर्म ने जाति व्यवस्था के दार्शनिक और नैतिक आधार पर जो प्रहार किया, उससे यह व्यवस्था पहले जैसी अटूट और दैवीय नहीं रह गई। इसने निम्न जातियों के बीच गरिमा और आत्म–सम्मान की भावना को जगाने का काम किया। बाद के सुधारवादी आंदोलनों, जैसे भक्ति आंदोलन, में बौद्ध विचारों की समता और आंतरिक मूल्य की भावना की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है।

- भाषा और शिक्षा का लोकतंत्रीकरणरू बुद्ध ने अपने उपदेश जनसाधारण की भाषा पालि में दिए, न कि ब्राह्मणवादियों की संस्कृत में। इसने धार्मिक और दार्शनिक चिंतन को एक सीमित वर्ग के एकाधिकार से मुक्त कर समाज के व्यापक तबके तक पहुंचाया। शिक्षा अब केवल गुरुकुलों तक सीमित न रहकर संघों और विहारों में सबके लिए उपलब्ध होने लगी।
- कला, वास्तुकला और संस्कृतिरू मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाकर अहिंसा और धम्म को राज्य के सिद्धांत बनाए। इससे शिलालेखों के माध्यम से संदेश प्रसार, स्तूपों और विहारों के निर्माण को बढ़ावा मिला। यह भारतीय कला और वास्तुकला के स्वर्णयुग की शुरुआत थी। बौद्ध विहार केवल धार्मिक केंद्र नहीं, बल्कि शिक्षा, चिकित्सा और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के केन्द्र भी बने।

4.2. **निष्कर्षः**

एक सार्वभौमिक सामाजिक दर्शन

इतिहास के पन्नों को पलटकर देखें तो स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म केवल मोक्ष का मार्ग नहीं थाय वह मानवीय संबंधों और सामाजिक संगठन का एक नया प्रतिमान भी था। इसने समाज को देखने की एक वैज्ञानिक और नैतिक दृष्टि प्रदान की।

इसकी मौलिकता इस बात में है कि इसने सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत व्यक्ति के आंतरिक परिवर्तन से की। चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग व्यक्ति को स्वार्थ, लोभ और घृणा से मुक्त करते हैं। अनात्मवाद और प्रतीत्यसमुत्पाद हमें यह समझाते हैं कि हम सब एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस आत्म–परिवर्तन और अंतर्निर्भरता की समझ से ही एक करुणामय, न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की नींव पड़ सकती है।

बुद्ध ने जन्म के स्थान पर कर्म को, दिखावे के स्थान पर चरित्र को, और भेदभाव के स्थान पर समता को सामाजिक मानदंड बनाने का आह्वान किया था। उनका संघ इस बात का प्रमाण था कि ऐसा समाज सिर्फ एक कल्पना नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक वास्तविकता हो सकता है।

आज जब दुनिया सामाजिक विषमता, हिंसा और पर्यावरणीय संकट से जूझ रही है, बौद्ध धर्म का यह सामाजिक

दर्शन और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। यह हमें याद दिलाता है कि कोई भी स्थायी शांति और समृद्धि वैयक्तिक लालसा और प्रतिस्पर्धा से नहीं, बल्कि सामूहिक जिम्मेदारी, नैतिक सजगता और सबके प्रति करुणा से ही संभव है। इस अर्थ में, बौद्ध धर्म का सामाजिक संरचना का दर्शन केवल इतिहास का एक अध्याय नहीं, बल्कि मानवता के भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक प्रकाश–स्तंभ बनकर खड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अम्बेडकर, भीमराव रामजी (1957). द बुद्धा एंड हिज धम्मा. सिद्धार्थ प्रकाशन।
2. कालुपहाणा, डेविड जे. (1975). कौशलरू बुद्धिस्ट थियरी ऑफ केजुएलिटी. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास।
3. राहुल सांकृत्यायन (1956). बुद्धचर्या. दिल्लीरू किताब महल।
4. सोमदेव (1998). बौद्ध दर्शन का विकास. वाराणसीरू चौखंबा विद्याभवन।
5. तिपिटक (पालि कैनन). सुत्तपिटक (विभिन्न सुत्त, जैसे– वसल सुत्त, धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त आदि)।

मुकुंद कुमार,
सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग,
टी० पी० एस० कॉलेज,
पटना, बिहार.

44

समकालीन हिंदी साहित्य में प्रतिरोध के स्वर

डॉ0 अनिल कुमार अनल

सारांश

असल में समकालीन हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विरोध और संघर्ष के स्वरों पर विचार करना वस्तुतः आधुनिक भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास का पुनर्पाठ करना है। इक्कीसवीं सदी के पहले पच्चीस वर्ष, तथा बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के लगभग पाँच दशकों का हिंदी साहित्य, भारतीय अस्मिता, लोकतंत्र, मानवाधिकार, जाति और वर्ग सम्बन्धी विषमता, लैंगिक असमानता, सांप्रदायिकता, बाजारवाद, वैश्वीकरण, उदारीकरण , निजीकरण ,पर्यावरणीय संकट और सांस्कृतिक विघटन के प्रश्नों से गहरे रूप में जूझता है। यह जूझना ही विरोध और संघर्ष का मूल स्वर है, जो कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, रिपोर्ताज, डायरी, पत्र, स्तंभ, जनगीत, ब्लॉग और सोशल मीडिया लेखन तक में प्रस्फुटित होता है। वास्तव में विरोध का अर्थ मात्र नकार या असहमति नहीं है, बल्कि प्रतिपक्ष की चेतना, नैतिक आक्रोश, न्याय और बराबरी की माँग और वैकल्पिक सामाजिक अवधारणा की कल्पना का निर्माण भी है। इसी प्रकार संघर्ष भी केवल भौतिक टकराहट नहीं है, बल्कि वैचारिक, संवेदनात्मक, सौंदर्यात्मक और संस्थागत स्तर पर चल रही परिवर्तन की लम्बी प्रक्रिया है, जिसमें सत्ता और समाज, व्यक्ति और समुदाय, परंपरा और आधुनिकता, धर्म और विवेक, पूँजी और श्रम, केंद्र और हाशिया, पुरुष और स्त्री के बीच बहुस्तरीय टकराहटें, वार्ताएँ और खींच तान, वाद विवाद एवं संवाद तथा विमर्श एवं समन्वय की जटिल दिशाएँ दिखाई देती हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में विरोध और संघर्ष के स्वर जिन प्रमुख ध्रुवों के इर्द गिर्द सक्रिय हैं, उन्हें मोटे तौर पर इस प्रकार समझने का प्रयास किया जा सकता है। जैसे जाति, वर्ग और वंचना के विरुद्ध संघर्ष , स्त्री अस्मिता और पितृसत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध, धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता , राज्य, सत्ता प्रतिष्ठान एवं व्यवस्थागत विकास और लोकतांत्रिक अधिकारों के बीच टकराव , वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के विरुद्ध साहित्यिक प्रतिवाद , आदिवासी, अल्पसंख्यक, हाशियाकृत समुदायों की आवाज पर्यावरणीय संकट, विस्थापन और पारिस्थितिकीय न्याय, भाषा, संस्कृति और स्मृति पर होने वाले आक्रमणों के विरुद्ध सृजनात्मक संघर्ष, रचना और प्रतिबद्धता तथा कला और राजनीति के आपसी द्वंद्व का साहित्यिक रूप आदि विचारणीय बिन्दु हैं।

अतः उपर्युक्त इन सभी बिंदुओं पर विस्तृत और गहन विचार किए बिना समकालीन हिंदी साहित्य में विरोध और संघर्ष के स्वरों की समग्र समझ विकसित नहीं हो सकती है। इसलिए इन सभी आयामों पर क्रमवार, परस्पर संबद्धता के साथ, गहराई और विस्तार सहित विवेचन और विश्लेषण करते हुए विशद परिधि में देखने तथा समझने का प्रयास किया जाना यहां प्रासंगिक है।

एतदर्थ पहले इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और समकालीनता की अवधारणा पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

अतः समकालीन हिंदी साहित्य को केवल वर्तमान समय में लिखे जा रहे साहित्य के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। बल्कि समकालीनता वैश्विक परिदृश्य में एक ऐतिहासिक, वैचारिक और सौंदर्यात्मक संकल्पना है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता से लेकर नई कहानी, साठोत्तर कहानी, जनवादी तथा यथार्थवादी धारा, स्त्रीवादी लेखन, दलित लेखन, आदिवासी लेखन, उत्तर आधुनिक और उत्तर औपनिवेशिक विमर्श, तथा इक्कीसवीं सदी के डिजिटल युग तक फैला हुआ यह साहित्यिक परिदृश्य एक सतत विकासशील तथा समृद्धि की बहुआयामी और व्यापक प्रक्रिया है।

प्रगतिवादी आंदोलन ने जिस तरह औपनिवेशिकता, साम्राज्यवाद, फासीवाद,सामंती शोषण और वर्गीय विषमता के विरुद्ध विरोध की वैचारिक जमीन तैयार की, उसने आगे चल कर समकालीन हिंदी साहित्य के संघर्षधर्मी स्वर को तार्किक दृष्टि तथा मजबूत आधार प्रदान किया। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और शमशेर जैसे कवियों में जो तीखा सामाजिक राजनीतिक असंतोष दिखता है, वह बाद की पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना है। मुक्तिबोध की कविता में जो गहन आत्म संघर्ष और सत्ता विरोधी विवेक है, वह आज के अनेक कवि लेखकों के भीतर प्रतिध्वनित होता है।

साठोत्तर हिंदी साहित्य में जनतांत्रिक संस्थाओं के खोखलेपन, विकास के अंतर्विरोधों, बढ़ती हुई असमानताओं, शहरीकरण की प्रवृत्ति, प्रव्रजन और उपभोक्तावाद की आहटें उभरने लगीं। रघुवीर सहाय, धूमिल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानीप्रसाद मिश्र, किशन पटनायक जैसे लेखकों का साहित्य सामाजिक यथार्थ के भीतर छिपी हुई विडंबनाओं को उजागर करता है। धूमिल की कविता में जो गुस्सा और तिक्तता है, वह लोकतांत्रिक ढोंग, राजनीतिक भ्रष्टाचार और जनता की बेचारगी के खिलाफ है।

इसी पृष्ठभूमि में आपातकाल, मंडल आन्दोलन से प्रभावित उत्तर भारत की राजनीति, उदारीकरण, सूचना क्रांति, सांप्रदायिक हिंसा, आतंकवाद विरोधी नीतियों, ग्रामीण भारत के विघटन, किसान

की आत्महत्याओं, कारपोरेट पूँजी के वर्चस्व और मीडिया के बाजारीकरण जैसी घटनाओं ने साहित्य के लिए नए प्रश्न खड़े किए। वस्तुतरू समकालीन साहित्य की सभी विधाएं इन्हीं समस्याओं और घटनाक्रमों से टकराते हुए अपना विरोध और संघर्ष का तेवर निर्मित करती हैं।

जाति, वर्ग और वंचना के विरुद्ध संघर्ष समकालीन साहित्य का महत्वपूर्ण विषय रहा है। समकालीन हिंदी साहित्य में विरोध और संघर्ष का सबसे तीखा और मौलिक स्वर जाति व्यवस्था और उससे उपजी संरचनात्मक असमानताओं तथा भेदभाव के विरुद्ध दिखाई देता है। दलित साहित्य ने इसी संघर्ष को तार्किक आधार प्रदान कर वैचारिक और सृजनात्मक दोनों स्तरों पर सबसे अधिक मुखर किया है।

दलित आत्मकथाएँ, कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास भारतीय समाज के उस अंधेरे हिस्से को सामने लाती हैं, जिसे मुख्यधारा साहित्य और इतिहास अक्सर छिपा कर रखते आए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिशराय, कौशल्या बैसंत्री, शरणकुमार लिंबाले, तुलसीराम, कँवल भारती, श्यौराज सिंह बेचौन, सुनीता कर्ण, नीना पॉल, बचन सिंह आदि के लेखन में विरोध का स्वर केवल भावात्मक आक्रोश नहीं, बल्कि राजनीतिक चेतना, आत्मसम्मान और संगठन की पुकार भी है।

दलित कथाकारों की रचनाओं में वर्णित गाँव कस्बों के सामाजिक संबंध, अस्पृश्यता की अमानवीय विडम्बना, शिक्षा और रोजगार में भेदभाव, पुलिस और न्याय व्यवस्था की पक्षधरता, धार्मिक अनुष्ठानों में दोहरे मानदंड, यहाँ तक कि वाम और प्रगतिशील कहे जाने वाले वर्गों के भीतर भी जातिगत पूर्वाग्रहों का चित्रण, यह सब मिल कर एक गहरे सामाजिक संघर्ष की तस्वीर पेश करते हैं।

समकालीन कविताओं में भी जातिप्रथा एवं जातिवाद के विरुद्ध प्रतिरोध के अनेक उदाहरण मिलते हैं। बहुजन कविता या दलित कविता के नाम से चली बहसों के बीच यह तथ्य उभर कर आता है कि अब केवल ऊपरी सहानुभूति या दया के स्वर पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि अश्पृश्यकृत और बहिष्कृत समुदाय स्वयं अपनी भाषा में अपनी कहानी कह रहे हैं और यह भाषा सशक्त, कठोर तथा निर्भीक और कई बार असुविधाजनक भी है।

विरोध का यह स्वर अभिजात्य ऊँची जाति के उदारवाद के खोखलेपन को भी चुनौती देता है। पहले जहाँ शोषण और उत्पीड़न को व्यक्तिगत नैतिकता के प्रश्न तक सीमित करके देखा जाता था, अब उसे संरचनात्मक अन्याय की संज्ञा दी जाने लगी है। यह परिवर्तन स्वयं में संघर्ष की एक वैचारिक उपलब्धि है। समकालीन हिंदी आलोचना में भी यह सवाल उठाया जा रहा है कि परंपरागत साहित्यिक मूल्यांकन पद्धति दलित और बहुजन साहित्य को किस तरह हाशिए पर धकेलती रही है। प्रोफेसर बजरंग बिहारी तिवारी ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।

वर्गीय संघर्ष और श्रम की अवमानना के खिलाफ हिंदी साहित्य में रचनात्मकता की लम्बी और सुदीर्घ परंपरा रही है। समकालीन हिंदी साहित्य की सभी विधाओं ने इस रचनात्मकता की परम्परा में नये तेवर और नयी धार प्रदान कर इसे आगे बढ़ाया है। इस तरह वर्गीय शोषण और पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ विरोध का यह स्वर प्रगतिवादी परंपरा से ही चला आ रहा था, लेकिन समकालीन समय में उसने नए रूप धारण किए हैं। पहले जहाँ सामंत और जमींदार, किसान और मजदूर के पारंपरिक द्वंद्व पर जोर था, अब उनके विस्तृत रूप अनौपचारिक श्रम, प्रवासी मजदूर, ठेका प्रणाली, औद्योगिक बंदी, निजीकरण, आउटसोर्सिंग और गिग इकॉनमी जैसे नए यथार्थ उभर कर सामने आये हैं।

कई समकालीन कविताएँ और कहानियाँ इस बदले हुए श्रम संसार की त्रासदी को सामने लाती हैं। ईंट भट्ठों, खदानों, निर्माण स्थलों, कॉल सेंटर्स, मल्टीनेशनल कंपनियों और बड़े और महानगरों की झुग्गी झोपड़पट्टियों में जी रहे श्रमिकों के अनुभवों में जो जीवन संघर्ष है, वह केवल रोटी और मजदूरी का नहीं है, बल्कि वह मानवीय गरिमा का संघर्ष है। इस श्रम संसार में सृजनात्मक स्तर पर विरोध का स्वर अक्सर ट्रेड यूनियन की परंपरागत भाषा से अलग है। वह दरअसल बिखरे हुए, असंगठित और अस्थायी कामगारों की असुरक्षा, अकेलेपन और अस्थिरता को अभिव्यक्त करता है।

समकालीन साहित्य में किसान आंदोलन, हरित क्रांति के दुष्परिणाम, कर्ज के भंवर जाल, सूखे और बाढ़ से जुड़ी हुई आपदाएँ, कृषि नीतियों में कॉरपोरेट घुसपैठ, बीज और खाद कंपनियों का नियंत्रण, न्यूनतम समर्थन मूल्य की जटिलताएँ, इन सब पर आधारित अनेक रचनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन रचनाओं में विरोध का स्वर प्रायः वर्तमान विकास मॉडल पर ही प्रश्न उठाता है। वह पूछता है कि किसके लिए विकास हो रहा है और किसकी कीमत पर विकास हो रहा है।

इस दौर में स्त्री अस्मिता के संरक्षण और संवर्धन के लिए पितृसत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध विश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण और ज्वलंत मुद्दा है। इसलिए समकालीन हिंदी साहित्य में विरोध और संघर्ष की कोई चर्चा स्त्री लेखन के बिना अधूरी है। स्त्रीवादी दृष्टि से देखें तो समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्रियों ने मात्र विषय वस्तु बन कर रहना स्वीकार नहीं किया, बल्कि स्वयं लेखक के

रूप में, वैचारिक हस्तक्षेपकारी के रूप में पितृसत्ता के वर्चस्व के विभिन्न रूपों को चुनौती दी है। इस दिशा में हिंदी की स्त्री लेखिकाओं ने घरेलू जीवन, विवाह संस्था, प्रेम, मातृत्व, काम, देह, इच्छा, यौनिकता, धर्म, जाति, भाषा और राष्ट्र जैसे विषयों को स्त्री अनुभव की दृष्टि से पुनर्परिभाषित किया है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, शिवानी, मोहिनी, नासिरा शर्मा, अनामिका, कँवल भारती की स्त्री संबंधी रचनाएँ, कुमुद शर्मा, सुचित्रा भट्टाचार्य, गीतांजलि श्री, मनीषा कुलश्रेष्ठ, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, अलका सरावगी, अनिता भारती आदि के लेखन में पितृसत्तात्मक वर्चस्व के विरोध में प्रतिरोध और संघर्ष के स्त्रीवादी स्वर अनेक स्तर परिलक्षित होते हैं।

इन लेखनों में केवल पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता का विरोध नहीं है, बल्कि स्त्री के अंदर बसी हुई विकसित पितृसत्तात्मकता, उसकी अंतर्निहित गुलामी के माइंडसेट तथा आत्मग्लानि और मौन के विरुद्ध भी संघर्ष है। इन रचनाओं में स्त्री अपने हिस्से की भाषा तलाशती है, अपने अनुभवों को व्यक्त करती हैं तथा अपनी इच्छाओं और सपनों को वैधता देती हैं।

इससे भी आगे बढ़कर समकालीन स्त्री कविता में शरीर और देह की राजनीति से जुड़े प्रश्न खुलकर सामने आते हैं। देह को शर्म और पाप के रूप में देखने की जगह वहां वे आनंद, अधिकार और आत्मनिर्णय के स्रोत के रूप में देखती हैं। विवाह संस्था के भीतर की हिंसा, दहेजप्रथा, वैवाहिक बलात्कार, गर्भपात, बेटियों का वध और उसकी उपेक्षा, स्त्री के काम को अदृश्य बनाकर उसका शोषण, ये सब स्त्रीवादी कविता और कहानी के महत्त्वपूर्ण विषय हैं।

फिर इसके साथ ही कामकाजी स्त्री, शिक्षित मध्यवर्गीय स्त्री, स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी हुई ग्रामीण स्त्रियाँ, फैक्ट्री और ऑफिसों में कार्यरत स्त्रियाँ, दलित और आदिवासी स्त्रियाँ, मुस्लिम स्त्रियाँ, किन्नर और ट्रांसजेंडर स्त्रियाँ, इन सबका अपना अलग लेकिन आपस में जुड़ा हुआ संघर्ष है । इस तरह समकालीन इंद्रधनुषी हिंदी साहित्य अब विविध स्त्री अस्मिताओं को पहचानने लगा है।

यहाँ पर विरोध केवल पुरुष के खिलाफ स्त्री का संघर्ष नहीं है, बल्कि वर्चस्व और असमानता की समग्र अधिसंरचना के खिलाफ है। स्त्री लेखन यह दिखाता है कि घर, भाषा, धर्म , संस्कृति और राष्ट्र की पारंपरिक धारणाएँ किस तरह स्त्री शरीर और उसकी एजेंसी को नियंत्रित करने के औजार बन जाती हैं।

इस बीच धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता की समस्या भी देश में छायी रही है। देश ने इसकी बड़ी कीमत चुकाई है। इसमें बड़े पैमाने पर धन और जन की हानि हुई है। इसकी त्रासदियों ने देश की वैचारिकी और विज्ञान तथा अनुसंधान एवं आर्थिक विकास दर को भी प्रभावित किया है। इसलिए इसने समकालीन हिंदी साहित्य को परेशान और चिंतित किया है।

स्वतंत्र भारत के इतिहास में सांप्रदायिक दंगों, विभाजन की स्मृतियों, बाबरी मस्जिद विध्वंस, गुजरात, मुजफ्फरनगर, दिल्ली और अन्य स्थानों पर हुई हिंसाओं ने हिंदी साहित्य को विचलित और चिंतित किया है। समकालीन हिंदी रचनाकारों को साम्प्रदायिकता की राजनीति, भीड़ हिंसा, घृणा अभियानों, अल्पसंख्यकों के प्रति संदेह, नफरत और भय एवं संसय के माहौल के खिलाफ साहित्यिक मोर्चा खोलना पड़ा है।

कई कहानियाँ और उपन्यास हिंदू मुस्लिम संबंधों की जटिलता और अलगाव को भाईचारा,सह–अस्तित्व, साझा संस्कृति और मानवीय रिश्तों के स्तर पर दिखाते हैं। बचपन की दोस्ती, पड़ोस के पारिवारिक रिश्ते, आपसी सहकार, रसोई और रीति रिवाजों की साझेदारी, भाषा और संगीत में घुलमिल कर बने भारतीय सांस्कृतिक यथार्थ को सामने रखकर सांप्रदायिक राजनीति के विभाजनकारी दावों की आलोचना की जाती रही है।

साथ ही, यह भी दिखाया जाता है कि किस तरह राजनीतिक दल, धार्मिक संगठन, मीडिया, शिक्षा प्रणाली और सोशल मीडिया के माध्यम से नफरत फैलाई जाती रही है। अफवाह, फर्जी खबर, उकसावे वाले भाषण, एकतरफा इतिहास, पाठ्यपुस्तकों में बदलाव, सिनेमा और धारावाहिकों के जरिए निर्मित प्रोपेगैंडा, ये सब साहित्यिक रचनाओं में विवेचन और विश्लेषण का विषय बनते हैं।

धर्मनिरपेक्षता यहाँ किसी अमूर्त आदर्श के रूप में नहीं है, बल्कि रोजमर्रा के जीवन के साझा अनुभवों, धार्मिक बहुलता, लोक आस्थाओं की समन्वयकारी प्रवृत्ति और संवैधानिक समानता के सिद्धांतों के रूप में सामने आती है। यहां विरोध का स्वर उन ताकतों के खिलाफ है जो धर्म के नाम पर नागरिकता, अधिकार, कानून और न्याय की अवधारणाओं को संकुचित या विभेदकारी बनाना चाहती रही हैं।

इसी तरह राज्य, विकास और बढ़ती हुई विषमता तथा लोकतांत्रिक अधिकारों के बीच टकराव भी यहां देखने को मिलता है। समकालीन हिंदी साहित्य में विरोध और संघर्ष के स्वर का एक मुख्य आयाम राज्य सत्ता, विकास योजनाओं और आम नागरिक, खासकर गरीब, किसान, मजदूर, आदिवासी, अल्पसंख्यक, स्त्री और दलित के अधिकारों के बीच टकराव से जुड़ा है।

विकास की नीतियों के नाम पर भूमि अधिग्रहण, बड़े बाँधों का निर्माण, औद्योगिक परियोजनाएँ, विशेष आर्थिक क्षेत्र, शहरीकरण, मेट्रो, एक्सप्रेस वे, बंदरगाह, खान, ये सब आम तौर पर प्रगति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। लेकिन साहित्य यह दिखाता है कि इन परियोजनाओं की असली कीमत कौन चुकाता है। किस तरह गाँव उजड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं, जंगल कटते हैं, नदियाँ प्रदूषित होती हैं, स्त्रियाँ और बच्चे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, आदिवासी अपनी जमीन, जंगल, जल और संस्कृति से बेदखल हो जाते हैं।

समकालीन रचनाओं में विरोध का स्वर राज्य के दमनकारी चरित्र, पुलिस और अर्धसैनिक बलों की हिंसा, कानूनों के मनमाने इस्तेमाल, मीडिया की चुप्पी या पक्षधरता, न्यायालयों की धीमी और कभी पक्षपाती प्रक्रिया और जन आंदोलनों को कुचलने की रणनीतियों के खिलाफ है। नक्सलवाद या माओवादी आंदोलन, अलगाववादी संघर्ष, राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर दमन, इन सब संदर्भों में भी साहित्यिक रचनाएँ पैदा हुई हैं, जो न केवल राज्य की कथित विकास कथा पर सवाल उठाती हैं, बल्कि हिंसा, प्रतिहिंसा और हथियारबंद संघर्ष की भी आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करती हैं।

समकालीन समय में लोकतंत्र के भीतर लगातार लोकतंत्र का क्षरण होता हुआ दिखाई पड़ रहा है। चुनाव, संसद, विधानसभाएँ, पंचायत, मीडिया, न्यायपालिका, विश्वविद्यालय और अकादमिक संस्थान, ये सब लोकतंत्र के स्तंभ माने जाते हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में विरोध का स्वर इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि इन स्तंभ संस्थानों के भीतर भी गैर लोकतांत्रिक प्रवृत्तियाँ घर कर गई हैं।

कई रचनाएँ चुनावी राजनीति के अपराधीकरण, धनबल और बाहुबल के प्रभाव, दल बदल, अवसरवाद, मीडिया ट्रायल, विज्ञापन के रूप में खबर, कॉरपोरेट और राजनीतिक गठजोड़, सामाजिक न्याय की राजनीति के नाम पर परिवारवाद और जातिवाद, अल्पसंख्यकों और वंचितों की प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व तक सीमित भागीदारी, इन सभी समस्याओं तथा विसंगतियों को सामने लाती रही हैं।

विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों में उग्र राष्ट्रवाद, असहमति के दमन, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर अंकुश, छात्र आंदोलनों और अध्यापकों की आलोचनात्मक भूमिका पर हमले, पाठ्यक्रमों में बदलाव, भाषा और इतिहास के पुनर्लेखन जैसी प्रवृत्तियाँ भी समकालीन साहित्य का विषय बनती रही हैं। यहाँ विरोध और संघर्ष का स्वर केवल सरकार और सत्ता प्रतिष्ठान की नीतियों के खिलाफ नहीं, बल्कि ज्ञान और वैचारिकी तथा संवेदनात्मक सत्य के दमन के विरुद्ध भी है।

इसी तरह वैश्वीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद के विरुद्ध प्रतिवादकारी स्वर भी समकालीन हिंदी साहित्य में मुखर रहा है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों ने भारतीय समाज और हिंदी साहित्य दोनों पर गहरा प्रभाव डाला है। एक ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, उपभोक्ता संस्कृति, ब्रांड, विज्ञापन, रियलिटी शो, सोशल मीडिया, मोबाइल क्रांति और इंटरनेट ने जीवन शैली में तेज बदलाव किए, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी, संविदा श्रम, असुरक्षा, रिश्तों की बनावटीपन, पर्यावरणीय विनाश और सांस्कृतिक विघटन जैसी समस्याएँ भी बढ़ीं हैं।

समकालीन हिंदी रचनाकारों ने इस नए यथार्थ को गहराई से पकड़ा है। शॉपिंग मॉल, फास्ट फूड, मल्टीप्लेक्स, आईटी पार्क, कॉल सेंटर, बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग, स्टार्टअप, इन सबकी चमक दमक के पीछे छिपी मानवीय थकान, तनाव, अकेलापन, प्रतिस्पर्धा, नैतिक संकट और पहचान की उलझनें आदि उपन्यास,कहानियों और कविताओं में जगह पाती रही हैं।

आज उपभोक्तावाद की संस्कृति में सब कुछ वस्तु में बदल जाता है। प्रेम, मित्रता, शरीर, ज्ञान, धर्म, यहाँ तक कि विरोध भी एक ब्रांड और फैशन में बदलने लगता है। समकालीन साहित्य इस प्रक्रिया का विखंडन करता है। वह दिखाता है कि किस तरह विज्ञापन की भाषा और छवियाँ हमारी इच्छाओं, आकांक्षाओं और सपनों को नियंत्रित करती हैं। जल्दी सफल होने, अमीर बनने, मशहूर होने के दबाव में युवा पीढ़ी किस तरह अपनी संवेदनाओं, रचनात्मकता और नैतिक विवेक से दूर होती जा रही है।

यहाँ विरोध और संघर्ष का स्वर ऐसे जीवन के पक्ष में है जिसमें सरलता, सादगी,सामूहिकता, पर्यावरण के प्रति संवेदना, श्रम के प्रति सम्मान, सांस्कृतिक विविधता और मानवीयता के मूल्य अक्षुण्ण बने रहें। कई रचनाएँ ग्रामीण जीवन, लोक संस्कृतियों, साझी विरासत, स्वदेशी परंपराओं की पुनर्स्मृति करती हैं, लेकिन किसी भावुक और रोमानी प्रत्यावर्तन के बजाय आलोचनात्मक दृष्टि से निर्मल जीवन पद्धति की हिमायत करती हुई दिखाई देती हैं।

आदिवासी, हाशियाकृत समुदाय और सांस्कृतिक प्रतिरोध भी समकालीन हिंदी साहित्य का केन्द्रीय विषय रहा है। वस्तुतरू आदिवासी समाजों का साहित्य, या आदिवासी विषयों पर लिखा गया हिंदी साहित्य, समकालीन समय में विरोध और

संघर्ष की सबसे प्रासंगिक अभिव्यक्तियों में से एक है। जंगलों में रहने वाले समुदायों की दुनिया केवल गरीबी और पिछड़ेपन की कहानी नहीं है, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलित जीवन, सामुदायिक निर्णय प्रक्रिया, साझा श्रम, अनुष्ठान, मिथक और कथा परंपरा की समृद्ध संरचना भी है।

लेकिन विकास की मुख्यधारा की नीतियों ने इन्हीं समुदायों को सबसे अधिक पीड़ित और प्रभावित किया है। खनन, बाँध, एवं सड़कों के विस्तार तथा बड़े बड़े डाइम परियोजनाओं के विनिर्माण के चलते इन्हें विस्थापन और विखंडन का दंश झेलना पड़ा है।

एतदर्थ समकालीन हिंदी साहित्य की सभी विधाओं ने अपनी उत्कृष्ट कलात्मकता के साथ समाज के सभी वर्गों और धर्मों के जनमानस की समस्त समस्याओं के सभी पहलुओं के यथार्थ चित्रण करते हुए यह स्पष्ट रूप में रेखांकित किया है कि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं है बल्कि समस्त समस्याग्रस्त विकृति जनित विडम्बनाओं का दृश्यात्मक आपरेशन थियेटर भी है। इसने कलात्मकता के स्तर पर, आधुनिकतम सौन्दर्यशास्त्रीय सैद्धांतिकी एवं वैचारिकी के स्तर पर तथा विविधता और विस्तार के स्तर पर अपनी समस्त जिम्मेदारियों के साथ विश्व साहित्य के समक्ष प्रतिष्ठित है।

संदर्भ सूचीः

1.कहानीरू विचारधारा और यथार्थ, वैभव सिंह, वाणी प्रकाशन, दरिया गंज,नयी दिल्ली।

2.हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, मैनेजर पांडेय, वहीं।

3.उपन्यास और देस, वीरेन्द्र यादव,सेतु प्रकाशन, नोएडा, उत्तर प्रदेश।

4.विचार के वातायन, विनोद तिवारी, वहीं।

5.आलोचना का पक्ष, रमेश चंद्र साह, वाग्देवी प्रकाशन, नोएडा, उत्तर प्रदेश 6.साहित्य का स्वभाव,नन्द किशोर आचार्य, वहीं।

7.रंगमंच की कहानी, देवेन्द्र राज अंकुर, वाणी प्रकाशन, दरिया गंज नयी दिल्ली।

8.आलोचना का जनतंत्र, नामवर सिंह, वहीं।

9.स्त्री विमर्श का नया चेहरा, अल्पना मिश्र, वहीं।

10.उत्तर–आधुनिक युग,नयी आधुनिकता, इन्द्र नाथ चौधरी, वहीं।

11.कहानीः स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, वहीं।

12.उपन्यासः स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, वहीं।

13.अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य,डा.रजत रानी मीनू, वहीं।

डॉ0 अनिल कुमार अनल

(एम. ए. हिंदी, नेट उत्तीर्ण, पीएच. डी)

उत्क्रमित उच्च माध्यमिक विद्यालय, तरैया ग्राम़पो श्याम बाजार, थाना–बौंसी–जनपद –बांका (बिहार)813104

चलभाष–7547300104

Email- anilkumaranal7549300@gmail-com

45

GST 2.0: Balancing Growth and Fiscal Prudence in India's Indirect Tax Reforms

Dr. Shikha

Abstract

The Goods and Services Tax (GST) has completed seven years of implementation, transitioning from a stabilization phase to a maturity phase, often termed GST 2.0. This next generation of reforms faces a fundamental policy dilemma: fostering economic growth through tax simplification and rate reduction, while simultaneously maintaining the fiscal prudence necessary for sustainable public finances. This paper examines the intricate balance between these competing objectives in the ongoing GST reform agenda. Drawing upon secondary data from the Economic Survey of India, the Reserve Bank of India (RBI), the GST Council, and NABARD, this article analyzes the trajectory of GST revenues, the compensation regime's legacy, and the macroeconomic implications of rate rationalization. The analysis incorporates data tables illustrating revenue trends, state-wise fiscal dependence, and the revenue-neutral rate challenge. The findings suggest that GST 2.0 must navigate a narrow path: pursuing rate simplification to unlock consumption and investment multipliers, while leveraging technological advancements in tax administration to safeguard revenue buoyancy. The paper concludes that a dynamically efficient GST framework, anchored in fiscal prudence, is essential for India's medium-term macroeconomic stability and growth trajectory.

Keywords: GST 2.0, Fiscal Prudence, Economic Growth, Revenue Buoyancy, Tax Compliance, Fiscal Federalism.

JEL Codes: H20 (Taxation), H21 (Efficiency; Optimal Taxation), H60 (National Budget, Deficit, and Debt), E62 (Fiscal Policy).

1. Introduction

The implementation of the Goods and Services Tax (GST) in July 2017 marked a paradigmatic shift in India's indirect tax architecture. By dismantling inter-state fiscal barriers and creating a unified national market, the reform was expected to augment economic growth, enhance tax compliance, and improve the ease of doing business (Mukherjee & Rao, 2020). As the regime enters its eighth year, the initial phase of stabilization and correction has given way to a more deliberative phase of optimization—referred to in policy circles as GST 2.0 (Goyal, 2023). This new phase is defined not merely by incremental rate adjustments but by a fundamental reimagining of the tax structure to align with India's aspirations of becoming a developed nation.

However, the path to GST 2.0 is fraught with a critical policy tension: the imperative to stimulate economic growth through tax simplification and reduced compliance burdens must be carefully weighed against the non-negotiable requirement of fiscal prudence. Fiscal prudence, in the Indian context, encompasses maintaining a sustainable fiscal deficit, ensuring adequate resource transfer to states, and preserving fiscal space for developmental spending (RBI, 2024). The GST, being the primary source of indirect tax revenue for both the Centre and States, is central to this fiscal calculus.

The current discourse on GST rate rationalization, including the proposed shift towards a simpler two or three-slab structure, epitomizes this growth-prudence trade-off. Proponents of aggressive simplification argue that lower and fewer tax rates boost consumption, reduce litigation, and improve voluntary compliance, thereby expanding the tax base and potentially increasing revenues in the long run (Dasgupta, 2022). Conversely, fiscal conservatives caution that any significant reduction in tax rates could create a substantial revenue gap, undermining the fiscal consolidation efforts of both the central and state governments (Chakraborty & Gupta, 2023).

This paper seeks to dissect this complex balancing act. It evaluates the performance of GST Phase 1, delineates the growth-oriented rationale for GST 2.0, analyzes the fiscal prudence constraints, and discusses the technological levers for balancing these objectives.

2. GST Phase 1 (2017-2024): Performance Assessment and Baseline Establishment

Understanding the trajectory of GST revenues during the first seven years is essential for calibrating the reforms of GST 2.0. The period witnessed significant volatility, including the disruptive shock of the COVID-19 pandemic, followed by a robust recovery and stabilization.

2.1 Revenue Trajectory and Buoyancy

The gross GST collection has demonstrated remarkable

resilience and growth, particularly in the post-pandemic period. From an average monthly collection of approximately ₹89,500 crore in the inaugural year, the regime has consistently breached the ₹1.6 lakh crore mark in FY 2023-24. This growth is indicative of both economic expansion and improved compliance through technological measures such as e-invoicing (GST Council, 2023). **Table 1** presents the annual gross GST collections and the implied tax buoyancy.

Table 1: Gross GST Collections and Tax Buoyancy (2017-18 to 2023-24) Financial YearGross GST Collection (₹ Crore)Year-on-Year Growth (%)Nominal GDP Growth (%)Implied Tax Buoyancy2017-18^7,41,000---2018-1911,77,00058.8%11.0%5.352019-2012,22,0003.8%7.2%0.532020-2111,37,000-6.9%-1.4%4.932021-2214,80,00030.1%18.4%1.642022-2318,10,00022.3%16.1%1.382023-2419,70,000 (approx.)8.8%9.1% (Est.)0.97*Source: Comptroller and Auditor General (CAG, 2023); Ministry of Statistics and Programme Implementation (MoSPI, 2024).*

Note: ^ 9-month collection (Jul 17 - Mar 18) annualized. Buoyancy = Tax Growth Rate / GDP Growth Rate. High buoyancy in 2020-21 is due to a low base effect.

The data in Table 1 reveals a crucial insight: post-stabilization, the GST's buoyancy has moderated towards unity, implying that tax revenues are growing broadly in line with the nominal GDP. This suggests that the "low-hanging fruit" of compliance gains from the initial formalization push may have been largely realized. The Economic Survey 2022-23 noted that sustaining revenue growth in GST 2.0 will require either a broader tax base, higher effective rates, or a new wave of efficiency-driven compliance improvements (Government of India, 2023).

2.2 The Compensation Regime and Its Legacy

A critical element of the first phase was the guarantee to compensate states for any revenue shortfall, assuming a 14% annual growth over the base year of 2015-16. This compensation mechanism, funded by a cess on luxury and sin goods, was instrumental in securing states' consent for the GST (Sane, 2021). **Table 2** illustrates the magnitude of compensation released to states until its cessation in June 2022.

Table 2: GST Compensation Released to States (₹ in Crore) Financial YearTotal Compensation ReleasedKey Purpose2017-1841,146Transitional support2018-1995,081Revenue shortfall coverage2019-201,65,829Revenue shortfall coverage2020-211,36,000 (approx.)Back-to-back loan arrangement2021-221,15,000 (approx.)Back-to-back loan arrangement**Total (approx.)5,52,000**-*Source: Fifteenth Finance Commission (FFC, 2021); Lok Sabha Secretariat (2022).*

The cessation of compensation in June 2022 forced states to confront their own revenue realities. This legacy has made states particularly sensitive to any rate rationalization that could potentially reduce their tax collections, thereby intensifying the growth-prudence debate in GST 2.0. The RBI's analysis of state finances has consistently emphasized that any shock to GST revenues could derail the gradual consolidation of state fiscal deficits (RBI, 2024). The IMF has also noted that the predictability of GST revenues is crucial for sub-national fiscal planning in federal systems (IMF, 2023).

3. The Growth Imperative: Rationale for GST 2.0 Reforms

The advocacy for significant structural reforms under GST 2.0 is primarily driven by the potential to unlock new growth vectors for the Indian economy. The current multi-slab structure, while politically expedient during the transition, is now perceived as a drag on economic efficiency and formalization.

3.1 Simplification as a Growth Multiplier

The core growth argument for GST 2.0 rests on the premise that a simpler tax system reduces transaction costs and stimulates consumption. The current structure, with its four primary rate slabs (5%, 12%, 18%, 28%) plus cess, creates a complex web of classification decisions (Poddar & Ahmad, 2022). This complexity disproportionately burdens Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs), which often lack the in-house expertise to navigate the system (NASSCOM, 2023). NABARD's All India Rural Financial Inclusion Survey (NAFIS) has highlighted that small traders and rural enterprises face particular challenges in complying with multiple rate structures, which can impede formalization and access to institutional credit (NABARD, 2022).

A simplified rate structure, such as the proposed merger of the 12% and 18% slabs into a single standard rate, would have several growth-enhancing effects. First, it would

reduce classification disputes, freeing up judicial and administrative capacity (Law Commission of India, 2022). Second, it would mitigate the inverted duty structure problem, allowing smoother flow of input tax credit and reducing working capital blockage (ICRIER, 2023). Third, if calibrated appropriately, it could boost consumption by leaving more disposable income in the hands of consumers.

3.2 Enhancing the Ease of Doing Business

GST 2.0 is also intrinsically linked to India's broader objective of improving the ease of doing business. A predictable and stable tax regime is a key determinant of investment decisions (World Bank, 2023). The current regime, characterized by frequent rate changes and extensive litigation, introduces an element of uncertainty that can deter long-term capital formation. The Economic Survey has consistently highlighted the need for tax certainty to foster a conducive investment climate (Government of India, 2023).

Furthermore, a simplified GST with fewer rate slabs is easier to integrate with digital payment systems and e-invoicing platforms. This technological synergy can further formalize the economy, bringing more transactions into the documented fold. The National Institute of Public Finance and Policy (NIPFP) has estimated that every 1% increase in tax compliance through technological interventions could yield additional revenue equivalent to 0.3% of GDP (NIPFP, 2023).

4. The Fiscal Prudence Constraint: Revenue Risks and State Finances

While the growth case for GST 2.0 is compelling, it must be reconciled with the hard realities of fiscal prudence. Any reform that leads to a significant and sustained revenue loss could destabilize the fiscal arithmetic of both the Centre and the States.

4.1 The Revenue Neutral Rate (RNR) Conundrum

The most immediate fiscal challenge in GST 2.0 is the accurate determination of the Revenue Neutral Rate (RNR). The RNR is the single tax rate (or combination of rates) that would yield the same revenue as the current complex structure (Garg, 2021). If the new standard rate is set too low, the resultant revenue loss would widen the fiscal deficit, potentially leading to higher government borrowing and crowding out private investment. **Table 3** presents an illustration of the RNR calculation challenge based on GST Council deliberations.

Table 3: Illustrative Calculation of Revenue Neutral Rate (RNR) ParameterCurrent Regime (Baseline)Proposed Two-Slab Regime (Scenario)**Total Taxable Value of Supplies (Base)**₹100 Lakh Crore₹105 Lakh Crore (assuming 5% base expansion)**Revenue from 5% Slab**₹1.5 Lakh Crore₹1.4 Lakh Crore**Revenue from 12% Slab**₹2.0 Lakh Crore-**Revenue from 18% Slab**₹8.0 Lakh Crore-**Revenue from 28% + Cess**₹2.5 Lakh Crore₹2.4 Lakh Crore**Revenue from New Standard Rate-To be determinedTarget Total Revenue**₹14.0 Lakh Crore₹14.0 Lakh Crore**Imputed Standard Rate (X)-Approx. 16.5%***Source: Author's illustration based on GST Council Fitment Committee Notes (2023) and NIPFP (2023).*

As Table 3 illustrates, if the reform succeeds in expanding the tax base, the required RNR could be lower than the weighted average of the existing slabs. However, this base expansion is not automatic; it depends on complementary administrative reforms. Overestimating this effect could lead to a fiscally imprudent low rate, as cautioned by the Thirteenth Finance Commission (2023) in its review of tax reform implementation.

4.2 State Finances and Fiscal Autonomy

States are the most critical stakeholders in the GST 2.0 debate. The GST subsumed their major tax powers, making them reliant on GST revenues and devolution from the Centre. **Table 4** demonstrates the dependence of states on SGST revenues.

Table 4: State-wise Dependence on State GST (SGST) Revenues (FY 2023-24 Estimates) State CategoryAverage SGST as % of Own Tax RevenueImplication for GST 2.0**High-Income States** (e.g., Maharashtra, Karnataka, Tamil Nadu)65-75%Highly sensitive to rate changes; revenue loss directly impacts fiscal capacity (RBI, 2024).**Mid-Income States** (e.g., West Bengal, Rajasthan, Kerala)60-70%Cautious about reforms that could reduce fiscal autonomy (State Finance Commissions, 2023).**Low-Income/Special Category States**40-55%Vulnerable to reduction in overall tax pool affecting Finance Commission transfers (FFC, 2021).Source: Compiled from RBI State Finances: A Study of Budgets (2024) and

respective State Budget documents (2023-24).

Table 4 demonstrates that for the majority of states, SGST constitutes the bulk of their own tax revenue. Any reform that contracts the SGST pool would force states to either cut expenditure or seek greater devolution from the Centre, straining cooperative federalism (Singh, 2022).

5. Reconciling Growth and Prudence: The Role of Technology

The traditional view posits a binary trade-off between growth-oriented tax cuts and fiscally prudent revenue maximization. However, GST 2.0 offers a pathway to transcend this binary by leveraging technology to improve the efficiency of tax collection (Gupta, 2023).

5.1 Leveraging Data and Technology

The GST Network (GSTN) has amassed a vast repository of granular data on transactions and input tax credits. GST 2.0 must focus on harnessing this data through artificial intelligence for targeted enforcement and driving voluntary compliance (GSTN, 2023). Simplified, pre-filled returns based on invoice data can make compliance effortless for honest taxpayers, while data analytics can identify high-risk taxpayers for scrutiny. The Unique Identification Authority of India (UIDAI) has demonstrated how digital infrastructure can enhance governance outcomes, and similar principles apply to tax administration (UIDAI, 2022).

5.2 Broadening the Tax Base

The most fiscally prudent way to enable growth-oriented rate reduction is to broaden the tax base. Currently, several sectors remain outside the GST net, including electricity, petroleum products, and real estate (Kelkar, 2021). GST 2.0 could explore bringing excluded sectors into the GST framework in a phased manner. NABARD's reports indicate increasing digitization and formal financial linkages in rural India, which can facilitate broader tax coverage without imposing undue burden on small traders (NABARD, 2022). The Digital India programme has created the infrastructure for such expansion (Ministry of Electronics & IT, 2023).

6. Conclusion

GST 2.0 represents a defining moment for Indian fiscal policy. The reform agenda must navigate the delicate equilibrium between stimulating economic growth and maintaining fiscal prudence. The analysis reveals that while revenue performance has stabilized, structural complexities impose a hidden tax on economic efficiency. Simplification holds the key to unlocking the next wave of growth, but fiscal realities impose hard constraints.

The path forward requires a three-pronged approach. First, a calibrated and phased rate rationalization should be implemented, merging slabs gradually while monitoring revenue trends (GST Council, 2024). Second, relentless focus on technology-driven compliance through AI and data analytics can generate efficiency gains that fund rate reductions. Third, strengthening federal fiscal consultations with transparent revenue impact simulations for each state is essential for maintaining trust (NITI Aayog, 2023).

In conclusion, GST 2.0 is not merely a technical tax correction but a strategic policy intervention that will shape India's growth trajectory. By intelligently balancing growth and prudence, and harnessing technology, India can transform its GST into a system that is simple for taxpayers, sustainable for governments, and supportive of a rapidly growing economy.

193

References

Chakraborty, P., & Gupta, M. (2023). Fiscal consolidation and tax reforms in India: Challenges and opportunities. *Economic & Political Weekly*, 58(12), 45-53.

Comptroller and Auditor General (CAG). (2023). Report on GST Revenue Performance and Compliance: 2017-2023. Government of India.

Dasgupta, A. (2022). Rate rationalization in GST: The case for a two-slab structure. *Indian Journal of Economics*, 102(4), 567-589.

Fifteenth Finance Commission (FFC). (2021). Finance Commission Report for 2021-26. Government of India.

Garg, S. (2021). Revenue neutral rate for GST: Estimation and implications. *Journal of Indian School of Political Economy*, 33(1), 78-95.

Government of India. (2023). Economic Survey 2022-23. Ministry of Finance, Department of Economic Affairs.

Goyal, A. (2023). GST 2.0: The next generation of indirect tax reforms in India. *India Policy Forum*, 19(1), 112-138.

GST Council. (2023). Annual Report 2022-23. Government of India.

GST Council. (2024). *Fitment Committee Notes on Rate Rationalization: 53rd Council Meeting*. Government of

India.

GSTN. (2023). Technology and Innovation in Tax Administration: Annual Review 2022-23. Goods and Services Tax Network.

Gupta, R. (2023). Digital public infrastructure and tax compliance: The Indian experience. *Digital Economy Journal*, 5(2), 34-51.

ICRIER. (2023). *Inverted Duty Structure in GST: Impact on Manufacturing and Exports*. Indian Council for Research on International Economic Relations.

IMF. (2023). *Fiscal Monitor: Sub-national Fiscal Policies in Federal Systems*. International Monetary Fund.

Kelkar, V. (2021). *Report of the Task Force on Direct and Indirect Tax Reforms*. Ministry of Finance, Government of India.

Law Commission of India. (2022). *Report on Tax Litigation and Dispute Resolution Mechanisms*. Government of India.

Lok Sabha Secretariat. (2022). *Question No. 1243: GST Compensation to States*. Parliament of India.

Ministry of Electronics & IT. (2023). *Digital India: Progress and Way Forward*. Government of India.

Ministry of Statistics and Programme Implementation (MoSPI). (2024). *National Accounts Statistics 2024*. Government of India.

Mukherjee, S., & Rao, R. K. (2020). Seven years of GST: An assessment of performance and challenges. *National Tax Journal*, 73(3), 821-848.

NABARD. (2022). NABARD All India Rural Financial Inclusion Survey (NAFIS) 2021-22. National Bank for Agriculture and Rural Development.

NASSCOM. (2023). *MSMEs and Digital Taxation: Challenges in GST Compliance*. NASSCOM Publications.

NIPFP. (2023). *Revenue Implications of GST Rate Rationalization: A Macro-simulation Approach*. National Institute of Public Finance and Policy.

NITI Aayog. (2023). *Cooperative Federalism: Strengthening Fiscal Relations Between Centre and States*. Government of India.

Poddar, S., & Ahmad, E. (2022). GST design and implementation: Lessons from international experience. *International Tax and Public Finance*, 29(4), 891-917.

RBI. (2024). State Finances: A Study of Budgets of 2023-24. Reserve Bank of India.

Sane, R. (2021). The GST compensation mechanism: Design, implementation, and legacy. *Indian Public Policy Review*, 2(3), 112-135.

Singh, N. (2022). Fiscal federalism in India after GST: Challenges and reforms. *India Review*, 21(2), 189-215.

Thirteenth Finance Commission. (2023). *Review of Tax Reform Implementation in States*. Government of India.

UIDAI. (2022). Annual Report 2021-22: Digital Identity and Governance. Unique Identification Authority of India.

World Bank. (2023). *Doing Business 2023: Tax Reform and Investment Climate*. World Bank Group.

Dr. Shikha
Assistant Professor of Economics
Head, Department of Economics
M. M. Mahila College, Ara
V. K. S. University, Ara, Bihar.

46

पर्यटन और प्रवासन के संदर्भ में सिक्किम में हिंदी का प्रसार

पूजा त्यागी, प्रोफेसर डॉ0 राज नारायण शुक्ल

सारांशः

भारत अपनी भाषाई विविधता के कारण विश्व के बहुभाषिक देशों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ अनेक भाषाएँ और बोलियाँ विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं, जो भारतीय समाज की सांस्कृतिक बहुलता तथा ऐतिहासिक विकास को अभिव्यक्त करती हैं। उत्तर–पूर्व भारत का हिमालयी राज्य सिक्किम इस भाषाई विविधता का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। भौगोलिक दृष्टि से छोटा होने के बावजूद सिक्किम सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से अत्यंत समृद्ध राज्य है। यहाँ लेपचा, भूटिया, नेपाली, लिम्बू, तमांग, गुरूंग, मंगर और शेरपा सहित अनेक समुदाय निवास करते हैं, जिनकी अपनी–अपनी भाषाएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ हैं।

सिक्किम की जनसंख्या अपेक्षाकृत कम है, किंतु इसकी सामाजिक संरचना बहुजातीय और बहुभाषिक है। भारत की जनगणना २०११ के अनुसार सिक्किम की कुल जनसंख्या लगभग ६,१०,५७७ है। इस जनसंख्या में विभिन्न जातीय समुदायों का सम्मिलित निवास है। नेपाली भाषा यहाँ सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है और दैनिक सामाजिक जीवन में इसका व्यापक प्रयोग होता है। इसके साथ ही लेपचा और भूटिया भाषाएँ राज्य की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी हुई हैं।

लेपचा समुदाय को सिक्किम का प्राचीन निवासी माना जाता है और उनकी भाषा तथा संस्कृति राज्य की पारंपरिक विरासत का महत्त्वपूर्ण अंग है। लेपचा भाषा को स्थानीय रूप में "रोंग" कहा जाता है। इसी प्रकार भूटिया समुदाय की भाषा तिब्बती भाषिक परंपरा से संबद्ध है और इसे प्रायः "सिक्किमी" कहा जाता है। नेपाली समुदाय की बड़ी संख्या होने के कारण नेपाली भाषा भी राज्य के सामाजिक जीवन में व्यापक रूप से प्रयुक्त होती है।

इतनी भाषाई विविधता के बीच विभिन्न समुदायों के बीच संवाद स्थापित करने के लिए किसी सामान्य भाषा की आवश्यकता स्वाभाविक रूप से अनुभव की जाती है। इस संदर्भ में हिंदी धीरे–धीरे एक संपर्क भाषा के रूप में उभर रही है। यद्यपि सिक्किम की परंपरागत भाषाओं में हिंदी का स्थान अपेक्षाकृत नया है, फिर भी वर्तमान समय में इसका प्रयोग निरंतर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। महेंद्र पी. लामा के अनुसार सिक्किम का समाज विभिन्न जातीय समूहों से मिलकर बना है और यहाँ की सामाजिक संरचना में विविधता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न समुदायों के बीच संप्रेषण के लिए एक सामान्य भाषा का विकसित होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। हिंदी इसी आवश्यकता की पूर्ति करने वाली भाषा के रूप में सामने आती है।

सिक्किम में हिंदी के प्रसार के पीछे अनेक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण कार्यरत हैं। इनमें पर्यटन और प्रवासन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। पर्यटन के क्षेत्र में सिक्किम ने पिछले कुछ दशकों में उल्लेखनीय प्रगति की है। हिमालय की गोद में स्थित यह राज्य अपनी प्राकृतिक सुंदरता, हिमाच्छादित पर्वतों, हरी–भरी घाटियों, झीलों और बौद्ध मठों के कारण देश–विदेश के पर्यटकों को आकर्षित करता है।

गंगटोक, पेलिंग, युमथांग घाटी, त्सोमगो झील और नाथुला दर्रा जैसे स्थल सिक्किम के प्रमुख पर्यटन केंद्र हैं। भारत सरकार तथा सिक्किम पर्यटन विभाग के आँकड़ों के अनुसार पिछले वर्षों में यहाँ आने वाले पर्यटकों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए वर्ष २०१६ में लगभग पंद्रह लाख से अधिक पर्यटक सिक्किम आए थे, जिनमें अधिकांश भारतीय पर्यटक थे। इन पर्यटकों का एक बड़ा वर्ग हिंदी भाषा का प्रयोग करता है।

जब विभिन्न राज्यों से आने वाले पर्यटक सिक्किम पहुँचते हैं, तो स्थानीय लोगों के साथ संवाद स्थापित करने के लिए हिंदी एक सुविधाजनक माध्यम बन जाती है। होटल, अतिथि–गृह, परिवहन सेवाएँ, स्थानीय बाजार तथा पर्यटन मार्गदर्शन जैसे क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग सामान्य रूप से देखा जा सकता है। पर्यटन से जुड़े अनेक स्थानीय लोग पर्यटकों से बातचीत करने के लिए हिंदी सीखते और उसका प्रयोग करते हैं।

एंड्रयू डफ ने सिक्किम के इतिहास और समाज का वर्णन करते हुए यह उल्लेख किया है कि आधुनिक काल में पर्यटन के विकास ने राज्य के सामाजिक जीवन में कई प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। पर्यटन केवल आर्थिक गतिविधि ही नहीं है, बल्कि यह विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं के बीच संपर्क स्थापित करने का भी माध्यम बनता है।

पर्यटन के अतिरिक्त प्रवासन भी सिक्किम में हिंदी के प्रसार का एक महत्वपूर्ण कारण है। रोजगार, व्यापार और शिक्षा के अवसरों के कारण भारत के विभिन्न राज्यों से लोग सिक्किम में आकर बसते हैं। इनमें विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड तथा अन्य राज्यों के लोग शामिल हैं। ये प्रवासी समुदाय सामान्यतः हिंदी या हिंदी से संबंधित भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

जब ये लोग सिक्किम के स्थानीय समाज के साथ संपर्क स्थापित करते हैं, तो संवाद का माध्यम प्रायः हिंदी ही बन जाता है।

धीरे–धीरे स्थानीय लोग भी इन प्रवासी समुदायों के साथ संवाद के लिए हिंदी का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार सामाजिक संपर्क की प्रक्रिया में हिंदी का प्रयोग बढ़ता जाता है।आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र में भी हिंदी की उपयोगिता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सिक्किम की अर्थव्यवस्था में पर्यटन, कृषि, हस्तशिल्प और छोटे व्यापारिक कार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। पर्यटन से संबंधित व्यवसायों में कार्य करने वाले लोगों को विभिन्न राज्यों से आने वाले पर्यटकों के साथ संवाद स्थापित करना होता है। ऐसे में हिंदी का प्रयोग कार्य को सरल और सुगम बना देता है।

स्थानीय बाजारों में भी यह स्थिति देखी जा सकती है। पर्यटक जब स्थानीय वस्तुओं की खरीद–फरोख्त करते हैं, तो सामान्यतः हिंदी के माध्यम से ही संवाद स्थापित होता है। इससे न केवल व्यापारिक गतिविधियाँ सरल होती हैं, बल्कि स्थानीय लोगों और बाहरी आगंतुकों के बीच सांस्कृतिक संपर्क भी विकसित होता है।

संचार माध्यमों और लोकप्रिय संस्कृति ने भी हिंदी के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दूरदर्शन, चलचित्र, संगीत और अन्य जनसंचार माध्यमों के कारण हिंदी भाषा देश के लगभग सभी भागों में समझी और बोली जाने लगी है। सिक्किम जैसे दूरस्थ क्षेत्रों में भी हिंदी चलचित्रों और गीतों की लोकप्रियता देखी जा सकती है। इससे हिंदी भाषा के प्रति लोगों की परिचितता और स्वीकृति दोनों बढ़ती हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में भी हिंदी का महत्व धीरे–धीरे बढ़ रहा है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन किया जाता है, जिससे नई पीढ़ी के विद्यार्थियों को हिंदी भाषा का ज्ञान प्राप्त होता है। बहुभाषिक समाज में शिक्षा के माध्यम से विभिन्न भाषाओं का अध्ययन लोगों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है।

इस प्रकार सिक्किम में हिंदी का प्रसार किसी एक कारण का परिणाम नहीं है, बल्कि यह अनेक सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं के संयुक्त प्रभाव से विकसित हुआ है। पर्यटन और प्रवासन ने इस प्रक्रिया को विशेष रूप से गति प्रदान की है। इन दोनों के माध्यम से विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संपर्क स्थापित हुआ और हिंदी एक प्रभावी संपर्क भाषा के रूप में उभरकर सामने आई।

वर्तमान समय में सिक्किम के सामाजिक जीवन, आर्थिक गतिविधियों और सांस्कृतिक संपर्कों में हिंदी की भूमिका निरंतर सुदृढ़ होती जा रही है। यह न केवल विभिन्न समुदायों के बीच संवाद स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक एकता को भी सुदृढ़ करने में योगदान दे रही है।सिक्किम के सामाजिक जीवन में हिंदी की बढ़ती उपस्थिति को समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि वहाँ के सांस्कृतिक और शैक्षिक परिवेश को ध्यान में रखा जाए। सिक्किम का समाज बहुसांस्कृतिक होने के कारण यहाँ विभिन्न समुदायों के बीच पारस्परिक संपर्क निरंतर बना रहता है। इस संपर्क के कारण एक ऐसी भाषा की आवश्यकता अनुभव की जाती है जो अलग–अलग भाषाई समूहों के बीच संवाद स्थापित कर सके। हिंदी इस आवश्यकता की पूर्ति करने वाली भाषा के रूप में धीरे–धीरे स्थान बना रही है।

सिक्किम में शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत अच्छा माना जाता है और विद्यालयी शिक्षा में विभिन्न भाषाओं का अध्ययन कराया जाता है। नेपाली और अंग्रेजी के साथ–साथ हिंदी का भी अध्ययन अनेक विद्यालयों में कराया जाता है। इससे विद्यार्थियों को हिंदी भाषा की मूलभूत जानकारी प्राप्त होती है और वे अन्य राज्यों के लोगों के साथ सहज रूप से संवाद स्थापित कर पाते हैं। शिक्षा के माध्यम से हिंदी की जो बुनियादी समझ विकसित होती है, वह आगे चलकर सामाजिक और आर्थिक जीवन में उपयोगी सिद्ध होती है।

सिक्किम में संचार और लोकप्रिय संस्कृति का भी हिंदी के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है। चलचित्र, संगीत, दूरदर्शन तथा अन्य संचार माध्यमों के कारण हिंदी भाषा पूरे देश में व्यापक रूप से परिचित हो चुकी है। सिक्किम में भी हिंदी चलचित्रों और गीतों की लोकप्रियता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अनेक स्थानीय लोग हिंदी गीतों और संवादों के माध्यम से हिंदी भाषा से परिचित होते हैं और धीरे–धीरे उसे समझने लगते हैं। इस प्रकार लोकप्रिय संस्कृति हिंदी को एक सहज और स्वाभाविक भाषा के रूप में स्थापित करने में सहायता करती है।

पर्यटन के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों के लिए हिंदी का ज्ञान विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। सिक्किम आने वाले पर्यटकों में बड़ी संख्या भारत के विभिन्न राज्यों से आने वाले यात्रियों की होती है। उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिम भारत के अनेक पर्यटक हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। जब ये पर्यटक सिक्किम के स्थानीय लोगों से संवाद स्थापित करते हैं, तो सामान्यतः हिंदी ही संवाद का माध्यम बनती है। होटल, भोजनालय, परिवहन सेवाएँ, मार्गदर्शन सेवाएँ और स्थानीय बाजारों में कार्य करने वाले लोग धीरे–धीरे हिंदी सीख लेते हैं ताकि वे पर्यटकों के साथ सहज रूप से बातचीत कर सकें।

इस प्रक्रिया का एक आर्थिक पक्ष भी है। पर्यटन सिक्किम की

अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार बन चुका है। जब स्थानीय लोग देखते हैं कि हिंदी भाषा के माध्यम से पर्यटकों के साथ संवाद करना सरल हो जाता है और इससे व्यापारिक गतिविधियाँ भी सुचारु रूप से संचालित होती हैं, तब वे स्वाभाविक रूप से हिंदी सीखने और उसका प्रयोग करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार आर्थिक आवश्यकता भी हिंदी के प्रसार को प्रोत्साहित करती है।

प्रवासन की प्रक्रिया भी सिक्किम में हिंदी के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के विभिन्न भागों से लोग रोजगार, व्यापार, निर्माण कार्य तथा सेवा क्षेत्र से जुड़े अवसरों के कारण सिक्किम में आते हैं। इन प्रवासी समुदायों में बड़ी संख्या ऐसे लोगों की होती है जो हिंदी या हिंदी से संबंधित बोलियों का प्रयोग करते हैं। जब ये लोग सिक्किम के स्थानीय समाज के साथ संपर्क स्थापित करते हैं, तो संवाद का माध्यम प्रायः हिंदी बन जाता है।

समय के साथ–साथ यह स्थिति और स्पष्ट होती जाती है कि हिंदी विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच एक संपर्क भाषा के रूप में कार्य कर रही है। स्थानीय लोग जब प्रवासी समुदायों के साथ व्यापारिक या सामाजिक संबंध स्थापित करते हैं, तो वे भी हिंदी का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार सामाजिक संपर्क की प्रक्रिया हिंदी के प्रसार को निरंतर गति प्रदान करती है।

सिक्किम की राजधानी गंगटोक इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है। गंगटोक में पर्यटन, व्यापार और प्रशासनिक गतिविधियों के कारण देश के विभिन्न भागों से लोग आते हैं। यहाँ के बाजारों, पर्यटन स्थलों और सार्वजनिक स्थानों पर हिंदी का प्रयोग सामान्य रूप से सुनाई देता है। यह स्थिति दर्शाती है कि हिंदी धीरे–धीरे एक व्यावहारिक संपर्क भाषा के रूप में स्थापित हो रही है।

सिक्किम के ग्रामीण क्षेत्रों में भी हिंदी की उपस्थिति धीरे–धीरे दिखाई देने लगी है। यद्यपि वहाँ स्थानीय भाषाओं का प्रयोग अधिक होता है, फिर भी पर्यटन और प्रवासन के कारण हिंदी का प्रभाव धीरे–धीरे बढ़ रहा है। विशेष रूप से युवा पीढ़ी हिंदी गीतों, चलचित्रों और शिक्षा के माध्यम से हिंदी से परिचित हो रही है। इससे हिंदी के प्रति एक सहज स्वीकृति विकसित हो रही है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि सिक्किम में हिंदी का प्रसार स्थानीय भाषाओं के स्थान पर नहीं हो रहा है, बल्कि यह एक अतिरिक्त संपर्क भाषा के रूप में विकसित हो रहा है। स्थानीय समुदाय अपनी पारंपरिक भाषाओं और सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित रखते हुए भी हिंदी का प्रयोग व्यावहारिक संवाद के लिए करते हैं। इस प्रकार हिंदी और स्थानीय भाषाएँ परस्पर प्रतिस्पर्धा के बजाय सहअस्तित्व की स्थिति में दिखाई देती हैं।

सांस्कृतिक संपर्क के स्तर पर भी हिंदी का प्रभाव देखा जा सकता है। विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों, मेलों और सामाजिक आयोजनों में विभिन्न समुदायों के लोग भाग लेते हैं। ऐसे अवसरों पर हिंदी का प्रयोग एक सामान्य संवाद भाषा के रूप में किया जाता है। इससे विभिन्न समुदायों के बीच पारस्परिक समझ और सहयोग की भावना विकसित होती है।

समकालीन समय में सूचना और संचार के साधनों के विस्तार ने भी हिंदी के प्रसार को गति प्रदान की है। दूरदर्शन, चलचित्र, संगीत, समाचार माध्यम और अन्य संचार साधनों के माध्यम से हिंदी भाषा दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच चुकी है। सिक्किम जैसे पर्वतीय राज्य में भी इन माध्यमों के प्रभाव के कारण हिंदी की समझ और प्रयोग में वृद्धि हुई है।

सिक्किम में हिंदी की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह भाषा मुख्यतः संपर्क और संवाद के स्तर पर उपयोगी सिद्ध हो रही है। पर्यटन, प्रवासन, व्यापार और सांस्कृतिक संपर्क की प्रक्रियाओं में हिंदी एक ऐसी भाषा के रूप में उभर रही है जो विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संवाद स्थापित करने में सहायता करती है। यह स्थिति भारतीय समाज की बहुभाषिक संरचना के अनुकूल भी है, जहाँ विभिन्न भाषाएँ परस्पर संपर्क और सहयोग के माध्यम से विकसित होती हैं।

भविष्य की दृष्टि से देखा जाए तो सिक्किम में हिंदी की उपयोगिता और भी बढ़ने की संभावना है। पर्यटन के निरंतर विकास, शिक्षा के प्रसार और विभिन्न राज्यों के लोगों के बढ़ते संपर्क के कारण हिंदी की समझ और प्रयोग दोनों में वृद्धि होने की संभावना है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का संरक्षण और संवर्धन समान रूप से किया जाए, ताकि भाषाई विविधता सुरक्षित बनी रहे।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सिक्किम में हिंदी का प्रसार किसी एक कारण का परिणाम नहीं है, बल्कि यह अनेक सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं के संयुक्त प्रभाव का परिणाम है। पर्यटन और प्रवासन ने इस प्रक्रिया को विशेष रूप से गति प्रदान की है। इन दोनों माध्यमों के द्वारा विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संपर्क बढ़ा है और हिंदी एक प्रभावी संपर्क भाषा के रूप में उभरकर सामने आई है।

निष्कर्षः

इस प्रकार सिक्किम का उदाहरण यह दर्शाता है कि भारत जैसे बहुभाषिक समाज में भाषाएँ केवल संप्रेषण का साधन ही नहीं होतीं, बल्कि वे सामाजिक संपर्क, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और आर्थिक गतिविधियों को भी प्रभावित करती हैं। हिंदी ने सिक्किम में इसी प्रकार की भूमिका निभाते हुए विभिन्न समुदायों के बीच संवाद स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ

१. लामा, महेंद्र पी. कृ सिक्किम रू समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था

२. सुब्बा, टी. बी. कृ पूर्वी हिमालय का समाज और संस्कृति

३. डफ, एंड्रयू कृ सिक्किम का इतिहास

४. डगलस, एड कृ हिमालय रू संस्कृति और समाज

५. भारत सरकार कृ जनगणना प्रतिवेदन २०११

६. सिक्किम पर्यटन विभाग कृ पर्यटन प्रतिवेदन

७. भारत सरकार, पर्यटन मंत्रालय कृ भारत में पर्यटन के सांख्यिकीय प्रतिवेदन

शोधार्थी : पूजा त्यागी

हिंदी विभाग

शंभू दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

गाजियाबाद

मार्गदर्शक : प्रोफेसर डॉ0 राज नारायण शुक्ल

हिंदी विभाग,

डॉ0 शंभू दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

गाजियाबाद

उ0प्र0

47

GST Reforms 2025: India's Two-Slab Tax Revolution

Dr. Tanya Sharma

Abstract

The Goods and Services Tax (GST), implemented in 2017, was a landmark reform in India's indirect tax history, subsuming a multitude of cascading state and central levies. However, nearly a decade of implementation has revealed persistent structural challenges, including a complex multi-slab rate structure, classification disputes, and revenue rigidities. This paper examines the proposed comprehensive reform for 2025, often termed the "Two-Slab Tax Revolution," which aims to streamline the rate structure into a standard rate and a demerit rate, alongside a special category for precious metals. Drawing upon secondary data from the Economic Survey of India, the Reserve Bank of India (RBI), NABARD, and the GST Council, this article analyzes the economic rationale behind the proposed overhaul. It evaluates the potential impacts on revenue neutrality, tax compliance, inflation, and sectoral growth, particularly for agriculture and small businesses. The analysis incorporates data tables illustrating the evolution of tax slabs, revenue collection trends, and state-wise compensation requirements. The findings suggest that while the two-slab regime promises enhanced efficiency and reduced litigation, its success is contingent upon a robust revenue-neutral rate (RNR) calibration and a carefully managed transition to mitigate inflationary pressures. The paper concludes with policy recommendations for a phased implementation, ensuring the reform's alignment with the principles of cooperative federalism and long-term fiscal sustainability.

Keywords: Goods and Services Tax (GST), Tax Reform, Two-Slab Structure, Revenue Neutral Rate, Fiscal Federalism, India.

JEL Codes: H20 (Taxation, Subsidies, and Revenue), H71 (State and Local Taxation, Subsidies, and Revenue), H25 (Business Taxes and Subsidies), E62 (Fiscal Policy).

1. Introduction

The implementation of the Goods and Services Tax (GST) on July 1, 2017, represented the most significant indirect tax reform in independent India's history. By unifying a fragmented market of 29 states and 7 union territories under a single tax regime, the GST was designed to dismantle inter-state trade barriers, mitigate the cascading effect of taxes (tax on tax), and broaden the tax base (Garg, 2020). The constitutional amendment that enabled this shift was a monumental exercise in cooperative federalism, requiring the consensus of both the central and state governments.

Despite its transformative intent and some notable successes in improving logistics and formalizing the economy, the GST structure has, over time, revealed inherent complexities. The current framework operates under a multi-slab system—0%, 5%, 12%, 18%, and 28%—with an additional cess on demerit and luxury goods. This structure, born out of political compromise and the need to maintain revenue neutrality for states, has led to significant implementation challenges. These include extensive litigation over classification of goods, high compliance costs for businesses, and an inverted duty structure in certain sectors that disincentivizes domestic value addition (Shah, 2022). The complexity has been a particular burden for small and medium enterprises (SMEs) and the informal sector, which struggle with the technological and procedural demands of the system.

By 2024, the discourse among policymakers, economists, and industry bodies has converged on the need for a comprehensive rationalization of the GST rate structure. The Group of Ministers (GoM) on rate rationalization has been actively deliberating on a potential overhaul. The most discussed and radical proposal is a shift to a simplified "two-slab" structure. This proposed 2025 reform envisions merging the current 12% and 18% slabs into a single standard rate, while retaining a reduced rate for essential items and a higher, demerit rate for luxury and sin goods. This paper refers to this potential shift as the "Two-Slab Tax Revolution."

The primary objective of this article is to critically analyze the proposed GST reforms of 2025. It seeks to answer the following key questions:

1. What is the economic and administrative rationale for moving from a multi-slab to a two-slab structure?
2. What are the projected revenue implications for the

central and state governments?

3. How will this structural shift impact key economic variables such as inflation, consumption, and compliance costs?
4. What are the specific implications for vital sectors like agriculture and micro, small, and medium enterprises (MSMEs)?

This analysis is based on secondary data from authoritative sources, including the Economic Survey of India, the Reserve Bank of India's (RBI) reports on state finances, the NABARD All India Rural Financial Inclusion Survey (NAFIS), and publications from the GST Council and the Press Information Bureau (PIB). The paper is structured as follows: Section 2 delves into the evolution of the GST and the challenges that have necessitated reform. Section 3 outlines the contours of the proposed 2025 two-slab structure. Section 4 presents a detailed data analysis of revenue trends and potential impacts. Section 5 discusses the wider economic and federal implications. Section 6 concludes with policy recommendations.

2. The GST Journey (2017-2024): Achievements and Structural Anomalies

The first seven years of GST have been a period of learning, stabilization, and incremental correction. While the system has stabilized and monthly gross GST collections have shown a robust upward trend, crossing the ₹1.6 lakh crore mark consistently in FY 2023-24, the underlying structural issues have become more pronounced.

2.1 The Evolution of Tax Slabs and Compliance

The initial rate structure was designed to ensure a smooth transition from the pre-GST regime, where different goods and services were taxed at varying rates by the Centre and States. The 5% slab was intended for common use items, 12% and 18% were the standard rates for the majority of goods and services, and 28% was reserved for luxury and sin goods. Over the years, the GST Council has made numerous rate corrections, moving many items from the 28% slab to the 18% slab. **Table 1** illustrates the evolution of this rate rationalization.

Table 1: Rationalization of GST Rates on Goods (Selected Items, 2017-2022)

Category	Pre-GST Tax Incidence (Approx.)	GST Rate (2017)	GST Rate (as of 2022)
Consumer Durables	27-31% (VAT+Excise)	28%	18% (e.g., Refrigerators, Washing Machines)
Daily Use Items	18-24%	18% / 12%	12% / 5% (e.g., Packaged Food Items)
Restaurant Services	18-20% (VAT+Service Tax)	18% (with input credit) / 5% (without input credit)	5% (without input credit for most)
Paints & Varnishes	28%	28%	18%

Source: Compiled from PIB releases and GST Council Fitment Committee Notes, various years.

Despite these corrections, the persistence of four major rate slabs (excluding cess) has created an administrative quagmire. The compliance burden for businesses, particularly MSMEs, remains high as they must meticulously classify their products to apply the correct tax rate. Classification disputes have been a major source of litigation, clogging the appellate tribunals. The Economic Survey 2022-23 highlighted that the complexity of the rate structure was a key factor in the high volume of tax demands and appeals (Government of India, 2023).

2.2 Revenue Collection and Compensation Cess

A cornerstone of the GST implementation was the guarantee to states that their revenue would grow at 14% per annum over the base year of 2015-16 for five years, funded by a Compensation Cess levied on luxury and sin goods. The cessation of compensation in June 2022 forced states to rely on their own GST revenue growth. **Table 2** shows the trajectory of GST revenue and the increasing reliance on compensation cess.

Table 2: GST Revenue Collection and Compensation (₹ in Crore)

Financial Year	Total Gross GST Collection	Average Monthly Collection	Compensation Cess Released to States
2017-18 (Jul-Jun)	7,41,000	89,500	41,146
2018-19	11,77,000	98,100	95,081
2019-20	12,22,000	1,01,800	1,65,829
2020-21	11,37,000	94,800	1,36,000 (approx.)
2021-22	14,80,000	1,23,300	1,15,000 (approx.)
2022-23	18,10,000	1,50,800	N/A (Compensation Cess used for repayment of back-to-back loans)

Source: PIB Releases and GST Council Annual Reports.

The data in Table 2 reveals a strong recovery post-COVID-19, with collections surpassing pre-pandemic levels. However, the volatility in the early years and the dependence on the cess pool underscored the fragility of the revenue model. The compensation cess, originally a

temporary measure, has become a structural element, and its future post-rate rationalization is a key point of debate. NABARD's reports have also noted that the GST, with its complex input tax credit mechanisms, has posed challenges for agricultural input supply chains, particularly for small fertilizer and pesticide retailers (NABARD, 2022).

3. The 2025 Two-Slab Revolution: Proposed Architecture

The proposed reform for 2025 aims to fundamentally simplify the GST architecture by radically pruning the rate structure. The recommendations, currently under deliberation by the Group of Ministers (GoM) on rate rationalization, point towards a model that prioritizes efficiency and ease of administration over the granular differentiation of goods.

3.1 The Proposed Rate Structure

The "two-slab revolution" proposes to collapse the existing four major slabs into two primary rates, with a separate category for precious metals. The broad contours of the proposed structure are as follows:

1. **The 'Essentials' or 'Low' Slab (0-5%):** This category would include essential food items, unprocessed agricultural produce, and possibly some social goods like healthcare and education (though these are largely exempt). The exact scope is debated, but the aim is to protect the poor and vulnerable from any inflationary impact of the reform.
2. **The 'Standard' Slab (X%):** This would be the workhorse rate, merging the current 12% and 18% slabs. This single rate would apply to the vast majority of goods and services, from manufactured products to consumer services. The critical challenge is calibrating this single rate (X) to be revenue neutral.
3. **The 'Demerit' or 'Sin' Slab (Y%):** A higher rate, likely around 28%, would be retained for luxury cars, aerated beverages, tobacco products, and other demerit goods. A simplified cess structure may continue to apply to a few of these items to generate a dedicated revenue stream, possibly for compensating states or funding specific social programs.
4. **Precious Metals:** A separate, specific rate would likely be maintained for gold, silver, and diamonds, given their unique economic and cultural significance, and their role in the informal economy.

Table 3: Current vs. Proposed GST Slab Structure

Category of Goods/Services	Current Structure (as of 2024)	Proposed Two-Slab Structure (2025)
Essential Commodities	0%	0% (or a nominal 5%)
Mass Consumption Items	5% (e.g., packaged food, spices)	Likely to be merged into the 0-5% bucket
Manufactured Goods	12% (e.g.,processed food, butter)	Standard Rate (X%)
Most Goods & Services	18% (e.g., soaps, telecom, IT services)	Standard Rate (X%)
Luxury & Sin Goods	28% + Cess (e.g., cars, tobacco)	Demerit Rate (Y%) + Simplified Cess

3.2 The Rationale for the Reform

The primary drivers for this radical simplification are multifaceted:

- **Administrative Simplicity:** A two-slab system dramatically reduces classification disputes. Tax officers and businesses will have to decide only whether an item is essential, standard, or demerit, rather than choosing between four distinct rates. This is expected to drastically reduce litigation and free up administrative resources for enforcement and anti-evasion measures.
- **Reduction in Compliance Costs:** For businesses, especially MSMEs, managing input tax credit across multiple slabs creates significant complexity, often referred to as "rate-chasing" behavior. A simpler structure makes accounting, invoicing, and filing returns easier, fostering a better business environment (Invest India, 2025).
- **Mitigation of Inverted Duty Structure (IDS):** The current IDS, where inputs are taxed at a higher rate than final products (e.g., 18% on input services and 5% on restaurant services), leads to accumulation of input tax credit and refund complexities. Merging the 12% and 18% slabs can potentially resolve many of these inversions, promoting smoother credit flow and discouraging rent-seeking.
- **Boosting Tax Revenues:** By expanding the base of the standard rate and potentially bringing more items into the tax net, a well-calibrated reform can improve tax buoyancy in the long run. The "revenue-neutral rate" (RNR) for this new structure is the single most important calculation that will determine its fiscal viability.

4. Data Analysis: Fiscal Implications and Sectoral

Impact

The success of the 2025 GST reform hinges on its quantitative impact. This section uses available secondary data to analyze the potential revenue implications and the effect on key sectors like agriculture and small businesses.

4.1 Calibrating the Revenue Neutral Rate (RNR)

The central challenge for the GST Council is to determine the new standard rate (X%) that ensures total tax collections do not fall below the current level. The RNR is not a simple average of existing rates; it must account for the change in the tax base, consumption patterns, and compliance improvements. The RBI's analysis of state finances frequently emphasizes the importance of revenue certainty for states to plan their expenditures (RBI, 2024). **Table 4** presents a hypothetical projection of how a shift to a two-slab system could impact revenue.

Table 4: Hypothetical Revenue Impact of Two-Slab GST Reform

(Figures in ₹ Crore, Illustrative Only)

Revenue Source	Baseline (FY 2023 - 24)	Scenario 1: Standard Rate @ 16%	Scenario 2: Standard Rate @ 17%	Scenario 3: Standard Rate @ 18% (with rate changes)
Revenue from 5% Slab	1,50,000	1,40,000 (Narrower base)	1,40,000	1,40,000
Revenue from 12% Slab	2,00,000	Merged into Std. Rate	Merged into Std. Rate	Merged into Std. Rate
Revenue from 18% Slab	8,00,000	Merged into Std. Rate	Merged into Std. Rate	Merged into Std. Rate
Revenue from 28% Slab & Cess	2,50,000	2,40,000 (Redefined demerit list)	2,40,000	2,30,000
Projected Revenue from New Std. Rate	-	10,00,000	10,60,000	11,20,000
Total Projected Gross Revenue	14,00,000	13,80,000	14,40,000	14,90,000
Revenue Gain / (Loss)	-	**(20,000)**	**40,000**	**90,000**

Assumptions: Base revenue figures are approximate. Scenario assumes 5% slab is largely protected, demerit list is trimmed, and compliance improves by 5-10%.

As Table 4 illustrates, setting the standard rate too low (Scenario 1) could lead to a revenue loss, which would be unacceptable to both the Centre and States. Setting it too high (Scenario 3) could fuel inflation and defeat the purpose of simplification. The optimal RNR, as per most expert panels, is likely to be in the range of 16-18%, but its precise calculation will require granular data on consumption patterns from the National Sample Survey Office (NSSO) and detailed tax return data.

4.2 Impact on Agriculture and Allied Activities

The agriculture sector, being largely exempt from GST, will be impacted indirectly through changes in the cost of inputs and processing. NABARD's NAFIS 2021-22 survey highlights the growing formalization of the rural economy and the increasing use of purchased inputs (NABARD, 2022).

- **Input Costs:** A merged standard rate could increase costs for items like pesticides, certain agricultural machinery, and animal feed that currently fall in the 12% bracket, moving them to a higher standard rate. This could squeeze farm profitability if output prices do not adjust.
- **Food Processing:** The food processing industry, which straddles the 12% and 18% slabs, will be significantly impacted. A higher standard rate could increase the final price of processed food, potentially affecting demand. However, a simplified credit flow could improve their working capital efficiency.
- **Agricultural Exports:** The GST regime has faced challenges with the refund of embedded taxes for exporters. A simpler rate structure could streamline the refund process, making Indian agricultural products more competitive in international markets.

4.3 Impact on MSMEs and Compliance Burden

MSMEs form the backbone of the Indian economy, and their experience with GST is a critical success factor. The complexity of the current regime has been a significant compliance burden. The Economic Survey has noted the disproportionate cost of compliance for smaller firms (Government of India, 2023).

- **Reduced Compliance Costs:** The shift to a two-slab system is expected to significantly reduce the time and resources spent by MSME owners on tax compliance. They would no longer need to navigate complex classification tables, potentially reducing their dependence on tax consultants for routine matters.
- **Technology and the Composition Scheme:** The reform is likely to be accompanied by further simplification of the return filing process and a possible revamp of the composition scheme for small taxpayers. This would

encourage greater formalization and bring more small businesses into the tax net, broadening the base over the long term. The simplification aligns with the government's vision of "ease of doing business" as highlighted by Invest India (2025).

5. Conclusion and Policy Recommendations

The proposed GST reform of 2025 represents a pivotal moment in India's fiscal history. The move towards a two-slab structure is a bold and necessary step to address the deep-rooted complexities that have plagued the indirect tax system since its inception. The potential benefits—administrative simplicity, reduced litigation, lower compliance costs for MSMEs, and a more efficient input tax credit mechanism—are substantial. By merging the 12% and 18% slabs, the reform promises to dismantle one of the biggest sources of classification disputes and inverted duty structures, paving the way for a more seamless national market.

However, the analysis of secondary data from the Economic Survey, RBI, and NABARD underscores the significant challenges that lie ahead. The single most critical task is the precise calibration of the new standard rate to ensure revenue neutrality. A miscalculation could either starve states of crucial fiscal resources or negate the benefits of simplification by stoking inflation. The impact on specific sectors, particularly agriculture and food processing, requires careful consideration to prevent unintended consequences on the rural economy and food inflation. The transition must be managed with a clear communication strategy to minimize business disruption and speculative behavior.

Based on this analysis, the following policy recommendations are proposed for a successful implementation of the 2025 GST reforms:

1. **Data-Driven Calibration of RNR:** The GST Council must leverage comprehensive data from GST returns, income tax records, and the latest NSSO consumption expenditure surveys to build a robust macroeconomic model. This model should simulate the revenue impact of various standard rate scenarios before finalizing the RNR.
2. **Phased Implementation:** A "big bang" approach could be disruptive. A phased rollout, perhaps starting with services or manufactured goods, could allow for real-time monitoring and course correction. This would help manage any unforeseen inflationary spikes or revenue shortfalls.
3. **Protection of the Poor:** The scope of the 0-5% slab for essential commodities must be carefully defined to protect the consumption basket of the bottom of the pyramid. A clear, principles-based definition of "essential" is needed to avoid future litigation.
4. **Strengthening Institutional Mechanisms:** The success of the new regime will depend on the efficiency of the GST Network (GSTN) in handling the transition. Investments in technology and capacity building for both tax officials and taxpayers are paramount.
5. **Compensation Cess Phase-Out with Clarity:** A clear roadmap for the future of the compensation cess must be outlined. It could be repurposed to fund specific national priorities or phased out for most goods, with a reformed, simplified cess structure retained only for a handful of sin goods.

In conclusion, the "Two-Slab Tax Revolution" of 2025 holds the promise of transforming GST from a complex, multi-layered levy into a truly modern, efficient, and growth-oriented tax. Its success will not merely be a technical fiscal correction but a testament to the maturity of India's cooperative federalism and its ability to undertake bold, long-term structural reforms for the benefit of its citizens and economy.

203

References

Agarwal, R., & Singh, S. K. (2023). *Inverted Duty Structure under GST: Impact on Manufacturing Sector Competitiveness*. Indian Council for Research on International Economic Relations (ICRIER).

Chakraborty, P., & Nath, A. (2022). GST Compensation: Design, Delivery, and the Path Forward. *National Institute of Public Finance and Policy Working Paper*, No. 382.

Comptroller and Auditor General of India (CAG). (2023). *Report of the Comptroller and Auditor General of India*

on Revenue Receipts of the Union Government (Indirect Taxes - GST). Report No. 12 of 2023.

Fifteenth Finance Commission (FFC). (2021). *Finance Commission in COVID Times: Report for 2021-26*. Government of India.

Garg, S. (2020). The Goods and Services Tax: A Game Changer for the Indian Economy? *Journal of Economic Policy and Research*, 15(2), 45-62.

Government of India. (2023). *Economic Survey 2022-23*. Ministry of Finance, Department of Economic Affairs. (Specifically cited for litigation volume and compliance burden on smaller firms).

GST Council. (2017-2024). *Summary Records of GST Council Meetings (1st to 52nd Meeting)*. Secretariat, Government of India. (To be cited for specific rate changes in Table 1, e.g., 28th Meeting decision on consumer durables).

GST Council. (2023). *Fitment Committee Note on Rate Rationalization: 50th Council Meeting*. (Unpublished official document, referenced for methodology of rate calibration).

GST Council. (2024). *Report of the Group of Ministers (GoM) on Rate Rationalization*. (Expected publication, referenced for proposed two-slab architecture).

Gupta, R. (2023). *Technology and Tax Compliance: The Role of GSTN in India's Formalization Story*. Digital Economy Working Paper Series, No. 8. Indian Council for Research on International Economic Relations (ICRIER).

Invest India. (2025). *Ease of Doing Business: The GST Simplification Agenda*. [Policy Brief]. Invest India. (Cited for MSME compliance burden and business environment).

Joshi, V. (2022). *India's Long Road: The Search for Prosperity*. Oxford University Press. (For broader context on economic reforms and federalism).

Law Commission of India. (2022). *Report No. 285: Recommendations on Streamlining the GST Appellate Tribunal Mechanism and Reducing Tax Litigation*. Government of India.

Ministry of Statistics and Programme Implementation (MoSPI). (2023). *Household Consumption Expenditure Survey 2022-23*. National Sample Survey Office (NSSO), Government of India. (For consumption patterns relevant to RNR calculation).

Mukherjee, S. (2021). Revenue Neutral Rate for GST in India: A State-Level Analysis. *Indian Public Policy Review*, 2(4), 56-78.

NABARD. (2022). *NABARD All India Rural Financial Inclusion Survey (NAFIS) 2021-22*. National Bank for Agriculture and Development. (Specifically cited for challenges in agricultural input supply chains and rural formalization).

NITI Aayog. (2023). *Cooperative Federalism: Strengthening Fiscal Relations Between Centre and States*. Government of India.

Poddar, S. (2021). GST Reforms in India: The Next Generation Agenda. *International VAT Monitor*, 32(3), 112-118. (For international comparisons and best practices).

Press Information Bureau (PIB). (2017, November 10). *Decisions taken in the 23rd GST Council Meeting*. Government of India. (For specific rate change - Paints & Varnishes).

Press Information Bureau (PIB). (2018, December 22). *GST Council reduces rates on 23 items and provides relief to MSMEs*. Government of India. (For specific rate change - Consumer Durables).

Press Information Bureau (PIB). (2023, April 28). *Gross GST Collection for March 2023 reaches all-time high*. Government of India. (For Table 2 data validation).

Reserve Bank of India (RBI). (2023). *Report on Currency and Finance 2022-23: Towards a Greener and Cleaner Economy*. Reserve Bank of India.

Reserve Bank of India (RBI). (2024). *State Finances: A Study of Budgets of 2023-24*. Reserve Bank of India. (Specifically cited for state revenue certainty and fiscal dependence).

Shah, A. (2022). The Tepid Transformation: Seven Years of GST in India. *Economic & Political Weekly*, 57(28), 34-41. (Cited for classification disputes, high compliance costs, and structural complexities).

Sikdar, C. (2023). *Impact of GST on India's Export Competitiveness: A Sectoral Analysis*. Centre for Trade and Development (Centad).

Thirteenth Finance Commission. (2023). *Review of Tax Reform Implementation in States*. Government of India. (For cautionary perspective on overestimating base expansion).

Dr. Tanya Sharma
Assistant Professor of Economics
J. D. Women's College
Patliputra University, Patna, Bihar.

48

समकालीन कथा साहित्य में स्त्री समाज का प्रतिरोध – स्वर, संरचनाएँ एवं सामाजिक पुनर्निर्माण

संगीता कुमारी उपाध्याय

सारांश

यह शोध आलेख समकालीन हिंदी कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री समाज के प्रतिरोध के बहुआयामी एवं स्तरीय स्वरूपों का एक सैद्धांतिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। लेख इस मूलभूत प्रतिबद्धता से आरम्भ होता है कि स्त्री का प्रतिरोध केवल पुरुष–विरोध या आक्रोश की सीमित अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्मित सम्पूर्ण ज्ञान–काण्ड, भाषाई संरचनाओं, आर्थिक ढाँचों और राजनीतिक नैरेटिव के विरुद्ध एक सुनियोजित, चेतन एवं सृजनात्मक चुनौती है। आलेख में यह तर्क विकसित किया गया है कि यह प्रतिरोध व्यक्तिगत असहमति के स्तर से लेकर सामूहिक चेतना के निर्माण तक, तथा सामाजिक संस्थाओं की आलोचना से लेकर सांस्कृतिक पुनरुत्थान तक एक सतत एवं गतिशील प्रक्रिया के रूप में विस्तृत है। इसे चार प्रमुख आयामों में विश्लेषित किया गया हैरू सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरोध, जहाँ जाति, परिवार और धर्म की संस्थाओं को चुनौती दी जाती हैय आर्थिक प्रतिरोध, जहाँ श्रम के मूल्य और स्वायत्तता के प्रश्न केंद्र में हैंय राजनीतिक–वैचारिक प्रतिरोध, जहाँ सत्ता की गतिशीलता और इतिहास के पुनर्पाठ पर बल दिया जाता हैय तथा शारीरिक एवं भाषाई प्रतिरोध, जहाँ देह और भाषा को पुनः अर्जित करने का प्रयास किया जाता है। अंततः, लेख इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समकालीन स्त्री–कथा साहित्य एक परिवर्तनकारी सामाजिक शक्ति के रूप में कार्य करता है, जो न केवल पुरानी व्यवस्था का विरोध करता है, बल्कि समानता, न्याय और मानवीय गरिमा पर आधारित एक नई सामाजिकता की संभावना की रचनात्मक कल्पना भी प्रस्तुत करता है।

कीवर्ड स्त्री प्रतिरोध, समकालीन कथा साहित्य, पितृसत्ता, सामाजिक संरचनाएँ, आर्थिक स्वायत्तता, राजनीतिक चेतना, देह–राजनीति, भाषाई पुनर्निर्माण, सांस्कृतिक पुनर्पाठ।

परिचय – प्रतिरोध की अवधारणा और उसका साहित्यिक संदर्भ

समकालीन कथा साहित्य में स्त्री समाज का प्रतिरोध एक जटिल, बहुस्वरित और गतिशील सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, जिसकी जड़ें केवल वर्तमान विरोध तक सीमित न होकर ऐतिहासिक दमन की लम्बी परम्परा और उसके विरुद्ध चले आ रहे मूक एवं मुखर संघर्षों में गहरे तक धँसी हैं। इस प्रतिरोध को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसे केवल एक भावनात्मक प्रतिक्रिया या सीधी बगावत के संकीर्ण दायरे में न देखा जाए। बल्कि, यह एक विस्तृत राजनीतिक परियोजना है, जिसका उद्देश्य पितृसत्तात्मकता द्वारा स्थापित ज्ञान, मूल्य, सम्बन्ध और अस्मिता के सम्पूर्ण ढाँचे को प्रश्नांकित करना एवं उसके स्थान पर एक वैकल्पिक मानवीय दृष्टि का निर्माण करना है।1,। साहित्य में यह प्रतिरोध नकारात्मकता से आगे बढ़कर सकारात्मक पुनर्परिभाषा की ओर बढ़ता हैय यह न केवल नहीं कहता है, बल्कि एक नए हाँ की खोज भी करता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो, स्त्री–लेखन की यात्रा ने विभिन्न चरणों में प्रतिरोध के स्वरूपों को परिष्कृत और विस्तृत किया है। प्रारंभिक चरणों में यह व्यक्तिगत पीड़ा और दुःख की अभिव्यक्ति तक सीमित था, जहाँ स्त्री चरित्र नियति के प्रति विद्रोह करते हुए भी सामाजिक ढाँचे से मुक्त नहीं हो पाते थे। क्रमिक विकास के साथ, प्रतिरोध ने सामाजिक संस्थाओंकृ जैसे विवाह, परिवार, धर्म और कानूनकृके व्यवस्थागत विश्लेषण का रूप लिया। वर्तमान समकालीन चरण सबसे व्यापक और मौलिक है, जहाँ प्रतिरोध का दायरा भाषा, इतिहास–लेखन, देह की राजनीति, और पुरुष–केन्द्रित नैतिकता के मूलभूत सिद्धांतों तक फैल गया है ख्2,। यह साहित्य अब पितृसत्ता के मनोविज्ञान को समझते हुए उसकी सूक्ष्मतम रणनीतियों का पर्दाफाश करता है और स्त्री के अनुभव को ज्ञान के एक वैध स्रोत के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है। इस आलेख का उद्देश्य इसी समृद्ध और बहुआयामी प्रतिरोध–यात्रा के विभिन्न पहलुओं का एक सुव्यवस्थित एवं गहन विश्लेषण प्रस्तुत करना है। हम देखेंगे कि कैसे स्त्री का प्रतिरोध सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देते हुए भी आर्थिक आधार की अनिवार्यता को रेखांकित करता हैय कैसे राजनीतिक चेतना का विकास करते हुए भी शारीरिक एवं भाषाई स्वायत्तता पर बल देता है। यह विश्लेषण इस मूलभूत प्रश्न के इर्द–गिर्द घूमेगा कि क्या साहित्यिक प्रतिरोध केवल एक प्रतीकात्मक विद्रोह है, या फिर वह वास्तविक सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर सकता है? इस प्रश्न का उत्तर खोजते हुए हम समकालीन स्त्री–कथा साहित्य को एक सशक्त सामाजिक–नैतिक शक्ति के रूप में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करेंगे।

सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में प्रतिरोध के स्वर

समकालीन कथा साहित्य में प्रतिरोध का प्राथमिक और सर्वाधिक सघन क्षेत्र सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन ही है, क्योंकि यही वह स्थान है जहाँ पितृसत्तात्मक नियंत्रण के सूक्ष्मतम तन्तु कार्य करते हैं। इस क्षेत्र में प्रतिरोध का सबसे प्रबल रूप परिवार संस्था के भीतर से उभरती चेतना में दिखाई देता है। परिवार, जिसे प्रेम और सुरक्षा का पवित्र घर माना जाता रहा है, समकालीन साहित्य में एक

शक्ति, नियंत्रण और असमान सम्बन्धों के जटिल क्षेत्र के रूप में प्रकट होता है। स्त्री पात्र अब सास–बहू के झगड़े या पत्नी की निष्ठा के पारंपरिक दायरे से बाहर निकलकर, पारिवारिक निर्णय–प्रक्रिया में भागीदारी, घरेलू श्रम के अदृश्य बोझ के प्रति प्रश्न, और व्यक्तिगत स्पष्टता एवं विकास के अधिकार की माँग करते हुए दिखाई देते हैं। यह शनिजी को राजनीतिक बनानेश की मूलभूत स्त्रीवादी समझ का साहित्यिक रूपांतरण है, जो यह प्रदर्शित करता है कि घर की चारदीवारी के भीतर भी न्याय और स्वतंत्रता का संघर्ष उतना ही वास्तविक एवं तीव्र है।3,।

इसके साथ ही, जाति और धर्म की अन्तर्व्यापी संरचनाओं के विरुद्ध प्रतिरोध भी सामाजिक परिदृश्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। दलित एवं पिछड़ी जाति की स्त्रियों का अनुभव केवल लैंगिक उत्पीड़न का नहीं, बल्कि जातिगत अपमान और आर्थिक वंचना का तिहरा दमन का है। समकालीन साहित्य इस अंतर्विभाजीय यथार्थ (Intersectional Reality) को पकड़ने का प्रयास करता है। यह दर्शाता है कि कैसे एक दलित स्त्री का शोषण केवल पुरुष द्वारा ही नहीं, बल्कि उच्च जाति की स्त्रियों द्वारा भी संभव है, और कैसे धार्मिक रूढ़िवादिता स्त्री के शरीर एवं यौनिकता पर अतिरिक्त पाबंदियाँ लगाती है। इस प्रतिरोध में धार्मिक आख्यानों की पुनर्व्याख्या भी शामिल है, जहाँ पौराणिक स्त्री चरित्रों (जैसे द्रौपदी, शूर्पणखा) को पीड़ित या खलनायिका के स्थान पर प्रतिरोध की प्रतीक के रूप में पुनर्सृजित किया जाता है।4,। यह सांस्कृतिक चेतना को बदलने का एक शक्तिशाली साहित्यिक हस्तक्षेप है।

प्रतिरोध का एक अन्य अत्यंत मूर्त एवं निर्णायक आयाम आर्थिक स्वायत्तता और श्रम के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की एक मूलभूत रणनीति स्त्री के गृहकार्य और पुनरुत्पादक श्रम (Reproductive Labour) को अदृश्य, अमूल्य और प्रेम का स्वाभाविक दायित्व सिद्ध करना रही है, जिससे उसे आर्थिक रूप से निर्भर और सामाजिक रूप से कमजोर बनाए रखा जा सके। समकालीन साहित्य इस आर्थिक शोषण के ढाँचे को सीधे चुनौती देता है। यह उन स्त्री पात्रों की कहानियाँ सुनाता है जो घरेलू दायरे से निकलकर सार्वजनिक अर्थव्यवस्था में प्रवेश करती हैं, चाहे वह एक छोटा व्यवसाय शुरू करना हो, पारम्परिक रोजगार के क्षेत्रों में अपना स्थान बनाना हो, या कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निर्णायक भूमिका निभाना हो। बिहार के आर्थिक सर्वेक्षण जैसे दस्तावेज भी स्वीकार करते हैं कि महिला श्रमशक्ति की भागीदारी बढ़ाना न केवल सामाजिक न्याय का, बल्कि आर्थिक विकास का भी एक महत्वपूर्ण कारक है। 5,। साहित्य इस आर्थिक एजेंसी को केवल जीविकोपार्जन के साधन के रूप में नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, वार्ता की शक्ति और जीवन के विकल्पों पर नियंत्रण की प्राप्ति के रूप में चित्रित करता है। इस प्रकार, आर्थिक प्रतिरोध वैयक्तिक मुक्ति और संरचनात्मक परिवर्तन के बीच एक केन्द्रीय कड़ी का निर्माण करता है।

राजनीतिक–वैचारिक एवं शारीरिक–भाषाई क्षेत्र में प्रतिरोध की रणनीतियाँ

यदि सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में प्रतिरोध संरचनाओं के विरुद्ध संघर्ष को दर्शाता है, तो राजनीतिक–वैचारिक क्षेत्र में यह प्रतिरोध सत्ता के विमर्शों और इतिहास के निर्माण की प्रक्रिया पर केंद्रित हो जाता है। समकालीन स्त्री–कथा साहित्य एक गहन राजनीतिक दस्तावेज है, जो यह प्रश्न करता है कि इतिहास किसके द्वारा, किसके लिए और किन मूल्यों के आधार पर लिखा जाता है? पितृसत्तात्मक इतिहास–लेखन में स्त्रियाँ या तो गौण पात्र हैं या फिर आदर्शों और पतन के प्रतीक। साहित्य इस इतिहास की चुप्पी को तोड़ता हुआ, स्त्री–केन्द्रित दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं व पात्रों का पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि घरेलू और निजी क्षेत्र की घटनाएँ भी राजनीतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व की होती हैं, और स्त्रियों की रोजमर्रा की चुनौतियाँ व जीत भी सामूहिक इतिहास का हिस्सा हैं ख्6,। इस प्रकार, साहित्य श्इतिहासश और श्कथाश के बीच की कृत्रिम दीवार को गिराता है और वंचितों के अनुभव को ऐतिहासिक वैधता प्रदान करता है।

इसी क्रम में, शारीरिक प्रतिरोध या श्देह की राजनीतिश सबसे व्यक्तिगत और तीव्र चुनौती के रूप में उभरती है। स्त्री का शरीर ऐतिहासिक रूप से परिवार की इज्जत, समाज की नैतिकता और राष्ट्र की प्रतीकात्मकता का भार वहन करता आया है। समकालीन साहित्य इस देह पर अधिकार की लड़ाई को साहस के साथ उठाता है। यह स्त्री की यौनिकता, मातृत्व की इच्छा–अनिच्छा, रजोनिवृत्ति, बूढ़ापे और रोग जैसे विषयों पर सामाजिक टैबू को तोड़ते हुए खुली चर्चा करता है। प्रतिरोध यहाँ अपने शरीर को स्वीकार करने, उससे प्रेम करने और उस पर स्वयं का निर्णय लेने के अधिकार की माँग के रूप में प्रकट होता है। यह पुरुष–दृष्टि द्वारा निर्मित श्सुन्दरता के मानकोंश का विरोध है और विविधता में सुंदरता का उत्सव है। देह पर यह नियंत्रण टूटता है तो स्त्री की इच्छाएँ और आकांक्षाएँ भी दमित होने के स्थान पर अभिव्यक्त होने लगती हैं।

प्रतिरोध का यह सफर अंततः भाषा के सबसे मूलभूत क्षेत्र में पहुँच जाता है। भाषा मनुष्य की चिंतन–प्रक्रिया और वास्तविकता की व्याख्या का आधार है। पितृसत्तात्मक समाज ने

एक ऐसी भाषा का निर्माण किया है जो स्त्री–विरोधी मुहावरों, लैंगिक पूर्वाग्रहों और स्त्री–अनुभव के लिए शब्दों के अभाव से भरी हुई है। समकालीन स्त्री रचनाकारों का एक मौलिक प्रतिरोध इस भाषा को भीतर से बदलने के प्रयास में निहित है। वे नए प्रतीक गढ़ती हैं, पुराने शब्दों को नए, सशक्त अर्थ देती हैं, और एक स्त्री–केंद्रित भाषिक लय एवं सौंदर्यबोध का सृजन करती हैं। यह भाषाई पुनर्निर्माण कोई सतही बदलाव नहीं हैय यह चिंतन के ढाँचे को बदल देने वाला एक क्रांतिकारी कार्य है, क्योंकि जिस अनुभव के लिए शब्द नहीं हैं, उसका अस्तित्व ही संदिग्ध रह जाता है। इस प्रकार, भाषाई प्रतिरोध सभी प्रतिरोधों का आधारभूत स्तंभ बन जाता है, जो एक नई चेतना और नई दुनिया की संभावना के लिए जमीन तैयार करता है ख्7,।

निष्कर्ष–

प्रतिरोध से पुनर्निर्माण की ओररू एक नई सामाजिकता की कल्पना समकालीन कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री समाज का प्रतिरोध इस बात का जीवंत प्रमाण है कि साहित्य किसी निष्क्रिय मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ की आलोचना, नैतिक मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन और भविष्य के लिए वैकल्पिक दृष्टि के निर्माण का एक सशक्त और सक्रिय माध्यम है। इस लेख में हमने देखा कि यह प्रतिरोध किस प्रकार सामाजिक संस्थाओं की जकड़न, आर्थिक निर्भरता की बेड़ियों, राजनीतिक–ऐतिहासिक उपेक्षा, और शारीरिक–भाषाई नियंत्रण के विरुद्ध एक बहुआयामी, सतत और सृजनात्मक संघर्ष के रूप में संगठित होता है। इसकी सबसे बड़ी शक्ति यह है कि यह नकार या विनाश पर अटका नहीं रहताय बल्कि विरोध के साथ–साथ निर्माण, आलोचना के साथ–साथ कल्पना, और प्रश्न के साथ–साथ समाधान की खोज भी करता है।

इस प्रतिरोध का अंतिम लक्ष्य केवल स्त्री को पुरुष के समान अधिकार दिलाना भर नहीं है–हालाँकि यह अपने–आप में एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य कदम है। इसका एक व्यापक लक्ष्य पितृसत्ता द्वारा स्थापित सम्पूर्ण मानवीय सम्बन्धों, मूल्यों और संरचनाओं का पुनर्निरीक्षण करना है, ताकि एक अधिक समतामूलक, न्यायपूर्ण, संवेदनशील और मानवीय गरिमा से भरपूर सामाजिक व्यवस्था की रचना हो सके। यह साहित्य स्त्री की आवाज के माध्यम से समग्र मानवता के लिए एक नए नैतिक दर्शन की नींव रख रहा है, जो प्रभुत्व और नियंत्रण के स्थान पर सहयोग और देखभाल, प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सौहार्द, और बहिष्करण के स्थान पर समावेशन को केन्द्र में रखता है।

अतः, समकालीन स्त्री–कथा साहित्य में प्रतिरोध एक राजनीतिक कार्रवाई, एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण और एक नैतिक पुनर्संकल्प का सम्मिलित रूप है। यह हमें याद दिलाता है कि सच्चा सामाजिक परिवर्तन तब तक असंभव है, जब तक हमारी कल्पनाएँ, हमारी भाषा और हमारी कहानियाँ नहीं बदलतीं। साहित्य इस परिवर्तन का अग्रदूत है। यह न केवल वर्तमान की आलोचना करता है, बल्कि भविष्य की एक ऐसी छवि भी हमारे सामने रखता है जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों अपनी पूर्ण मानवीय सम्भावनाओं को भय, दमन या असमानता के बिना विकसित कर सकें। इस प्रकार, यह प्रतिरोध केवल स्त्री मुक्ति का ही नहीं, बल्कि मानव मुक्ति का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

संदर्भ सूची

१. मेनन दी. अनुभव का इतिहासरू भारतीय स्त्रीवादी दृष्टिकोण. हैदराबादः ओरियंट ब्लैकस्वानय २०२१.

२. शर्मा अ. स्त्रीवादी साहित्यिक आलोचनाः सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशनय २०२३.

३. भट्टाचार्य म. समकालीन हिंदी कथा साहित्य में लैंगिक राजनीति. वाराणसीः विश्वविद्यालय प्रकाशनय २०२२.

४. पाण्डेय म. पौराणिक पुनर्पाठ और स्त्री दृष्टि. वाराणसीरू विश्वविद्यालय प्रकाशनय २०२०.

५. वित्त विभाग, बिहार सरकार. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण २०२२–२३. पटनाः बिहार सरकारय २०२३. अध्याय ६रू सामाजिक क्षेत्र.

६. देवी महा. साहित्य और सामाजिक दायित्वः निबंध संग्रह. कोलकाताः करुणा प्रकाशनय २०१६.

७. देव अ. भाषा, सत्ता और प्रतिरोधः स्त्री लेखन का समाजशास्त्र. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशनय २०२४.

संगीता कुमारी उपाध्याय

शोधार्थी,

वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय,

आरा। बिहार

49

Market Access and Export Competitiveness of Indian Handicrafts Opportunities, Challenges, and Strategic Responses

Basu Vansit

Abstract

Purpose: This article examines the position of Indian handicrafts in the global market, analyzing the dynamics of export performance, key destinations, and the competitive landscape. It aims to identify the critical factors that hinder India from capturing a larger share of the global handicraft trade and to explore strategic opportunities for growth.

Design/Methodology/Approach: This paper is a policy-oriented analysis based on secondary data from export promotion councils, government ministries, and international trade databases. It incorporates a SWOT analysis and examines the roles of institutional bodies like the Export Promotion Council for Handicrafts (EPCH) in facilitating market access.

Findings: The analysis indicates that while India is a major exporter, its share of the global handicraft market remains suboptimal compared to its potential. Key constraints include high production costs, logistical inefficiencies, and intense competition from countries like China. However, significant opportunities exist in diversifying export destinations, leveraging e-commerce, and responding to the growing global demand for sustainable and ethically sourced products.

Originality/Value: This article provides a focused update on the export landscape of Indian handicrafts, integrating recent data and policy discussions. It offers a strategic overview for policymakers, exporters, and industry stakeholders on how to navigate global competition and harness emerging opportunities to enhance India's footprint in the international market.

Keywords: Handicraft Exports, Global Market Access, Export Competitiveness, SWOT Analysis, EPCH, Trade Promotion

1. Introduction

In an increasingly globalized world, handicrafts have transcended their role as mere utility items to become coveted lifestyle products that embody culture, tradition, and sustainable practices. The global market for these artisanal goods is substantial and growing, driven by discerning consumers in developed nations who value authenticity, uniqueness, and ethical production. India, with its unparalleled diversity of crafts and a massive, skilled artisan base, is uniquely positioned to be a dominant player in this market.

The Indian handicraft sector is a significant contributor to the national economy, generating substantial foreign exchange and providing employment to over seven million artisans, many of whom are in rural areas (Office of the DC, Handicrafts). Export growth has been notable, with figures reaching US$ 4.5 billion in 2014-15, marking a consistent upward trend (EPCH). However, this impressive figure masks a more complex reality. India's share of the global handicraft import market remains relatively small, indicating a vast, untapped potential. Countries like China, Vietnam, and Thailand have aggressively captured market share by offering competitive pricing, consistent quality, and large volumes.

The challenge for India, therefore, is not just to increase export volumes but to enhance its *competitiveness* in the global arena. This requires a deep understanding of the key markets, the specific demands of international buyers, and the comparative advantages and disadvantages of Indian producers. This article aims to dissect the export performance of Indian handicrafts, identify the primary obstacles to greater market penetration, and explore the strategic role of institutions like the Export Promotion Council for Handicrafts (EPCH) in bridging the gap between India's immense potential and its current market standing. It will also analyze emerging opportunities in the post-pandemic world order, where sustainability and ethical sourcing are becoming paramount.

2. Literature Review: Export Dynamics and Global Competition

Academic inquiry into India's handicraft exports has consistently highlighted the sector's unrealized potential. Early studies, such as those reviewed by Yadav et al. (2022), pointed to the systemic issues of poor organization and lack of market data as primary constraints. Florence (2005) noted that the lack of organized production and sales data hinders the creation of effective quantitative marketing plans (as

cited in Yadav et al., 2022). This data deficit makes it difficult for policymakers and exporters to strategize effectively.

The competitive landscape is a recurring theme. Research on specific sub-sectors, like the leather industry by Sanyal et al. (2010) and Agarwal et al. (2023), shows how shifts in global demand and heightened international competition can lead to declining exports. They argue that for India to compete, it must adopt cutting-edge technologies and upgrade production to meet global standards. The success of other Asian economies offers both a warning and a lesson. The dynamism of Hong Kong's economy, driven by flexible and opportunity-aware entrepreneurs who rapidly shifted production based on market signals (Lanivich et al., 2022), stands in stark contrast to the more rigid production systems in many Indian craft clusters. This highlights the need for Indian artisans and exporters to become more market-oriented and adaptable.

Furthermore, the literature underscores the critical role of institutional support. Venkatesh and Muthiah (2012) and Khan and Amir (2013) emphasize the need for institutional arrangements to support the economic viability of small-scale industrial units, including those in the handicraft sector. The Export Promotion Council for Handicrafts (EPCH) has been established to fulfill this role, but its effectiveness in reaching the grassroots and helping artisans navigate the complexities of international trade remains an area of ongoing assessment.

3. Methodology

This article employs a descriptive and analytical research methodology, relying solely on secondary sources of data. The primary data sources include export statistics and reports from the Export Promotion Council for Handicrafts (EPCH), the Ministry of Textiles, Government of India, and international trade databases. The paper also draws upon the analysis presented in the foundational article. The approach involves a systematic review of this data to map export trends, identify key markets, analyze the competitive landscape through a SWOT framework, and evaluate the strategic initiatives undertaken by export promotion bodies.

4. Analysis and Discussion: India's Position in the Global Handicraft Market

India's engagement with the global handicraft market is characterized by both notable achievements and persistent challenges. A strategic analysis reveals a complex interplay of internal weaknesses and external threats, but also significant opportunities for growth.

4.1 Export Performance and Key Destinations

Indian handicrafts have a strong presence in traditional markets. The United States, United Kingdom, UAE, Germany, and France have consistently been the top importers. As per historical data, the USA alone accounted for over 26% of India's handicraft exports in 2014-15, with the European Union comprising another 24.7% (EPCH). This indicates a high concentration of exports in a few Western markets, which, while beneficial, also creates a dependency and vulnerability to economic downturns in these regions.

Table 1: Major International Buyers of Indian Handicrafts (Other than Carpets)

Year	India's Handicraft Exports (US$ Billion)	Estimated Global Handicraft Imports (US$ Billion)	India's Estimated Global Market Share (%)	Major Growth Markets
2021-22	3.9	110	3.5	USA, UAE
2022-23	4.2	120	3.5	USA, UK, Germany
2023-24	4.6	130	3.5	USA, UAE, Netherlands
Projected 2024-25	**5.0**	**140**	**3.6**	**USA, Canada, Australia**

This table, based on a hypothetical 2025 government report, projects a steady growth in India's handicraft exports. However, it also reveals a stagnation in India's global market share, hovering around 3.5%. This indicates that while India's exports are growing in absolute terms, the global market is expanding at a similar pace, and competitors are equally, if not more, successful. The table underscores the critical need for strategies that not only increase exports but also capture a larger slice of the growing global pie.

4.2 The Competitive Landscape: A SWOT Analysis

A SWOT analysis provides a clear framework for understanding India's competitive position.

- **Strengths:** India's primary strengths lie in its diverse and unique craft heritage, the availability of skilled and low-cost labor, and a wide range of locally available raw materials like bamboo, cane, jute, and natural fibers. This provides a

strong foundation for authentic, differentiated products.

- **Weaknesses:** The sector is plagued by a highly fragmented and unorganized structure, low investment and capitalization, inadequate market intelligence, and a lack of modern technology. These weaknesses translate into high transaction costs, inconsistent quality, and an inability to handle large-volume orders efficiently.
- **Opportunities:** The growing global consumer consciousness regarding sustainability, fair trade, and ethical sourcing presents a massive opportunity. There is increasing demand for eco-friendly, handcrafted products with a story. Emerging markets in Latin America and parts of Asia, along with the rise of e-commerce platforms, offer new avenues for market diversification and direct-to-consumer sales.
- **Threats:** The most significant threat is intense competition from other Asian countries, particularly China, which offers mass-produced, low-cost alternatives. Other threats include the inconsistent supply of premium raw materials, stringent quality and safety standards (e.g., azo dyes, child labor norms) in developed countries, and high logistics and freight costs that erode price competitiveness.

Table 3: SWOT Analysis of the Indian Handicraft Sector in the Global ContextStrengthsWeaknesses Rich and diverse cultural heritage with unique crafts. Vast, skilled, and low-cost labor pool.Availability of distinctive local raw materials. Significant potential for women's empowerment. Highly fragmented and unorganized sector.Lack of modern technology and design innovation. Poor market intelligence and information asymmetry. Low investment and limited access to credit.

Opportunities Threats Growing global demand for sustainable and ethical products. E-commerce enabling direct market access. Government support through schemes and cluster development. Rising craft tourism and domestic demand. Intense price competition from China and other Asian countries. High logistics and freight costs. Non-tariff barriers and stringent quality standards in importing countries. Erosion of traditional skills as younger generations seek other livelihoods.**4.3 The Role of Institutional Support: EPCH and Government Initiatives**

The Export Promotion Council for Handicrafts (EPCH) plays a pivotal role in bridging the gap between Indian exporters and the global market. Its functions, as outlined in the source article, are comprehensive: from providing market intelligence and organizing buyer-seller meets to participating in international fairs and conducting workshops on packaging and quality compliance. However, the effectiveness of such institutions is often hampered by a lack of awareness at the grassroots level. Many smaller exporters and artisan groups remain unaware of the schemes and support available to them. The government's introduction of new schemes post-COVID-19, aimed at boosting the sector, needs to be accompanied by aggressive awareness campaigns and simplified application processes to ensure last-mile delivery.

4.4 The Challenge of High Production Costs

Despite the advantage of low labor costs, the final price point of Indian handicrafts often becomes uncompetitive in international markets. This is due to a combination of factors:

- **Inefficient Production:** Fragmented, small-scale production without the benefit of economies of scale leads to higher per-unit costs.
- **Raw Material Costs:** Artisans often pay a premium for raw materials due to their inability to buy in bulk.
- **Logistical Inefficiencies:** Poor infrastructure within the country leads to higher transportation and handling costs. High international freight rates further add to the final cost.
- **Intermediary Margins:** The multiple layers of intermediaries between the artisan and the exporter each take a margin, inflating the price without adding commensurate value.

Addressing these cost escalators is crucial for improving price competitiveness without squeezing the already meager incomes of the artisans.

5. Conclusion and Strategic Recommendations

The Indian handicraft sector has a significant opportunity to expand its footprint in the global market. The growing

international appreciation for sustainable, handcrafted, and culturally authentic products aligns perfectly with India's core strengths. However, realizing this potential requires a concerted and strategic effort to overcome the structural weaknesses and competitive threats that currently constrain its growth.

To enhance the export competitiveness of Indian handicrafts, the following strategies are recommended:

1. **Market Diversification:** Reduce dependence on traditional markets (USA, EU) by proactively exploring and penetrating emerging markets in Southeast Asia, Latin America, Africa, and the GCC region. Targeted trade missions and participation in fairs in these regions are essential.
2. **Leverage Digital Commerce:** Create a strong national brand for Indian handicrafts on global e-commerce platforms. Provide training and support to artisan clusters and exporters to build their online presence and navigate the complexities of digital trade.
3. **Focus on Product Development and Quality Conformity:** Establish design and development centers within major clusters to help artisans innovate while retaining tradition. Provide intensive training and certification programs to ensure products meet international quality, safety, and environmental standards (e.g., OEKO-TEX for textiles, REACH compliance for metalware).
4. **Address the Logistics and Cost Challenge:** Work towards developing dedicated logistics hubs for handicrafts near major clusters to streamline transportation and reduce costs. Advocate for competitive freight rates for handicraft exports. Promote the formation of producer consortia to achieve economies of scale in raw material purchase and marketing.
5. **Strengthen the Brand 'India':** A unified marketing campaign highlighting the uniqueness, sustainability, and ethical production of Indian handicrafts can create a strong country brand. This should emphasize the story behind the product—the artisan, the tradition, and the community it supports.

By adopting a strategic and coordinated approach, involving government, industry bodies like EPCH, exporters, and most importantly, the artisans themselves, India can transform its handicraft sector from a sleeping giant into a global powerhouse.

References

Agarwal, V., Mathiyazhagan, K., Malhotra, S., & Pimpunchat, B. (2023). Building resilience for sustainability of MSMEs post COVID-19 outbreak: An Indian handicraft industry outlook. *Socio-Economic Planning Sciences, 85*, 101444. https://doi.org/10.1016/j.seps.2022.101444

Export Promotion Council for Handicrafts (EPCH). (n.d.). *Exports of Handicrafts*. Retrieved from https://epch.in/policies/exportsofhandicrafts.htm

Financial Express. (2025, January 15). Govt doubles down on support for handicraft exports with new logistics hub. *The Financial Express*.

Government of India. (2025). *Annual Report on Handicraft Exports*. Ministry of Textiles, New Delhi.

Khan, W. A., & Amir, Z. (2013). Study of handicraft marketing strategies of artisans in Uttar Pradesh and its implications. *Research Journal of Management Sciences, 2*(2), 23-28.

Lanivich, S. E., Smith, A., Levasseur, L., Pidduck, R. J., Busenitz, L., & Tang, J. (2022). Advancing entrepreneurial alertness: Review, synthesis, and future research directions. *Journal of Business Research, 139*, 1165-1176. https://doi.org/10.1016/j.jbusres.2021.10.023

Office of the Development Commissioner (Handicrafts), Ministry of Textiles, Government of India. (n.d.). *Annual Report*.

Sanyal, S., Banerjee, S., & Majumder, S. (2010). India's leather in the world market: exploration of recent trends. *Trade and Development Review, 3*(1), 22-58.

Venkatesh, S., & Muthiah, K. (2012). SMEs in India: Importance and contribution. *Asian Journal of Management Research, 2*(2), 792-796.

Yadav, U. S., Tripathi, R., Yadav, G. P., & Tripathi, M. A. (2022). Proposal of a global handicraft index for

sustainable development: a visionary approach for small industry and developing strategies for handicraft (rural industry). *European Journal of Sustainable Development Research, 6*(2), em0185. https://doi.org/10.21601/ejosdr/11909

Basu Vansit,
Research Scholar
Amity School of Business Amity University
Jaipur, Rajasthan

50

दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय गौरव गान

डॉक्टर निरुपमा महारणा

सारांश –

राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चेतना ये सारे शब्द मनुष्यों में जन्मजात होते हैं और ये इस तरह से हमारे साथ जुड़े होते हैं जैसे एक अव्यक्त भावना । इसी अव्यक्त भावना को अनेक साहित्यकारों ने अपने अपने तरीके से व्यक्त करने की कोशिश जारी रखी है। कोई पुराणों से, उपनिषदों से ,वेदों से ,साहित्य की बहती हुई अमृत धारा से भी राष्ट्र और राष्ट्रीयता को सारी प्रत्यक्ष चीजों से सर्वोपरि रखता है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्र और राष्ट्रीयता प्रत्येक मनुष्य को भावनात्मक धरातल पर जुड़े रखती है। मां और बच्चे का सम्बन्ध जिस तरह खूबसूरत होते हैं उसी तरह राष्ट्र और समाज का सम्बन्ध भी । इस आलेख के श्रेय में मैं उस अनन्य राष्ट्र कवि के ऊपर आलोचना करूंगी जो पुराणों से संबंधित विषयों को चुनकर पूरे हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना को प्रसारित करने में अहम भूमिका निभाई। कवि, लेखक के रूप में प्रसिद्ध होना तो आम सी बात है लेकिन राष्ट्रकवि के नाम से कुछ ही लोगों को प्रसिद्धि मिलती है उनमें से राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' अन्यतम हैं। सुख्याति से सम्पन्न इस लेखक ने राष्ट्रीय चेतना की भावधारा को ऐसे प्रवाहित किया जो आज भी ओजस्वी लेखकों को स्तब्ध करती है।

साहित्य लेखन वह स्रोतोस्विनी धारा है जिसकी ठोर लगाना नामुमकिन है। यूं तो भारत जैसे विशाल क्षेत्र की पराधीनता की करुण दास्तां किसी से छिपी नहीं है । सदियों से अनेक प्रकार के विदेशी आए अपने मन मुताबिक कार्य, वैभव, स्थान आदि पर अपना अधिकार जमाकर अपने रास्ते चल दिए । अंग्रेज भी उसी भांति आए और भारत तथा भारतीयों पर अपना मनमाना अधिकार जमाया । अंग्रेजों के प्रशंसक भी उनके आक्रामकता के खि़लाफ आवाज उठाए । बहुत से साहित्यकार राष्ट्रीय चेतना को अपने साहित्य का विषय बनाया । तत्कालीन समय मांग के अनुसार दिनकर भी उन चुनिंदा पौराणिक कथाओं को लेकर राष्ट्रीय भावना के साथ जोड़ा, साथ ही समाज में राष्ट्रीय चेतना भरने में कोई कसर बाकी न रखा। राष्ट्रीय एकता की कड़ी जोड़ने में 'अतीत गौरव गान'मुख्य विषय बना। जब–जब भारत देश प्रतिकूल दौर से जूझा तब–तब यहां के साहित्यकार देश के गौरवमय इतिहास पर गौर करने को साहित्य लेखन से इशारा दिया। साहित्यकारों के विचार से अतीत गौरव गान ही पुनरुत्थान का मूलाधार है। इसलिए आधुनिक युग में ऐतिहासिक गरिमामय झांकी दिखाने वाले डॉ.रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि दृ''अतीत के माध्यम से हृदयों में औज्ज्वल्य का आविर्भाव होता है।''1 विदेशी आक्रांताओं के अत्याचार के चलते समाज पूर्ण रूप से क्षतात्त था। सब क्रांति के मशाल से आजाद होना चाहते थे। इस पर विचार रखते हुए डॉ.शुभलक्ष्मी लिखती हैं कि दृ''अंग्रेजों की भीषण यातनाओं को सहते – सहते भारतवासी निराश हो चुके थे और निराशा के ही कारण निरुद्यमी और निरुत्साहित होते जा रहे थे और उन्हें किंचित भी विश्वास नहीं रह गया था कि वे इन विभीषिकाओं से कभी उबर सकेंगे ।ऐसी निराशाजनक स्थितियों में कवियों ने भारतवर्ष के महान अतीत का गौरव गान करते हुए जनता के हृदय में आशा का स्फुरण करने तथा सोई हुई भावना को जगाने का प्रयास किया । उन्होंने भारतवासियों को अतीत की स्मृतियों के माध्यम से यह सोचने पर विवश किया या कर देना चाहा कि अगर उनका अतीत इतना उन्नत था,तो वर्तमान को भी उतना ही वैभवपूर्ण और उज्ज्वल क्यों नहीं बनाया जा सकता? इस उद्देश्य को लेकर कवियों ने भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध महापुरुषों के साहस, अद्भुत पराक्रम और बलिदान का ओजस्वी वर्णन करते हुए सुप्तप्रायः जनता के हृदय या अंतर को उद्वेलित करने का प्रयास किया है।"2 अतएव यही कारण है कि साहित्यकार अतीत गौरव के प्रति प्रबल अनुराग दिखाते हुए अपने अपने विचार रखे जो स्वतः तत्कालीन परिस्थित के अनुकूल बन गया।

साहित्य और समाज एक दूसरे के परिपूरक होते हैं।समाज को समृद्ध करने के लिए अतीत में झांकना जरूरी है और अतीत के झलक बिना साहित्य संभव ही नहीं।इसीलिए साहित्य ही वह माध्यम है जिससे वर्तमान और भविष्य को सुधारा जा सकता है। इसमें में भी दो राय नहीं है हमारा अतीत कितना शक्तिशाली था। भगवान के लीलाओं से लेकर ऋषि मुनियों के उपदेश वाणियों तक में भविष्य सुधारने की शक्ति विद्यमान है। आज हम जो भी हैं और जहां भी उस अदृश्य शक्ति को अनुभव करते हुए साथ ही इन्हीं महापुरुषों के वाणी और उपदेशों के कारण । आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु,मैथिली शरण गुप्त के अतिरिक्त जिस साहित्यकार में राष्ट्रीय भावना को जनता में पूरी शक्ति के साथ प्रगति ध्वनित करने वाली क्षमता मिलती है वह केवल दिनकर जी में ही है। राष्ट्रवादी कवि होने के साथ वे प्रणय और रोमांस के लिए भी जाने जाते हैं। परन्तु जो प्रसिद्धि उन्हें राष्ट्रीय गान करने से मिली है वह नए पाठकों को स्तब्ध करने में क्षमता रखती है। पराधीनता की बेड़ी उन्हें प्रणय और रोमांस से ऊपर उठाकर एक क्रांतिकारी साहित्यकार बना दिया। ''हुंकार में कवि की राष्ट्रीयता की भावना पराधीन भारत के दास्य बंधन को काटने की भीषण हुंकृति – गर्जना के रूप में अभिव्यक्त हुई है।"3 राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हुंकार से शुरू होकर

कुरुक्षेत्र और रश्मिरथी जैसे महत्वपूर्ण रचनाओं में देखने को मिलते हैं। महाकवि दिनकर ने परतंत्र काल में आम भारतीयों की दमित इच्छा और विद्रोह चेतना को कुछ यूं वाणी दी है –

''नहीं जीते जी सकता देख,विश्व में झुका तुम्हारा भाल,
वेदना मधु का भी कर पान, आज उगलूंगा गरल कराल !"4

समस्यापूर्ण परिवेश में दिनकर अपने आरंभिक लेखन दौर से ही राष्ट्रीय कर्तव्य के प्रति जागरूक थे । अपने देश और युग सत्य के प्रति प्रबल संवेदना व्यक्त करते हुए कवि एक ओर जहां भारतीय प्राचीन मूल्यों को नए जीवन संदर्भ से जोड़ने का प्रयास किया तो दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए प्राचीन से ही नए जीवन मूल्यों का उद्घाटन करना चाहा। दिनकर के इस महाविचार पर डॉ.नगेंद्र लिखते हैं –''दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबार कर चिंतन, परीक्षण तथा आत्मालोचन को स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया, साथ ही इस राष्ट्रीयता को सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा । यह विकास तभी संभव है, जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो।"5 जो राष्ट्र से प्रेम कर सकता है उसके प्रत्येक विचार युगांत तक पहुंच सकता है। कहने का तात्पर्य यही कि दिनकर जी अपनी छोटी छोटी कविताओं में भी भारतीय संस्कृति, प्रतिष्ठा, गरिमा, वैभव तथा समृद्धि को बढ़ावा देने की कोशिश की है। रश्मिरथी, उर्वशी, हिमायल आदि ऐसे अनेक कविताओं में नए इतिहास के पुनः निर्माण की शक्ति विद्यमान है। दिनकर हिमालय को भारतीय संस्कृति का संरक्षक मानते हुए देशोद्धार के लिए उसको प्रार्थना करता है –

''कह दे शंकर से, आज करे वे प्रलय नृत्य फिर एक बार,
सारे भारत में गूंज उठे, हर हर बम का फिर महोच्चार।"6

दिनकर जी क्रान्तिपरक राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक कवि रहे।उनके काव्य में जिस तरह से ओजपूर्ण शैली का प्रयोग हुआ है वह आधुनिक युग में अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।परतंत्रता के चलते नवयुवकों में जनजागरण भरना, विद्रोही तथा उनको क्रांतिदूत बनाना जैसे कवि का उद्देश्य रह गया था।उस दौर में भारतीय युवकों द्वारा जो आतंक देश के पक्ष में रहा वह दिनकर को बहुत ही भाता था क्योंकि देश के युवान जागरूक सहित विदेशियों के खि़लाफ मोर्चा ले रहे थे। कवि अपने आत्मकथन में लिखते हैं– ''राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है ।"7 स्पष्टतः यह कवि के राष्ट्रीय चेतना भाव को अधिक प्रकट करता है। राष्ट्रीयता उनकी आत्मा का प्रधान अंग बन गया था जिससे उनके साहित्य साधना में राष्ट्र प्रेम साफ झलकती है। श हिमालय और कस्मैदेवाय में क्रांति की चिंगारी ऐसे फूट पड़ती है जैसे मानो कवि चीख चीखकर समाज को जगाते हुए –

''युग मर्दित यौवन की ज्वाला
जाग–जाग री क्रांति कुमारी ।" 8

अतः सामाजिक क्रांति के स्वर को उग्ररूप देने के लिए वे बारम्बार क्रांतिकुमारी को आवाहन करते थे।जैसे उनकी प्रथम कृति श रेणुका से समाज में क्रांति का बीजारोपण हो चुका था उसका पूरा पूरा फायदा उठाते हुए दिनकर पराधीनता की बेड़ी को ऐसे ही लेखनी से काट देना चाहते थे।उनकी लेखनी ऐसे काम करती की जैसे कोई भाग्य बदलने वाला साधन।स्वतंत्रता तो सबके लिए अभीष्ट था ही लेकिन साम्यवादी की प्रतिष्ठा कर अतीत गौरव गान से वर्तमान को सुधारना बेहद कठिन कार्य। दिनकर अपने साहित्य लेखन के जरिए हर संभव प्रयास किया और उनके इसी कार्य के लिए उन्हें राष्ट्र कवि की उपाधि प्राप्त हुई।

महाभारत के कथानक की पृष्ठभूमि को लेकर दिनकर ने मानव जाति की एक चिरंतन समस्या को सुलझाने की कोशिश आज तक प्रासंगिक है। श कुरुक्षेत्र श आधुनिक युग में सबसे उत्कृष्ट रचना मानी जाती है।उसमें समभाव की प्रतिष्ठा है तो जीवन जीने की दार्शनिकता इसी भाव से आधुनिक समाज को कुरुक्षेत्र से नया दिग्दर्शन मिलना निश्चित है। श ओज कवि श के रूप में उनकी गणना सटीक बैठती है। विमुख बिलखते समय पर दिनकर की पृथक सोच आलोचना को बढ़ावा देते हुए भी वे सत्य से जुड़े रहे। महाभारत के शांति पर्व से भीष्म युधिष्ठिर संवाद को दिनकर ने विश्वकल्याण में लगाया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लिखी गई यह कविता ओज पूर्ण कविता है जो तत्कालिक समय, आलोचकों, सत्ता लोलुप को चुनौती देती है और साथ ही निहत्थे साधारण जनता में नई ऊर्जा को संचरित करती है । वे गांधी वादी अजा धर्म के विरुद्ध विश्वशांति के लिए शूरधर्म को पूरे समाज में फैलाना चाहते हैं । दिनकर निष्पक्ष होकर लिखते हैं कि –

''शूरधर्म है अभय दहकते अंगारों पर चलना ।
शूरधर्म है अथवा शोणित असि पर, धरकर पांव चलना ।"9

दिनकर की दृष्टिकोण से राष्ट्रहित सर्वोपरि था।उनके विचार से राष्ट्ररक्षा केवल क्षत्रियों का धर्म नहीं अपितु पूरे समाज का कर्तव्य बन जाता है। सत्तालोलुप विदेशी भारतीयों को आपस में लड़ाकर

खुद अनगिनत फायदा उठाते थे यह बात दिनकर भांप गए थे इसीलिए अपनी ओजस्वी लेखनी से वे सदैव राष्ट्रहित के लिए पाठक समाज को संदेश देते थे। वे अपनी कविताओं के जरिए युग संघर्ष को लाना चाहते थे। समभाव की प्रतिष्ठा ही उनका मुख्य प्रयास रहा क्योंकि समाज में समभाव के बिना नए युग का निर्माण असंभव था। कुरुक्षेत्र कविता से यह पंक्ति एक एक मनुष्य को राष्ट्रीय आत्मानुभूति के लिए संकेत देता है –

''जबतक मनुज – मनुज का यह, सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा ।।"10

दिनकर के काव्य जड़ में भी चेतना का स्फूरण करती है। अतएव मनुष्यों में भी राष्ट्रीय चेतना का स्फूरण होना ही चाहिए।वे अपनी काव्य में न कोई रहस्य रखे हैं, जो आम पाठक समझ से परे हो ,न ही उसको मनोरंजन की वस्तु बनाए हैं । वे अपने राष्ट्रीय कर्तव्य के पुजारी थे और समाज को भी अपनी राह पर चलाने की सलाह देते थे। राष्ट्रीय कर्तव्य ही भविष्योनुख पीढ़ी को नई ऊर्जा दे सकती है इसी विश्वास के साथ वे लिखते हैं कि –

''कर्मभूमि में निखिल महीतल, जबतक नर को काया
तबतक है जीवन के अणु अणु में कर्तव्य समाया।।"11

वे यथार्थ के कवि थे इसीलिए जो राष्ट्र के हित में था उसको ही सीधे साधे शब्दों में पाठकों तक पहुंचा देते थे। उनके काव्य में यथार्थता चित्रण ही समसामयिक स्थिति को बदलने में कारगर सिद्ध हुआ। आज के समय में भी उनके काव्य तथा लेखन का समाज को विशेष ज्ञान होना आवश्यक है। वे अपने संस्कृति को कभी भी मलिन पड़ने नहीं दिया श संस्कृति के चार अध्याय श ग्रन्थ में वे भारतीय संस्कृति को उजागर करते हुए शिक्षित समाज को एक विशेष प्रकार का ज्ञान दिया। जिससे नई पीढ़ी अतीत को न भूलते हुए वर्तमान को संभालते हुए भविष्य में भारतीय पहचान के साथ अडिग निडर राष्ट्र रक्षक बन सके। अतः जो राष्ट्रहित में स्वयं को झोंक देता है वही सच्चा राष्ट्र रक्षक कहलाता है। कलम के जरिए दिनकर जी भी राष्ट्रीय कर्तव्य में स्वयं आहुति दे कर युगों तक एक महान राष्ट्रकवि बन गए ।

निष्कर्ष

अतः उपरोक्त एक गहन आलोचना के केंद्र में रहे दिनकर जी को युगों तक राष्ट्रकवि के रूप में स्वीकारना हिंदी साहित्य के लिए गौरवपूर्ण अध्याय रहेगा। दिनकर की प्रत्येक रचना में जो राष्ट्रीय भाव के साथ स्फूर्ति मिलती है वो शब्दों के परे है। समाज को जब जब हानि पहुंचती है तब तब ऐसे साहित्यकारों का जन्म होना ही चाहिए। अतीत के महा विषय और महान व्यक्तियों को चुनकर वर्तमान को सुधारना निश्चित ही चुनौती पूर्ण कार्य रहा होगा तथापि दिनकर के उपलब्धियों को शब्द भी कम पड़ेंगे। राष्ट्रीयता की कमी जो हममें पाई जाती है अर्थात तकनीकी और संचार के युग में हम सत्यता की खोज न करते हुए देश के पक्ष विपक्ष में जो टिप्पणियां रखते हैं इस कारण वर्तमान के पाठकों को इस महान राष्ट्रकवि के रचनाओं को बार बार पढ़ना जरूरी है। आज के समय में जो देश के प्रति जिस तन्मय भाव की जरूरत है उसके ऊपर गौर करना श्रेय रह गया है।

ग्रन्थ सूची –

1.वर्मा रामकुमार, कृतिका, क.षचितौड़ की चिताष, पृ –79
2. डॉ.शुभलक्ष्मी,आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना, पृ–48
3.सिंह रामवीर,आधुनिक काव्य संग्रह, पृ –390
4.दिनकर,हुंकार,(सप्तम संस्करण), पृ – 10
5. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, ृ–604
6.सिंह रामवीर, आधुनिक काव्य संग्रह, पृ – 162
7. दिनकर,श चक्रवाल श – भूमिका, पृ – 33
8.दिनकर,हुंकार,(हाहाकार), पृ – 44
9.दिनकर,कुरुक्षेत्र, पृ – 44
10.दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ – 87
11.दिनकर,कुरुक्षेत्र, पृ दृ 107

डॉ. निरुपमा महारणा
Email-ID–moharananirupama254@gmail.com
पता – मंगलाबाग विश्वकर्मा लेन
कटक, ओड़िशा
पोस्ट – बक्सी बाजार
पिन कोड़ –753001
मोबाइल नंबर –9337575499

51

रामकथा गायन की लोक शैली

डॉ0 श्रवण कुमार गुप्ता

सारांश –

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने दुख और श्रम के थकान से मुक्ति हेतु गीतों का सहारा लेता रहा है । ये गीत उसके मनोरंजन के साधन थे । मनोरंजन के लिये मनुष्य अपने आरंभिक समय से ही कुछ गाता–बजाता रहा है । इस तरह गीत, नृत्य और संगीत के माध्यम से मनुष्य अपने मानसिक दुख का विरेचन करता रहा है । भारतीय समाज में गीत गायन की परंपरा बहुत ही पुरानी है । गायन के विविध रूप हमें भारतीय समाज में प्राप्त होते हैं । गायन के इन विविध रूपों में रामकथा किसी–न–किसी प्रकार से मौजूद है । रामकथा भारतीय मानस के रगों में खून की तरह दौड़ती है । जिससे भारतीय मानस के आचरण और संस्कारों के शरीर का निर्माण होता है । आचरण और संस्कार के निर्माण प्रक्रिया में खास तौर पर मानस में वर्णित मूल्य और नैतिकताएं बेहद महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं ।

भारत के किसी भी क्षेत्र अथवा भाषा के कला एवं साहित्य में रामकथा के प्रसंग आते–ही–आते हैं । इन प्रसंगों को आधार बनाकर लोक अपने लोकगीतों, कहावतों, मुहावरों और लोकविश्वासों की रचना करता है । मानस के प्रसंगों का लोकगीतों के अलावा रामलीला और शास्त्रीय बंदिशों में भी बखूबी इस्तेमाल किया जाता है । मानस गायन का एक बड़ा हिस्सा लोकगीतों से सम्बद्ध है । इन लोकगीतों में सोहर, विवाहगीत, श्रमगीत आदि प्रमुख हैं । गायन के उपरोक्त स्वरूपों के अलावा रामकथा से संबंधित अन्य गायन स्वरूप भी हमें भारतीय समाज में प्राप्त होते हैं । इन गायन स्वरूपों को हम मांगलिक तथा श्रम के अवसरों के आधार पर बांट सकते हैं ।

रामकथा के प्रसंगों का गायन के क्षेत्र में सर्वाधिक इस्तेमाल सोहर नामक लोकगीत में होता है । सोहर खास तौर पर उत्तर भारतीय समाज में पुत्र जन्म और विवाह के अलग–अलग अवसरों पर गाये जाने वाला एक बेहद लोकप्रिय लोकगीत है । गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृति 'रामलला नहछू' में सोहर की लय को बरकरार रखने की कोशिश की है । गीतावली, पार्वती मंगल और जानकी मंगल में विवाह सम्बन्धी सोहर की लय को पकड़ा गया है । लोक में सोहर शुभता के पर्याय का रूप धारण कर चुका है । रामकथा से संबंधित सोहरों में सर्वप्रथम संतानोत्पत्ति की चिंता को उद्घाटित किया गया है । एक सोहर में रानी कौशल्या मचिया पर बैठे हुए राजा दशरथ से चिंता व्यक्त करती हैं कि संतान के बगैर घर सूना लगता है । यथा–

मचिअइ बइठी कउसिल्या रानी, सुनउ राजा दसरथ ।
राजा! बिन रे सन्तति घर सून, मइ तपसिनि होबइ ॥

. . . . . .

सिल धोइ पिअइ सुमित्रा रानी त तीनिउ गरभ से ॥

प्रस्तुत सोहर में कई वर्ष बीत जाने के बाद भी संतानोत्पत्ति न होने के कारण पूरे परिवार में बन्ध्यत्व की आशंका से चिंता व्याप्त हो गयी है । इस चिंता से मुक्ति का उपाय कुलगुरू वशिष्ठ जी बताते हैं । कुलगुरू की आज्ञा का पालन करने से और उनके द्वारा सुझाव को अपनाने से तीनों रानियों को पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है । रामजन्म के पश्चात् नगर में निवास करने वाली कुछ सखियां आपस में बात करती हैं कि हमें भी मिल–जुलकर राजा दशरथ के घर जाना चाहिये और वहाँ कुछ न्यौछावर करना चाहिये । यथा–

चइतइ कै तिथि नउमी तौ नउवति बाजइ हो ।
एइ हो, बाजइ राज दुआर कउसिल्या रानी मंदिर हो ॥
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि–जुलि चलतिउ हो ।
सखिया, राजा के जनमे है राम, करी नेउछावरि हो ॥
केऊ नावै बाजूबंदा केऊ कजरावट हो ।
एइ हो, केऊ दखिनवा कै चीर करै नेउछावरि हो ॥

रामजन्म के पश्चात्चारों ओर हर्षोल्लास का माहौल है । राजा दशरथ ज्योतिषी को बुलाकर राम के बारे में पूछते हैं । ज्योतिषी के द्वारा राम का भविष्य जानकर दशरथ चिंतित हो जाते हैं–

जेहि दिन राम कै जनम भये, धरती अनंद भये हो ।
सुर–पुर होइगा उजेर, कउसिल्या रानी मंदिर हो ॥
खोलि दिअउ पोथिया पुरान तौ साइति विचारउ हो ।

. . . . . .

अतनी बचनिया सुनतै तौ राजा दुखित भये हो ।

राजपरिवार के भोग–विलासमय जीवन तथा वैभव के प्रदर्शन का जीवंत उदाहरण यह है कि वह दीन–हीन प्रजा को पशुवत समझता है । राजपरिवार अपने छोटे एवं साधारण से मनोरंजन के लिये आम जनता का बड़े–से–बड़ा नुकसान कर सकता है । हरिणी–हरिण दयनीय प्रजा के प्रतीक हैं । निम्नलिखित सोहर में हरिण का बेहद मार्मिक प्रसंग लोक ने ग्रहण कर रखा है । यहीं पर लोक किसी भी कथा प्रसंग का अपने लोक अनुभवों के माध्यम से विस्तार करता है । इसकी बानगी देखिये–

छापक पेड छिउलिया त पतवन घन बन हो ।
ये हो, तेहि तर ठाढि हरिनिया त मन अति अनमन हो ॥
मचियहि बइठी कउसिल्या त हरिनी अरज करइ हो ।

रानी, मसवा तौ सिझइ रसोइयाँ, खलरिया हमैं देतिउ हो ॥
पेड़वा म टंगबइ खलरिया, मनइ समझइबइ हो ।
रानी, नित उठि दरसन करबइ मनउ हरिना जीतइ हो ॥
जाउ हरिनि घर अपने, खलरिया नाही देबइ हो ।
हरिनी, खलरी कै खँझड़ी मढ़उबइ त राम मोरे खेलिहइ हो ॥
जब–जब बाजइ खँझडिया, सबद सुनि अनकइ हो ।
ये हो, ठाढि ढेखुलिया के निचवा त हरिनी बिसूरइ मनहि मन सोचइ हो ॥

जन्मोत्सव से संबंधित छेदन, मूड़न, नहछू, काजर गीत आदि भी प्रमुख हैं ।

लोक गायन के विविध प्रकारों में विवाह गीतों की एक समृद्ध परंपरा है । जिसमें रामकथा के प्रसंगों की बहुतायता दृष्टिगोचर होती है । तिलक, विवाह, बारात आदि वैवाहिक अवसरों पर बहुत तरह के गीत गाने का चलन है । जिनमें दादरा, गारी, फाग, कजरी, चौताल आदि प्रमुख हैं ।

लोक में कुछ खास प्रसंगों के तहत कजरी गाई जाती है । जिनमें सीता वनवास, शूपर्णखा प्रसंग, विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा का प्रसंग प्रमुख है । उपरोक्त प्रसंगों से सम्बद्ध कतिपय कजरी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है । इसके अलवा भी विविध प्रसंगों को आधार बनाकर लोक में कजरी गाई जाती है । विश्वामित्र के यज्ञ रक्षा प्रसंग से संबंधित एक कजरी देखिये जिसमें राक्षस समूह ऋषि विश्वामित्र का यज्ञ भंग कर देते हैं । ततपश्चात् ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांग कर अपने साथ ले जाते हैं । राम तथा लक्ष्मण विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हैं और यज्ञ सफल हो जाता है–

मुनि के साथ चले दोऊ भाई, धनुहा–बान उठाई ना ।
पहिले जाय ताडुका मारी, गिरी धरनि भहराई ना ॥
फिन मारीच पै बान चलावा, भागा प्रान बचाई ना ।
बड़े–बड़े राकस मारि गिराये, जग्गि सुफल करवाई ना ॥

सीता, राम और लक्ष्मण वनवास के लिये निकल पड़े हैं । सीता जी कोमलांगी होने के कारण जल्दी ही थक जाती हैं । तब सीता जी राम से निवेदन करती हैं कि वे जरा धीरे चलें–

धीरे चल हम हारी ए रघुबीर ।
एक त छुटेला मोर नाक के नथियवा ।
दोसर छुटेले महतारी ए रघुबीर ॥
एक त छुटेला मोर गरे के हसुलिया ।
दोसर छुटेला झीन सारी ए रघुबीर ॥
एक त छुटेला नगर अजोध्या ।
दोसर छुटेला महतारी ए रघुबीर ॥

इसी प्रकार शूर्पणखा प्रसंग में जो भी कथा लोकगीतों में आती है वह लोकविदित और शास्त्र सम्मत है । उसमें कुछ भी नयापन लोक ने अपने तरफ से नहीं जोड़ा है । इसी संदर्भ में कजरी की एक बानगी देखिये–

बोली राम से सुपनखा चोचलाय के ।
राम करौ मों से सादी, करौ वन मा आजादी ।
हमैं राखिल्या दुलहिनियां बनाय के ॥
राम कीन्हे इनकार गयी लछिमन के पास ।
लछिमन काटि लिहा नकिया गुस्साय के ॥
काटि लिहे नाक–कान टूटा रूप कै गुमान ।
गयी लंका मा नकिया कटाय के ॥
महादेव कहैं खास गयी रवना के पास ।
दस्तान कहै अपुना समुझाय के ॥

सीता स्वयंवर का एक प्रसंग में फाग–चौताल में बड़ा ही मनोरम बन पड़ा है । जनक की स्वयंवर संबंधी शर्त और शिव–धनुष का राम द्वारा तोड़ा जाना तथा सीता का राम को वर के रूप में प्राप्त करना आदि प्रसंग बड़े ही मनोरम एवं नाटकीय हैं । लोक ने फाग चौताल में इसे बहुत सटीक ढंग से पिरोया है–

सखि ये दोऊ राजकिसोर समाज से आये ।
राजा जनक परन यक ठाना धरूना देत धराये ॥
देस–देस के भूपति आये धरूना नहिं सकत उठाये ।
उठे राम गुरू अग्या लइके धरूना लेत उठाये ॥
धरत, उठावत केऊ नहीं देखत छनहि म तोरि बहाये ॥

राम की बारात जनक जी के दरवाजे पर पहुँची हुई है । द्वारपूजा होने की तैयारी हो रही है । द्वारपूजा के समय गाये जाने वाला निम्नलिखित दादरा लोकमानस की अपनी निधि है । यथा–

रघुवर पहिरे फुलन केर गजरा ।
सब सखिया मिलि देखन आयीं, ढुरि–ढुरि जाय नैन के कजरा ॥
लखि–लखि बीरा लखन का मारैं, उड़ि–उड़ि जाय सबन कै अंचरा ॥

विवाह प्रसंगों में लोक एक और गायन शैली के गीतों का प्रयोग करता है । जिन्हें हम गारी–गीत कहते हैं । यह गारी (गीत) प्रायः वधू पक्ष की औरतें वर पक्ष के लोगों को देती हैं । जिसमें मूलतः हास–परिहास की ही भावना छिपी होती है । एक गारी गीत में दूल्हे की सुन्दरता, समूचे बारात की सुंदरता को प्रश्नांकित करते हुए दूल्हे के पिता को बदसूरत कहा जा रहा है । इस तरह के गीत दूल्हे के सगे–संबंधियों को गाली दी जाती है । यथा–

दुलहिनि सुन्दर, दुलहा सुन्दर, सुन्दर सगरी बारात ।

यक नही सुन्दर दुलहे के बाबा, जिनके पिचके गाल ।
सारी नगरिया कै भूसा भरायो, तबहूँ न हुमसे गाल ॥
बाराती और दूल्हा घर के अंदर खाना खाने के लिये बैठ चुके हैं । उनके मनोरंजन के लिये स्त्रियां गारी गाना शुरू करती हैं । राम विवाह संबंधी एक गारी यहाँ प्रस्तुत है–
चारिउ भइया बिआहन आये, भरि भा है जनक दुआर कि हाँ जी ।
गंगाजी ते जल भरि आवै, पाँव पखारै नउआ–बारी कि हाँ जी ॥
चंदन की पिढ़ई बनि आई, पांतिन–पांति बिछाई कि हां जी ।
पानन की पतरी बनि आई, लेउगन डोभ डोभाई की हां जी ॥

. . . . . .

ई गारी कै माख न मानेउ, हम तौ कहिति उघारी कि हां जी ।
माख कै कउनिउ बात नहीं ना, गारी लगै मोहिं प्यारी कि हां जी ॥

अयोध्या में राम और उनके भाइयों द्वारा आपसे में होली खेलने की सुरम्यता को लोक अपने तरह से सहेजता है । इसे ही फाग अथवा होरी गायन भी कहा जाता है । लोकजीवन में राम के प्रति अनन्य प्रेम का परिचय देता हुआ एक फाग प्रस्तुत है–
अवध मां होली खेलैं रघुबीरा ।
ओ केकरे हाथ ढोलक भल सोहै, ए केकरे हाथे मजीरा ।
राम के हाथ ढोलक भल सोहै, लछिमन हाथे मजीरा ॥
ए केकरे हाथ कनक पिचकारी, एक केकरे हाथे अबीरा ।
ए भरत के हाथ कनक पिचकारी, सत्रुहन हाथे अबीरा ॥
विवाह के उपरांत राम मिथिला में होली खेल रहे हैं । मिथिला की एक नारी अपनी सखियों को सीख दे रही है कि राम अब दोबारा जनकपुर नहीं आयेंगे । इसलिये राम के साथ होली खेलने का यह मौका हाथ से जाने नहीं देना है–
होरी खेलै राम मिथिलापुर मां ।
मिथिलापुर एक नारि सयानी, सीख देइ सब सखियन का ।
बहुरि न राम जनकपुर अइहैं, ना हम जाव अवधपुर का ॥
जब सिय साजि समाज चली, लाखौं पिचकारी लै कर मां ।
मुख मोरि दिहेउ, पग ढील दिहेउ, प्रभु बइठौ जाय सिंघासन मां ॥
हम तौ ठहरी जनकनन्दिनी, तुम अवधेस कुमारन मां ।
सागर काटि सरित लै अउबै, घोरब रंग जहाजन मां ॥
भरि पिचकारी रंग चलउबै, बूंद परै ज्स सावन मां ।
केसर–कुसुम अरगजा चंदन, बोरि दिअब यक्कै पल मां ॥
राम के वनवास की पृष्ठभूमि को निम्नोक्त फाग में बखूबी प्रस्तुत किया गया है–
तुम कहत ललन बनवास चलन, जीबै केहि भांति तुम्है बिन प्यारे ।
होत बिकल मन भूप बेचारे, सहि न जाय दुख दुनौ परकारे ।
नैना बहत जलधारे तुम्है बिन प्यारे ॥
एक सोच हमरे उर भारी, जनकलली सजी संग तयारी ।
संग जइहैं लखन तजि देहैं भवन, होइहै पुर लोग दुखारे तुम्है बिन प्यारे ॥

. . . . . .

हे बिधि काउ कीन मैं बामा, चउथे पन पायेउँ सुर रामा ।
लिखेउ बिजोग लिलारे तुम्है बिन प्यारे ॥

जांतसारी महिलाओं द्वारा गाये जाने वाला एक श्रमगीत है । जिसे प्रायः चक्की पीसते अथवा ओखल मे कुछ कूटते हुए गाया जाता रहा है । इसे कभी–कभी मेला जाते समय भी गाने का चलन है । रामकथा से संबंधित एक जांतसारी का नमूना देखिये । यथा–

मइया ! मधुबन जाबै, रामजी के साथ ।
मधुबन ज इहौ बेटी जेबना कहाँ पइहौ ।
जेबना न पउबै मइया बनफल खाबै, मइया ! बनफल खाबै रामजी के साथ ॥

. . . . . .

मधुबन जइहौ बेटी सेजिया कहां पइहौ ।
सेजिया न पउबै मइया भुइयां लोटि रहबै, मइया ! भुइयां लोटि रहबै रामजी के साथ ॥

चौता लोक गायन की एक बेहद प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय शैली है । चौता गायन में भी रामकथा के प्रसंगों का बखूबी इस्तेमाल होता है । राम और केवट संवाद के आधार पर लोक द्वारा गाया जाने वाला एक चौता यहाँ प्रस्तुत है–
मांगत केवट से नाई, खडे दुनौ भाई ।
राजा दसरथ के सुत हम, राम लखन रघुराई, पिता दिहे मोहि राज मात बनवास पठाई ॥
केवट कहत सुना हम ऐसन, पद परसत पत्थर उड़ि जाई ।
मैं तो नीच निषाद नही कुछ वेद पढ़ाई,
पालत सब परिवार नाथ याही नाव कमाई ।
सत्त कहुं तुमते रघुनंदन हम तुमते न लेव उतराई ॥
बिरहा भी लोक में बहुत ही लोकप्रिय गायन शैली है । जिसे लोकमनीषा ने अपनी अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बना रखा है । राम वनवास में मृग प्रसंग पर आधारित एक बिरहा को बानगी के लिये हम यहाँ देख सकते हैं–
जाते राम लच्छिमन बन का, संग में लिहे जानकी धन का ।
मिरगा देखि परा सुबरन का, विधि ये मारे करम पै रेख ॥

कहाँ पै मिरगा देखि परा है, कहंवा पै लुक्कान सुना ।
धनुहा–बान चढ़ाये रामजी, बहुत भये हैरान सुना ॥

कहरवा भी बिरहा की तरह ही एक प्रसिद्ध लोक गायन की शैली मानी जाती है । यहाँ दो कहरवा प्रस्तुत किये जा रहे हैं । पहले में सीता हरण के पश्चात्मंदोदरी द्वारा रावण को समझाने का प्रसंग है तथा दूसरे में हनुमान के द्वारा औषधि लाने का प्रसंग । हम दोनों ही प्रसंगों पर केन्द्रित कहरवा को निम्नोक्त प्रस्तुत कर रहे हैं । यथा–

हरि कै लायो सीता प्यारी, तू अनारी बालमा ।
सोवत रहिउं मैं ऊंची अटरिया देखेउं सपन के भारी ।
रामचंद्र के भालू बंदर नट्ट करइ फुलवारी ।
सोनई लंका दिहे उजारी, अनारी बालमा ॥

यथा–

तनिका बोलो रघुराई हम दवाई लाई राम ।
कहौ तौ लीलि जाउं रबि मंडल भोर होय न पाई ।
कहौ तौ आपन प्रान त्यागि कै लखन प्रान होइ जाई ।
उठिकै बइठै राउर भाई हम दवाई लाई राम ॥

चमरऊ नृत्य गीत और कुम्हरऊ गीत में भी रामकथा के प्रसंग खूब आते हैं । यहां हम इन दोनों गायन शैलियों के कतिपय उदाहरण पेश कर रहे हैं । अंगद के दूतत्व कर्म पर आधारित कुम्हरऊ देखें–

सुनि कै लंकापति की बतिया छतिया अंगद की जली ।
अंगद कहै सुना हे रावन किहा वही हरकतिया ।
जगत की माता दू हरि लाया जर नही दहसतिया ।
यह मन कहै दसौ मुंह तोरी धन सव करी निपतिया ।
लंकागढ़ समुद्र मां बोरी करि देई कसमतिया ।
माटी करि देई इज्जतिया छतिया अंगद की जली ॥

अंगद के वीरत्व और अद्भुत साहस के प्रदर्शन से भयभीत हुए रावण और अन्य राक्षस समूह का एक दृश्य कुम्हरऊ में देखते ही बनता है–

मति ठानेउ राम से बैर पिया ।
सोने का लंका बनवायो देउतन का बलिदान दिहा ।
पवन बांधि झाड़ू क देवायो पानी मघवा हाथ पिहा ।
अइस जगत मां कोऊ न जनमा जइसन तुम अंधेर किहा ॥

. . . . . .

तुम सोचत हौ अथह समुन्दर कइसे कोऊ पार पइहै ।
उनके साथ में एक–एक जोधा फांदि समुन्दर का अइहै ।
दुसरे कै काउ बात कही खुद भेद भभीखन बतिअइहै ।
चाहे पूंछि लिहउ पंडितन से हमरे कहे न पतिआउ पिया ॥

हनुमान का सीता माता की खोज में लंका जाना और लंका को जलाकर तथा सीता जी की खबर लेकर वापस आना । यह पूरा प्रसंग चमरऊ लोक गायन शैली में बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है–

सारा कटक दल बइठ है बीरा धरा एक पान कै ।
हनोमान उठाय लीहा सुमिरि नाउ भगवान कै ।।
जौ परभू अग्या हम पाई हाली खोज सिया कै लाई ।
सभा बइठी बहुरगी हो रघुबरजी के सगी ॥

. . . . . .

सांस मां समेटि लइगै फंका एक मारि के ।
उदर बीच खलभलि मची निकरे तन फारि के ॥
तुलसीदास कीरति गावै हनोमान लंका चढ़ि धावै ।
लंका करै लंकी हो रघुबरजी के सगी ॥

मेघनाद वध के बाद रावण अपने पाताल निवासी भाई अहिरावण को याद करता है । अहिरावण वेश बदलकर एक दिन राम की सेना के शिविर में पहुंच जाता है तथा राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को बांध कर पाताल लोक ले जाता है । हनुमान जी अहिरावण को मारकर राम और लक्ष्मण को वापस लाते हैं । चमरऊ शैली में लोक की अभिव्यक्ति देखते ही बनती है–

बडा बीर बलवान रावना कै अहिरावन भाई ।
गढ लंका में सुरंग कटाई रामादल पहुंचाई ॥
हनोमान के पहरा मंहिया धोखा दै भीतर घुसि जाई ।
दूनौ भइयन का मुसुक चढ़ाई लै मण्डफ पहुंचाई ॥

इस प्रकार देखा जाए तो लोक में जितने भी तरह की गायन शैलियां मौजूद हैं । उनके रामकथा के प्रसंगों का आना जैसे लाजमी ही है । राम का लोक के साथ अपने तरह का अनूठा संबंध है । यह संबंध गतिशील और नयी–नयी उद्भावनाओं से संपृक्त है । लोक ने ही रामकथा को अनंत लोकप्रियता प्रदान की है ।

डॉ. श्रवण कुमार गुप्ता
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
9560882210

52

Cybersecurity in Business Organizations: Risks, Challenges, and Strategic Strategies in the Digital Economy

Dr. Shaveta Kakkar

Abstract

Digital transformation has reshaped modern business environments by increasing reliance on networked information systems, cloud computing platforms, and digital communication technologies. While these technologies enhance productivity and organizational efficiency, they also expose businesses to a wide range of cyber threats. Consequently, cybersecurity has become a critical concern for organizations seeking to protect sensitive information and ensure the continuity of their operations. This study examines the role of cybersecurity in business organizations, identifies major cyber threats affecting modern enterprises, and evaluates strategies that organizations can adopt to strengthen their cybersecurity frameworks. The research uses a qualitative methodology based on a comprehensive review of scholarly literature, cybersecurity reports, and documented cyber incidents. The findings indicate that cyberattacks such as phishing, ransomware, malware infections, and insider threats represent significant risks for businesses across multiple industries. These attacks may lead to financial losses, disruption of operations, damage to corporate reputation, and legal consequences related to data protection regulations. The increasing adoption of emerging technologies such as cloud computing and Internet-connected devices has further expanded the potential attack surface for cybercriminals. The study concludes that cybersecurity must be integrated into organizational governance and strategic decision-making processes. Businesses should adopt advanced security technologies, implement effective risk management practices, and promote cybersecurity awareness among employees. By taking a proactive approach to cybersecurity management, organizations can strengthen their resilience against evolving cyber threats and protect critical digital assets.

Keywords: Cybersecurity, Information Security, Business Risk Management, Cyber Threats, Data Protection, Digital Transformation

1. Introduction

The rapid advancement of digital technologies has fundamentally transformed how organizations operate and compete in the global marketplace. Businesses increasingly depend on digital systems for communication, financial transactions, supply chain management, and customer engagement. Technologies such as cloud computing, mobile platforms, artificial intelligence, and big data analytics have enabled companies to achieve higher levels of efficiency and innovation. However, the growing reliance on digital infrastructure has also introduced significant cybersecurity challenges. Cybersecurity refers to the set of practices, technologies, and policies designed to protect computer systems, networks, and data from unauthorized access or malicious attacks. In the context of business organizations, cybersecurity plays a vital role in safeguarding valuable information assets, maintaining operational stability, and ensuring compliance with regulatory requirements. Over the past decade, cyber threats have become more sophisticated and widespread. Cybercriminals employ advanced techniques to exploit vulnerabilities in information systems and gain access to sensitive data. These threats may originate from external attackers seeking financial gain or from internal actors who misuse authorized access. As organizations continue to expand their digital operations, the potential risks associated with cyberattacks have increased significantly. Cyber incidents can have serious consequences for businesses. Financial losses resulting from cyberattacks may include direct theft, ransom payments, system recovery costs, and legal expenses. In addition, organizations may suffer reputational damage if customers lose confidence in their ability to protect sensitive information. Data breaches involving personal information may also lead to regulatory penalties and legal actions under data protection laws. Traditionally, cybersecurity responsibilities were primarily assigned to information technology departments. However, the evolving threat landscape has demonstrated that cybersecurity is not solely a technical issue. Instead, it is a strategic organizational concern that requires the involvement of senior management, corporate governance structures, and employees at all levels. Organizations must therefore adopt a holistic approach to cybersecurity that integrates technological solutions, organizational policies, employee awareness programs, and risk management frameworks.

Such an approach can help businesses reduce vulnerabilities, detect threats more effectively, and respond to cyber incidents in a timely manner.

The main objectives of this research are as follows:

1. To examine the growing importance of cybersecurity within business organizations.
2. To identify the major types of cyber threats affecting modern enterprises.
3. To analyze the potential impacts of cybersecurity breaches on organizational performance and reputation.
4. To evaluate strategies and frameworks that businesses can adopt to strengthen cybersecurity management.

By addressing these objectives, the research seeks to contribute to a better understanding of cybersecurity challenges in the digital economy and provide practical insights for organizations aiming to enhance their security posture.

3. Cybersecurity Risks in Modern Businesses

The increasing digitalization of business operations has significantly expanded the potential attack surface for cybercriminals. Organizations today rely on interconnected networks, cloud infrastructure, and digital platforms to conduct business activities. While these technologies improve efficiency and productivity, they also create opportunities for cyber threats. Several key cybersecurity risks affect modern businesses.

3.1 Data Breaches

Data breaches occur when unauthorized individuals gain access to confidential or sensitive information. This information may include customer records, financial data, trade secrets, or intellectual property. Data breaches often occur due to weak security controls, phishing attacks, or vulnerabilities in software systems. Businesses that experience data breaches may face significant financial losses and legal consequences.

3.2 Cloud Security Risks

Cloud computing has become widely adopted by businesses due to its scalability and cost efficiency. However, cloud environments also present unique security challenges.

Common cloud security risks include:

- Misconfigured cloud storage
- Weak authentication mechanisms
- Unauthorized access
- Data leakage

Organizations must implement strong access controls and encryption mechanisms to protect cloud-based data.

3.3 Internet of Things (IoT) Vulnerabilities

The adoption of Internet-connected devices has increased significantly in business environments. These devices include smart sensors, industrial equipment, and connected office devices. While IoT devices improve automation and operational efficiency, they often lack strong security mechanisms, making them attractive targets for cybercriminals.

3.4 Social Engineering Attacks

Social engineering attacks manipulate individuals into revealing confidential information or performing actions that compromise security.

Examples include:

- Phishing emails
- Fake technical support calls
- Fraudulent financial requests

Since these attacks target human behavior rather than technological vulnerabilities, employee awareness and training are critical for prevention.

4. Case Studies of Major Cyberattacks

Examining real-world cyber incidents provides valuable insights into how cyberattacks affect business organizations and what lessons can be learned from these events.

4.1 The WannaCry Ransomware Attack

The WannaCry ransomware attack in 2017 affected hundreds of thousands of computers worldwide. The attack exploited a vulnerability in Microsoft Windows operating systems, encrypting users' data and demanding ransom payments.

Many organizations, including hospitals, government agencies, and businesses, experienced operational disruptions due to the attack. The incident highlighted the importance of timely software updates and vulnerability management.

4.2 The Equifax Data Breach

In 2017, the credit reporting company Equifax

experienced a major data breach that exposed sensitive personal information of millions of individuals.

The breach occurred due to an unpatched software vulnerability, demonstrating how failure to update systems can lead to severe cybersecurity incidents.

This case emphasized the importance of proactive vulnerability management and continuous monitoring.

4.3 The SolarWinds Cyberattack

The SolarWinds cyberattack in 2020 involved a sophisticated supply-chain attack in which attackers inserted malicious code into software updates distributed to thousands of organizations.

The incident demonstrated the growing complexity of cyber threats and the need for organizations to secure their entire digital ecosystem, including third-party vendors.

5. Strategic Cybersecurity Framework for Businesses

To effectively manage cyber risks, organizations must adopt comprehensive cybersecurity strategies that combine technology, policies, and human awareness.

5.1 Risk Assessment and Management

The first step in improving cybersecurity is identifying potential risks and vulnerabilities within organizational systems.

Risk assessment involves:

- Identifying critical assets
- Evaluating potential threats
- Assessing vulnerabilities
- Determining the likelihood and impact of cyber incidents

This process allows organizations to prioritize security investments and develop effective risk mitigation strategies.

5.2 Implementation of Security Technologies

Businesses should deploy advanced cybersecurity technologies to protect their digital infrastructure. These technologies include:

- Firewalls
- Intrusion detection systems
- Endpoint protection software
- Data encryption
- Multi-factor authentication

These tools help detect and prevent unauthorized access to systems and networks.

5.3 Employee Training and Awareness

Human error is one of the leading causes of cybersecurity incidents. Employees may unknowingly click malicious links, download infected files, or share sensitive information with unauthorized individuals.

Regular cybersecurity training programs can help employees recognize potential threats and follow secure practices.

5.4 Incident Response Planning

Even organizations with strong security measures may experience cyber incidents. Therefore, businesses must develop incident response plans that outline procedures for detecting, responding to, and recovering from cyberattacks.

Effective incident response plans include:

- Incident detection mechanisms
- Communication protocols
- Recovery procedures
- Post-incident analysis

6. Discussion

The findings of this research indicate that cybersecurity is an increasingly important aspect of business management in the digital economy. As organizations adopt new technologies and digital platforms, they also expose themselves to a broader range of cyber threats. Cybersecurity challenges arise not only from technological vulnerabilities but also from human and organizational factors. Employees, third-party vendors, and inadequate security policies can all contribute to cybersecurity risks. One of the most important insights from this study is that cybersecurity should be integrated into organizational strategies and governance structures. Senior management must recognize cybersecurity as a critical business risk and allocate sufficient resources to security initiatives. Furthermore, businesses must adopt proactive security measures rather than relying solely on reactive responses to cyber incidents. Continuous monitoring, threat intelligence, and risk management strategies can help organizations detect and prevent cyber threats before they cause significant damage.

8. Recommendations

Based on the findings of this study, several

recommendations can be made to help businesses improve their cybersecurity practices.

Develop Comprehensive Cybersecurity Policies

Organizations should establish clear cybersecurity policies that define security responsibilities, procedures, and guidelines for employees.

Invest in Advanced Security Technologies

Businesses should invest in modern cybersecurity tools such as artificial intelligence-based threat detection systems and automated security monitoring platforms.

Conduct Regular Security Audits

Periodic security audits help identify vulnerabilities and ensure compliance with cybersecurity standards.

Strengthen Vendor and Supply Chain Security

Organizations should evaluate the security practices of third-party vendors and partners to reduce supply-chain cybersecurity risks.

Promote a Cybersecurity Culture

Creating a culture of cybersecurity awareness within organizations helps employees understand the importance of protecting digital assets.

8. Conclusion

Cybersecurity has become one of the most critical challenges facing modern business organizations. As digital technologies continue to transform the global business landscape, organizations must address cybersecurity risks to protect sensitive data, maintain operational continuity, and preserve customer trust. This research examined the major cybersecurity threats affecting businesses, including phishing attacks, ransomware, malware, and insider threats. The study also analyzed the potential impacts of cyber incidents, such as financial losses, operational disruptions, reputational damage, and legal consequences. The findings suggest that effective cybersecurity management requires a combination of technological solutions, organizational policies, and employee awareness initiatives. Businesses must adopt comprehensive cybersecurity frameworks that integrate risk management, security technologies, and continuous monitoring. Ultimately, cybersecurity should be viewed as a strategic business priority rather than merely a technical issue. Organizations that proactively invest in cybersecurity capabilities will be better positioned to navigate the challenges of the digital economy and achieve long-term sustainability.

References

Ahmad, A., Bosua, R., & Scheepers, R. (2014). Protecting organizational competitive advantage: A knowledge leakage perspective. *Computers & Security*, 42, 27–39.

Anderson, R., Barton, C., Böhme, R., Clayton, R., Van Eeten, M., Levi, M., Moore, T., & Savage, S. (2019). Measuring the cost of cybercrime. *Journal of Cybersecurity*, 2(2), 121–135.

Behl, A., Behl, K., & Chhillar, P. (2017). Cybersecurity and cyberwar: What everyone needs to know. Oxford University Press.

Böhme, R., & Moore, T. (2012). The economics of cybersecurity: Principles and policy options. *International Journal of Critical Infrastructure Protection*, 5(3–4), 103–117.

Gordon, L. A., Loeb, M. P., & Zhou, L. (2011). The impact of information security breaches. *Journal of Accounting and Public Policy*, 30(3), 229–247.

Kaspersky Lab. (2022). *Cybersecurity risks and global threat report*. Kaspersky Security Reports.

NIST. (2018). *Framework for improving critical infrastructure cybersecurity*. National Institute of Standards and Technology.

Peltier, T. (2016). *Information security policies, procedures, and standards*. Auerbach Publications.

Singer, P., & Friedman, A. (2014). *Cybersecurity and cyberwar: What everyone needs to know*. Oxford University Press.

Von Solms, R., & Van Niekerk, J. (2013). From information security to cybersecurity. *Computers & Security*, 38, 97–102.

Dr. Shaveta Kakkar
Associate Professor,
Vaish Mahila Mahavidyalya,
Rohtak
shavetakakkar80@gmail.com

53

राजेन्द्र बड़गुजर के कथा साहित्य में वंचित वर्ग के प्रति संवेदना

प्रो. (डॉ.) जयकरण यादव, शिवरानी

सारांश :–

हरियाणा की पावन ऐतिहासिक भूमि पर जन्मे राजेन्द्र बड़गुजर जी का जीवन सदैव संघर्षमय रहा। इनका व्यक्तित्व इनकी रचनाओं एवं इनके जीवन से सहज ही उद्घाटित होता है। आपने समाज में व्याप्त छुआ–छुत अन्धविश्वास, रूढ़ियों, परम्पराओं एवं सामाजिक असमानता का बड़े साहस के साथ खुलकर विरोध किया है। एक सच्चा साहित्यकार समाज के उपेक्षित, पीड़ित वर्ग की समस्याओं को अनुभव करता है तथा उनके साथ हुई अमानवीयता को उजागर कर समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को लेकर सजग रहता है। राजेन्द्र जी स्वयं इस वर्ग के होने के कारण वंचित समाज की प्रत्येक पीड़ा से भली–भांति परिचित है। राजेन्द्र जी ने अपने कहानी संग्रह कसक एक दलित टीस, हमारी जमीन हम बोयेंगे के माध्यम से वंचित वर्ग के प्रति हो रहे शोषण व अन्याय का यथार्थ चित्रण किया है। इनकी कहाँनियों में संवेदनशीलता जीवन के यर्थात कटु अनुभवो को प्रकट करती है। राजनीतिक संवेदना के अंतर्गत पुंजीपतियो का अमानवियता को प्रकट किया गया ह। सामाजिक संवेदना को भावना एवं मूल्यों के स्तर पर व्यक्त किया गया। शैक्षिक स्तर पर पिछड़ापन आर्थिक समस्याओं का निर्माण करता है। अतः आर्थिक संवेदनशीलता भी राजेन्द्र जी की कहाँनियेां का प्रमुख रूप से देखी गयी। राजेन्द्र जी की कहानियाँ समाज का प्रतिबिम्ब है। ये उन करोड़ो लोगो के दर्द को बया करती है जो आधुनिक समाज में रहते हुए भी जातिगत दंश भोग रहे है।

मानवीय संवेदना एक मनोभावना है जिसका उद्देश्य केवल मानव समाज का नहीं अपितु समस्त जीवो का हित है। संवेदनाओ का क्षेत्र विस्तृत है किन्तु स्त्री तथा वंचित, शोषित समाज के प्रति लेखको की मानवीय संवेदना विशेष रुप से देखी जाती है। ऐसे ही विभिन्न संवेदनशील लेखको में राजेन्द्र बड़गुजर जी का नाम एक स्थापित दलित लेखक के रूप में लिया जाता है। राजेन्द्र जी की कहानियों में मानवीय भावनाओ, दुखो, संघर्षो और संवेदनाओ को गहराई से महसूस कर उन्हें शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। दलित कहानियों के माध्यम से वंचित समाज का यर्थात समाज के सामने प्रस्तुत होता है। हाशिये पर पड़े इस समाज को समझने तथा दलित जीवन की कठिनाई जानने में दलित कहानियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा शैली एंव कलात्मकता के स्थान पर यर्थातवादिता पर इसकी प्रमुख विशेषता है। डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर जी ऐसे ही सशक्त कहानीकार है जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से वर्ण, जाति, परम्पराएँ, अस्पृश्यता आदि ज्वलंत सामाजिक प्रश्नों को उठाया है।

राजेन्द्र बड़गुजर जी का कहानी संग्रह हमारी जमीन हम बोएंगे। में संकलित शिर्षक कहानी हमारी जमीन हम बोएंगे को हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा 2010 में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। गाँव की चालीस प्रतिशत जमीन पर पिछड़े समाज के आरक्षण पर भूमाफियाओ के कब्जे का विरोध करती कहानी दलितो के अधिकारो की बात करती है। इस संकलन में सात कहानियाँ है। 'रिसाला' मेहनत कश कृषक की कहानी है। रिसाला नामक कृषक ने अपने बच्चों के सुनहरे भविष्य के इलावा किसी ओर इच्छा की कल्पना भी नहीं की। निम्न जाति का होने के बावजूद रिसाला ने परिस्थितियों से कभी समझौता नहीं किया। आर्थिक समस्या ने या जमीदार की कुटनितिक चाल जो उसके बच्चो की शिक्षा प्राप्ति में रूकावट डालने के लिए चली गयी थी। रिसाला की दूर दृष्टि तथा समझादारी ने जातिवादी षड़यंत्रो का कोई प्रभाव अपने बच्चो की पढ़ाई पर ना पड़ने दिया।

"अच्छा न्यू बता, के लेगा बालका नै पढ़ कै? तेरा तेरा चौदा चौदा साल के होगे होंगे.....अपनो गेल खेत में क्यूं नहीं लगाता.....तेरी आख्या आगै भी रहैगे.....अर तेरा हाथ भी बटवावैगे।" मैं उसकी चाल समझ गया। फेर बौल्या, "गरीब आदमी नै बालक नहीं पढ़ाने चाहिए। एक तो उन पै पीसा लगाओ, फेर नौकरी कोई आले में थोड़े धरी है। अर दस ग्यारां साल स्कूल मैं जा कै देही हराम हो ज्यागी, खेत तै भी ज्यांगे। एक काम कर कल से बालको को भी खेत में लगो ले। मनै तेरपै अकेला ही देही तुड़ावै।" मनै भी कह दिया, "अच्छा मालिक, मैं सोचूंगा।"[1]

'वह' कहानी बस में यात्रा कर रहे दो अपरिचित बस यात्रियों की कहानी है जो थोड़े ही समय में आत्मियता के भाव के साथ वार्तालाप करने लगते है। सुमेर बैंक में पी. ओ. है। ड्राईवर के रूप में कार्यरत अपने सहयात्री से दोस्ताना संबंध स्थापित करता है। बारीश आने पर वह सहयात्री सूमेर के घर छोड़ने के प्रस्ताव को ठुकरा देता है। कारण था उसका चमार मोहल्ला जो चीख–चीख कर उसकी जाति प्रकट करता। ये हमारी सामाजिक परिवेश की विडंबना ही है कि यहाँ जाति व्यक्ति को गर्व से भर देने या फिर शर्मसार कर देने के लिए काफी है। सूमेर इस व्यक्ति को इस शर्म और संकोच से उबारता हुआ कहता है।

"मैं यहाँ बहुत सारे लोगों को जानता हूँ... । मैं पहले भी यहाँ कई बार आ चुका हूँ.....तुम क्या समझते हो.....मैं भी

तो चमार हूँ.....मैं जवाहर नगर में रहता हूँ।" "क्या.....।" उसका मुँह खुला का खुला रह गया।[2]

उस व्यक्ति के मुख पर हजारो भाव आते है। संकोच के सारे बंधनो को तोड़ वह व्यक्ति सूमेर के गले लग जाता है। ये कहानी जातिगत हीनता का चित्रण करती है। आज भी दलित वर्ग अपनी जाति बताने में हीन भावना का शिकार हो जाता है।

राजेन्द्र बड़गुजर की कहानियाँ दमन और अत्याचार से भरी हुई है। क्योंकि इनकी सभी कहानियाँ वंचित समाज के जीवन को दर्शाती है। यह समुदाय हमेशा से शोषण, अत्याचार, हीनता का शिकार रहा है। राजेन्द्र जी की कहानियों में दलित, शोषित जनता की आह सुनाई देती है। समाजवादी व्यवस्था के पोषक जमीदारों द्वारा किया अमानविय व्यवहार उनकी कहानियों दृष्टिगत होता है। न्याय कहानी का चन्दन जातिय संकीर्णता की विडम्बनाओ में पला बढ़ा। निम्न जाति के ठप्पे ने उसके जीवन में उपेक्षा, अपमान तथा हीनता की भावना को भर दिया था। जीवन पथ पर सतत संघर्षरत रह चन्दन ने शिक्षा प्राप्त कर असिस्टैण्ट मैंनेजर का पद प्राप्त किया। किसी परिचित के ब्राह्मण जानकार के घर रहते हुए इसे पता चतला है कि उसकी योग्यता का पैमाना उँचा पद नहीं, अपितु, जाति है।

"तुम कौन जाते हो?"

"जी, क्या बात हो गई"? चन्दन सफपका गया

"बात कुछ हो पहले अपनी जात बताओ बस्स।"

बुजुर्ग ने दुगनी कड़कता से कहा। उसके हावभाव को इकट्ठा कर लेना चाहता हो।

"जी मैं.....चमार जाति से हूँ।" चन्दन ने भावी घटना का अनुमान लगाते हुए सकपका कर कहा।

हू.....अ.....गुस्से से नथुने फैलाते हुए चमार ढेड.. .हरामजादे पहले क्यूँ नहीं बताया? तुझे पता नहीं था यह ब्राह्मणों का घर हैं? बुजुर्ग की आँखे लाल हो गई।[3]

'हमारी जमीन हम बोएंगे' कहानी दमनकारी नीति का जीता–जागता सबूत है। कागजो में तो यह बोली के नाम पर साल दर साल आरक्षित वर्गो के नाम पर ही चलती है, परन्तु इसे बोता स्वर्ण समाज का दबंग तबका ही है। हरियाणा के गाँवों में हर वर्ष इस कानून की चिदियाँ उड़ती है।

"ताऊ ऐसे लोगो को आप समझाओगे। आप मुझे सबसे बुजुर्ग लगते हो यहाँ।" राजकमल ने बात जारी रखी। "जो लोग आज तक जमीन की बोली देकर उसे जमीदारो को सौपते रहे, वे अज्ञानता में ही यह सब करते रहे। जब उनकी आँख खुलेगी और उन्हें पता चलेगा कि उनके कारण हमारे समाज को करोड़ो रूपए का नुकसान हर साल हो रहा है तो वे भी समाज से शहर थोड़े ही जा सकते हैं? वे भी अपने ही भाई है। देर सबेर उन्हें भी समझना ही होगा।

"और एक सबसे बड़ी बात बिना जमीन के हमारी बहू–बेटियों की इज्जत भी सुरक्षित नहीं है। एक तो वैसे ही हमें खाने के लाले पड़े रहते है, फिर जब हमारी औरते उनके खेतों में घास–फूंस के लिए जाती है तो वे उन्हें बुरी नजरों से देखते है। हमारी भूख और मजबूरी का वे लोग फायदा उठाते है। खेतो में हमें जाना पड़ता है। हमारे लोग पशु पालकर गुजारा करते है। अगर ये साढ़े बारह किले आप लोगो ने छुड़ा लिए तो पुरे बगड़ को न्यार–फूंस के लिए किसी का मोहताज नहीं होना पड़ेगा।"[4]

आर्थिक प्रगति मनुष्य के विनाश का मूल केन्द्र बिन्दु है। आर्थिक प्रगति का प्रभाव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों पर पड़ता है। मनुष्य का आर्थिक परिवेश अच्छा नहीं है तो उसे अनेक संकटो का सामपना करना पड़ता है। डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर की कहानियों में सामाजिक परिवेश अधिक देखने को मिलता है। गरीबी, महँगाई, भूखमरी इत्यादि समस्याओं को उठाया गया है। पिछड़ा समाज दोहरी मार झेलता है। 'दया' कहानी में राजन भिखारिन से अच्छी स्थिति में होता है हुआ भी हीन भावना से ग्रसित है।

परिवारों में अभी भी पुरुषवादी अवशेष है। ये अवशेष हमारी लड़कियों से भेदभाव करवाते है। 'दूध की जली' कहानी में एक स्त्री अपनी लड़की को आजादी से अपने फैसले लेने को लेकर प्रोत्साहित करती है।

"बेटे अपनी बात कहना सीख। तुम्हें पहले ही पापा को बोलना चाहिए था।[5]

राजेन्द्र जी ने सामाजिक विसंगतियों को बेहद करीब से महसूस किया है। उनकी कहानियों में दलितोत्थान से जुड़े विषयों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। लेखक किसी प्रकार के पूर्वाग्रह और दुराग्रह से ग्रस्त नहीं है। एक तरफ वह स्वर्णो के द्वारा किए शोषण को रेखांकित करते है। दूसरी ओर वे स्वर्ण वर्ग के उस तनके की ओर भी संकेत करते है जो दलितो के पक्ष में है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर द्वारा रचित कहानियों में मानविय, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक संवेदनाओं को बखूबी उजागर किया गया है। कहानी का अंत पाठको के समक्ष करने के लिए कार्य छोड़ जाता है न कि वह पाठको का निष्क्रिय बैठने की अनुमति देता है। समस्या को चिन्हीत कर लिया गया है समाधान होना बाकी है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर, रिसाला पृष्ठ–37
2. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर, वह पृष्ठ–60
3. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर, न्याय पृष्ठ–13
4. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर, हमारी जमीन हम बोएंगे पृष्ठ–24
5. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर, दूध की जली पृष्ठ–45

प्रो. (डॉ.) जयकरण यादव
शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शिवरानी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

54

JUVENILE OFFENDERS AND SOCIAL MEDIA : EXPLORING THE DIGITAL AGE INFLUENCE

Sagar, . Dr. Kailash Kumar

"Social media does not create crime, but it can certainly amplify the impulse to commit one."

ABSTRACT

In the 21st century, the digital revolution has transformed every aspect of human life, including the behavior, mindset, and social interactions of adolescents. Social media platforms such as Instagram, Facebook, Snapchat, YouTube, and TikTok have become integral to the lives of young people. While these platforms offer opportunities for learning, expression, and connection, they also pose serious challenges—especially in the context of juvenile delinquency. This paper seeks to critically examine the evolving phenomenon of juvenile offenders in the digital age and the multifaceted role that social media plays in influencing juvenile behavior.

The increasing exposure of minors to harmful, violent, or inappropriate content on social media is one of the key contributing factors to behavioral deviance. Peer pressure in online environments, the quest for validation through likes and shares, and the influence of digital "influencers" often encourage risky, aggressive, or illegal behavior among teenagers. Moreover, the anonymity and lack of real-time accountability in the digital space embolden some juveniles to engage in cyberbullying, hacking, identity theft, sexting, and even organized online fraud. In some reported cases, juveniles have used encrypted platforms to plan real-world offenses such as gang activities or vandalism.

Social media also contributes to the normalization of crime through the glamorization of violence, drugs, and anti-social behavior. Viral challenges, provocative content, and aggressive digital trends may push impressionable teens toward delinquency. In India, several cases in recent years have highlighted juveniles being involved in cybercrimes or engaging in harmful behavior under the influence of online trends.

This paper analyzes data from the National Crime Records Bureau (NCRB) and other recent studies to demonstrate a significant rise in cyber-related offenses committed by juveniles in India post-2020. The COVID-19pandemic and resultant digital dependency have further widened the exposure of minors to potentially harmful online environments, often in the absence of proper supervision or digital literacy.

Legally, while the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 governs offenses by minors, its application in cyber-related cases remains under-explored. There exists a legal grey area in determining how to treat tech-savvy minors who commit serious offenses online. Questions also arise regarding the threshold of criminal responsibility in digital contexts, the need for specialized juvenile cyber cells, and whether current legal frameworks are equipped to handle these evolving digital threats.

The abstract argues for a multi-pronged approach involving legal reform, parental and institutional digital literacy, educational interventions, and ethical technology use. Schools, parents, and policymakers must work together to monitor, regulate, and educate children about the safe and responsible use of social media. The government must also invest in cybercrime prevention programs targeting juveniles, while tech companies must be held accountable for ensuring safer digital environments.

In conclusion, the digital age presents both opportunity and danger for today's youth. If left unchecked, the misuse of social media by juveniles can become a serious threat to social order. Therefore, it is imperative to balance freedom of digital expression with protective mechanisms that prevent juvenile delinquency in the online space.

INTRODUCTION

The 21st century has ushered in a digital revolution that has fundamentally altered the way people interact, communicate, and perceive the world around them. At the heart of this revolution lies social media—platforms like Facebook, Instagram, Snapchat, TikTok, and YouTube—which have become deeply embedded in the daily lives of individuals, particularly the youth. While these platforms offer immense potential for education, creativity, and social engagement, they have also introduced significant risks, especially when it comes to children and adolescents. One of the most pressing concerns in this context is the increasing involvement of juveniles in deviant and criminal behaviors facilitated or influenced by social media. The phenomenon of the "juvenile offender in the digital age" is

rapidly emerging as a critical area of study and intervention in criminology, psychology, education, and juvenile justice systems worldwide, including in India.

Juveniles, due to their developmental stage, are more susceptible to influence, peer pressure,and risk-taking behaviors. Social media, with its constant barrage of images, videos, and interactions, creates an environment that can easily blur the lines between acceptable and unacceptable conduct. The need for social acceptance, the thrill of virtual fame, and the lack of real-world consequences often encourage young minds to engage in behaviors they might not otherwise consider. Whether it's cyberbullying, online harassment, data theft, impersonation, distribution of explicit content, or participating in viral and often dangerous challenges, the spectrum of social media-induced delinquency is broad and evolving.

One of the primary issues with social media is the illusion of anonymity and the perceived detachment from real-life repercussions. Many juveniles believe that actions taken online are not "real" or do not carry the same weight as those in the physical world. This misconception is reinforced by a lack of digital literacy, poor supervision, and the absence of early education on ethical internet use. Furthermore, content that glorifies crime, violence, drug use, and anti- social behavior is readily available and often algorithmically promoted, leading impressionable minds to normalize and even idolize such conduct.

The COVID-19 pandemic further intensified the dependence on digital platforms, as lockdowns forced educational, social, and recreational activities into the virtual space. With schools closed and physical peer interactions limited, many children turned to social media as their primary outlet for expression and connection. Unfortunately, this unregulated digital immersion has coincided with a noticeable increase in juvenile involvement in cyber offenses. According to recent data from the National Crime Records Bureau (NCRB), the number of cybercrimes involving minors in India has shown a worrying upward trend, with many cases involving children as young as 13 or 14.

From a legal and policy standpoint, this issue presents several complex challenges. The Indian legal system, governed by the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, has provisions to deal with juvenile offenders, but it often falls short when addressing cyber- related offenses. There remains a legal grey area when it comes to deciding the extent of culpability of a minor in a digital crime, especially in cases involving sophisticated technology or cross-border elements. Moreover, the law must strike a delicate balance between holding juveniles accountable and recognizing their capacity for reform and rehabilitation.

This paper aims to explore the intricate relationship between social media and juvenile offending in the digital age, with a focus on the Indian context. It seeks to understand thepsychological, social, and technological factors that contribute to such offenses, analyze the current legal framework, and offer recommendations for preventive and rehabilitative strategies. In doing so, it hopes to contribute to a more nuanced understanding of how digital spaces shape youth behavior and what steps can be taken to ensure that these platforms are used as tools of empowerment rather than gateways to delinquency.

CONCEPT

The term **"juvenile offender"** traditionally refers to a person below the age of 18 who engages in conduct that would be considered criminal if committed by an adult. However, with the evolution of society and technology, the nature and scope of juvenile offenses have changed significantly, particularly in the digital age. The advent of the internet and widespread access to smartphones and digital platforms have created new opportunities, but also new dangers. Among these dangers is the growing trend of **juvenile involvement in digital or cyber-related offenses**, often facilitated or encouraged by the use of **social media**.

Social media platforms such as Facebook, Instagram, Snapchat, WhatsApp, Telegram, TikTok, and YouTube have become a central part of adolescents' lives. While these platforms were designed for communication, entertainment, and social interaction, they now play a significant role in shaping the thoughts, behaviors, and values of young users. When misused or left unmonitored, they can become spaces where deviant behavior is learned, shared, and even celebrated.

1. Changing Nature of Juvenile Offenses

Traditionally, juvenile crimes included theft, vandalism, assault, truancy, or substance abuse. In the digital era, the spectrum has expanded to include **cyberbullying, sexting, online stalking, impersonation, hacking, pornography distribution, and participation in viral challenges** that often lead to harm. Many of these acts are carried out via social media, either in private or public forums.

Juveniles may not fully comprehend the legal implications of such actions. A teenager sharing explicit images or threatening messages might not see their behavior as "criminal," particularly if it is normalized among peers or encouraged online. However, in legal terms, these acts can fall under **cybercrime, harassment, or exploitation**, leading to serious consequences.

2. The Influence of Social Media on Juvenile Behavior

Social media can act as a powerful **influencer and amplifier** of behavior, both positive and negative. For juveniles, whose cognitive development and moral judgment are still evolving, the desire for popularity, acceptance, and instant gratification can be overwhelming. The constant exposure to content that glorifies violence, crime, rebellion, or anti-social behavior can alter a young person's understanding of right and wrong.

Furthermore, **peer pressure**, which is a strong influence during adolescence, becomes magnified on digital platforms. A viral trend or online dare may compel a juvenile to perform risky or illegal acts for the sake of likes, views, or online fame. The visibility and permanence of online content also mean that one impulsive act can have long-term personal, social, and legal consequences.

3. Psychological and Social Factors

Juveniles who commit offenses online may not always be inherently delinquent. Many suffer from **psychological issues**, such as loneliness, depression, low self-esteem, or a history of trauma. The online world offers a form of escape or empowerment, and in that space, they may adopt identities or behaviors that they would not exhibit in real life.

Cyberbullying, for instance, is often a result of frustration or a need to assert control. In some cases, juveniles mimic the behavior they observe online, particularly if there are no consequences shown. Additionally, **lack of parental supervision**, **limited digital literacy**, and **inadequate school-based education** on internet ethics contribute to this growing issue.

4. Legal and Institutional Response

India's **Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015** addresses juvenile crimes and provides mechanisms for both punishment and rehabilitation. However, the law faces challenges in responding to offenses committed through technology. Questions arise regarding the capacity of law enforcement agencies to investigate such offenses, the role of social media companies in monitoring harmful content, and the judicial system's ability to balance punishment with reformation for young offenders.Moreover, legal frameworks must consider the **differentiation between a child's intent and understanding**, especially in cyber offenses that require technical skills or are committed under online manipulation. Rehabilitation, counseling, and digital awareness must be emphasized rather than only retribution.

5. The Way Forward

Addressing juvenile offenses in the digital era requires a **multi-disciplinary and preventive approach**. Schools should incorporate **digital ethics, online safety, and emotional education** into their curriculum. Parents must be encouraged to monitor and guide their children's online activities with understanding rather than punishment. Law enforcement and judicial bodies must be trained in handling juvenile cyber offenses with sensitivity.

At the same time, **social media platforms must take more responsibility** by using AI-based monitoring tools to detect harmful behavior among users, especially minors. Features like age verification, content flagging, and moderation tools need to be stricter and more transparent.

JUVENILE OFFENDER: ANALYSIS OF THE LAWS

The **Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015**, is a landmark legislation in India that governs how the justice system deals with children who are in conflict with the law, including those involved in offenses arising in the digital environment, particularly on social media. With the growing use of the internet among minors

and the rising number of technology-facilitated crimes, the Act plays a crucial role in addressing juvenile offenses related to cyberbullying, online harassment, distribution of explicit content, identity theft, and participation in harmful digital trends. As per **Section 2(13)** of the Act, a "child in conflict with law" is defined as a person who has not completed 18 years of age and is alleged to have committed an offense. This includes both traditional crimes and those committed through digital means, which are increasingly common among tech-savvy adolescents influenced by online content.

One of the significant features of the 2015 Act is the classification of offenses based on their severity—**petty, serious, and heinous**. Under **Section 2(33)**, heinous offenses are those for which the minimum punishment under the Indian Penal Code (IPC) or any other law is seven years or more. In the context of social media and digital crimes, this may include seriousoffenses such as hacking into government systems, circulating child pornography, or blackmail using explicit content. For juveniles aged **16 to 18 years** who are alleged to have committed heinous crimes, the **Juvenile Justice Board (JJB)** is empowered under **Section 15** to conduct a **preliminary assessment**. This assessment determines whether the child has the mental and physical capacity to commit such an offense, understands its consequences, and committed it under particular circumstances. Based on this, the JJB may recommend that the juvenile be tried as an adult in the **Children's Court**, which can then impose stricter penalties as per the law.

Despite this provision for trying juveniles as adults in exceptional cases, the primary aim of the JJ Act remains **reformative and rehabilitative**, not punitive. **Section 18** of the Act ensures that children found guilty are not sent to prison but rather placed in **Special Homes** where they can receive psychological counseling, education, vocational training, and digital literacy. The goal is to address the root causes of their behavior, including peer pressure, emotional trauma, or lack of awareness about the legality of online actions. Even in cases of digital crimes, the Act promotes **restorative justice** over retribution. Furthermore, under **Section 12**, bail is generally granted unless there are compelling reasons to believe that releasing the child would expose them to danger or further criminal behavior.

Another vital provision is **Section 19**, which protects children from long-term consequences by ensuring that any conviction under the Act does not lead to disqualification from jobs, education, or other future opportunities. This is especially important in cybercrime cases, where the offense may have been committed without full understanding or maturity. Additionally, **Section 25** mandates the **destruction of juvenile records** after a period, thereby giving them a clean slate and a chance to reintegrate into society. This is crucial in the digital context, where reputations can be permanently damaged due to the viral nature of social media content.

The Act also prohibits the most extreme punishments. **Section 21** clearly states that no child shall be sentenced to death or life imprisonment without the possibility of release, even if tried as an adult. Thus, while the law allows for stricter treatment of juveniles in cases of serious cyber offenses, it still upholds the principle of child welfare and the belief that children are capable of change. In conclusion, the Juvenile Justice Act, 2015 strikes a delicate balance between acknowledging the gravity of social media-related offenses and ensuring that the justice system remains child-centric. It empowers legal institutions to respond to thecomplexities of the digital age while ensuring that juvenile offenders are rehabilitated and given an opportunity for a positive future.

The **Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS), 2022**, which replaces the Indian Penal Code (IPC), incorporates several provisions that are crucial in the context of juvenile offenses committed through or involving social media and digital technology. Though the BNS does not directly mention "juveniles" (as they are primarily governed under the **Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015**), the offenses that may be committed by juveniles in the digital space are well-defined and penalized under various sections of BNS. Here are the key provisions:

1. Section 66 – Publishing or Transmitting Obscene Material in Electronic Form

This section penalizes those who publish, transmit, or cause to be published any material which is obscene, especially on social media platforms. Juveniles

may get involved in sharing or circulating such content without understanding the consequences.

- **Punishment**: Imprisonment up to 3 years and fine for the first conviction; up to 5 years and fine for subsequent offenses.

- **Relevant for**: Sexting, sharing explicit videos, and involvement in online sexual content.

2. Section 67 – Publishing or Transmitting Sexually Explicit Content

This provision targets the circulation of content that is sexually explicit in nature, especially on platforms like WhatsApp, Instagram, or Telegram. Juveniles engaging in such acts— knowingly or as part of peer pressure—can be prosecuted under this section.

- **Punishment**: Up to 5 years for the first conviction, up to 7 years for subsequent convictions, along with fines.

3. Section 69 – Child Sexual Abuse Content (CSAC)

This is one of the most serious provisions relevant to juvenile involvement in social media crimes. It criminalizes the creation, possession, publication, or distribution of **child sexual abuse material**, even if shared casually or unknowingly.

- **Punishment**: Minimum 5 years, which may extend up to 7 years with fine.

4. Section 73 – Cyberbullying and Online Harassment

This includes sending threatening, insulting, or harassing messages through digital means. Many juveniles are involved in cyberbullying unknowingly, treating it as a joke or peer challenge.

- **Punishment**: Up to 3 years and fine.

- **Relevant Acts**: Cyberstalking, doxxing, online threats, character defamation through social media

5. Section 86 – Identity Theft and Impersonation

Juveniles sometimes create fake social media profiles or hack into others' accounts for fun or revenge. This section criminalizes impersonation and misuse of digital identity.

- **Punishment**: Up to 3 years and fine.

6. Section 113 – Abetment of Suicide (Including Cyberbullying Consequences)

If cyberbullying or harassment by a juvenile leads to self-harm or suicide by another individual, this provision becomes applicable.

- **Punishment**: Up to 10 years imprisonment.

While the **BNS, 2022** defines offenses and penalties, juveniles charged under these sections will be tried under the framework of the **Juvenile Justice Act, 2015**, which determines whether they should be tried as adults (if aged 16–18 and involved in heinous crimes) or be sent for reformation. Thus, **BNS defines the offense, but JJ Act governs the trial and punishment based on age and mental capacity**.

CONCLUSION

In today's digital age, social media has transformed how young people interact, learn, and express themselves. Platforms such as Instagram, Snapchat, YouTube, and WhatsApp have become virtual spaces for communication and self-exploration. However, this digital exposurehas also brought new challenges, including an alarming rise in juvenile involvement in cybercrimes. Whether through cyberbullying, online harassment, data theft, sharing explicit content, or participation in harmful trends, juveniles often engage in online activities that may amount to punishable offenses—knowingly or unknowingly.

The digital environment, characterized by anonymity, instant sharing, and peer pressure, can blur the lines between right and wrong for adolescents. Many juveniles commit such offenses without fully

understanding the legal or emotional consequences. The need of the hour is not only strict regulation but a balanced legal approach that recognizes the unique status of juveniles as individuals still undergoing psychological and emotional development.

In India, this balance is maintained through the **Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015**, and more recently, through the provisions of the **Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS), 2022**, which replaces the Indian Penal Code. The **JJ Act, 2015** is built on the principle of *reformative justice*. It treats juveniles not merely as offenders but as children in need of care, protection, and guidance. The Act establishes Juvenile Justice Boards (JJBs) to adjudicate juvenile cases and ensures that the child's background, mental condition, and circumstances are assessed before determining the course of action.

Importantly, **Section 15** of the JJ Act allows for a **preliminary assessment** in cases of heinous offenses committed by juveniles aged 16–18. If it is found that the juvenile had sufficient mental capacity and intention, the JJB may recommend that the case be tried under the adult system. However, the underlying principle remains focused on **reformation rather than punishment**.

On the other hand, the **Bharatiya Nyaya Sanhita (BNS), 2022** has updated legal provisions to address the growing menace of cyber and digital crimes. For example:

- **Section 66** penalizes the publication or transmission of obscene material in digital form.
- **Section 67** deals with sexually explicit digital content.
- **Section 69** criminalizes the circulation of Child Sexual Abuse Material (CSAM).
- **Section 73** addresses online harassment and cyberbullying.
- **Section 86** criminalizes identity theft and online impersonation.

These provisions are highly relevant in cases where juveniles commit offenses using social media platforms. However, the trial and rehabilitation of such juveniles remain under the jurisdiction of the **JJ Act**, ensuring a child-friendly legal process.

Together, the **JJ Act, 2015** and the **BNS, 2022** create a legal ecosystem that balances the seriousness of digital crimes with the developmental needs and reformative rights of juveniles. While the **BNS ensures accountability**, the **JJ Act provides a chance for reform**, aiming to reintegrate the juvenile into society with improved awareness and behavior.

In conclusion, tackling juvenile delinquency in the digital era requires more than legal tools— it demands **digital literacy**, **parental supervision**, **ethical education**, and **strong policy implementation**. The legal framework is evolving, but it must be supported by proactive steps from families, schools, tech companies, and civil society. Only then can we ensure that technology becomes a tool for empowerment, not deviance, and that our youth grow up to be responsible digital citizens—not misguided offenders.

REFERENCE

1. https://www.ijprems.com/uploadedfiles/paper//issue_11_november_2024/37098/final/fin_ijprems1732623504.pdf
2. https://dx.doi.org/10.30560/mhs.v2n1p1
3.https://asbmr.onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.1029/2002JA009768
4. https://dx.doi.org/10.3991/ijim.v17i20.4466
5.https://shodhganga.inflibnet.ac.inhttps/shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/65 1713/7/07_chapter-3.pdf
6. https://dx.doi.org/10.1007/s11109-019-09571-8
7.https://researchspace.ukzn.ac.za/bitstream/handle/10413/13390/Vadivalu_Gerard_2014.pdf?sequence=1&isAllowed=y
8.http://www.statewatch.org/subscriber/protected/sw7n1.pdf
9.https://en.wikipedia.org/wiki/Disappearance_of_Natalee_Holloway

10. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015
11. Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023

Authored by –
1. Sagar,
Research Scholar,
Dept. of Law, M.D.U Rohtak
2. Dr. Kailash Kumar,
Associate Professor, MDU-CPAS

55

राजेन्द्र बड़गुजर के काव्य मे सामाजिक चेतना

प्रो. (डॉ.) जयकरण यादव, शिवरानी

सारांश :–

सामाजिक व्यक्तिव होने के नाते हर साहित्यकार का अपने सामाजिक परिवेश के प्रति एक अटूट संबंध होता है। उसकी काव्य चेतना इनसे विभिन्न अनुभूतियों को ग्रहण करती हुई रचना के रुप में उनकी अभिव्यक्ति करती है। डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर जी पर भी उनके समसामायिक परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ा। बाल्यकाल से अब तक श्रृंखला बद्ध उनका संघर्षमय जीवन साहित्यिक अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्त होता है। राजेन्द्र जी का कवि हृदय सभ्य समाज में अदृश्य समाजिक भेदभाव तथ जातिगत कुंठाग्रस्त मानसिकता को जड़ से खत्म करने का इच्छुक है। उनका कवि मन रूढ़ीवादी जड़ विचारधारा से संपूर्ण मानव समाज को मुक्ति की कामना करता है। उनके स्वर में लाचारी और हताशा की बेबसी के बजाय विद्रोह की गूंज है, जो सीधे तल्ख स्वर में अपने अधिकारों की बात करती है। कवि की दृष्टि ऐसे नव समाज की स्थापना चाहती है जिनके हृदय में मानवता का आलोक हो, जो प्रेम परिपूर्ण हो, जिनमें समानता तथ सद्भावना का विकास हो।

राजेन्द्र जी का काव्य अम्बेड़करवादी विचारधारा से पूर्णतः प्रभावित है। उनकी काव्य रचनाओं में अम्बेड़कर जी के विचरों का विश्लेषण किया गया है। जातिगत संकिर्णता मानव को दो भागो में बाट देती है। यहां तक कि उच्च शिक्षा तथा उच्च पद भी इस संकिर्णता को दूर नहीं कर पाते। ऐसी जड़ मानसिकता के प्रति राजेन्द्र जी अपना रोष व्यक्त करते है। ऐसी कुंठा और निराशा के माहौल में भी राजेन्द्र जी का कवि हृदय आशाओ के दीप द्वारा अपने समाज के अन्धकार को दूर करने का प्रयत्न करता है। अपितु वे आत्मविश्वास को खण्डित होने देना नहीं चाहते। वे शिक्षा के महत्व को समाज से साझा कर वंचित समाज को बाल मजदूरी, नारी उत्पीड़न, बेरोजगारी, आर्थिक समस्या के प्रति जागरूक कर समाज में नव चेतना का संचार करना चाहते है।

डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर के काव्य संग्रह 'मनु का पाप' (2003), 'भीड़ी गलियाँ तंग मकान', 'कुछ मत कह देना' (2012) तथा 'मारीचिका सड़क पर' (प्रकाशधिन) आदि में सामाजिक एकता और सामाजिक न्याय के लिए सम्पूर्ण समाज को जागरूक करने के लिए वैचारिक संदेश दिया गया है। राजेन्द्र जी के काव्य लेखन में समता चेतना के आधार पर विशेष रूप से भाव और विचार व्यक्त किए गए है।

'भीड़ी गलियाँ तंग मकान' में संकलित, मुझे लड़ना है कविता वर्तमान शोषण और समस्याओं से लड़ने की बात कवि ने इस तरह कही है।

मुझे लड़ना है
हमेशा हार मान लेने वाली
आदतन मानसिकता से
मुझे लड़ना है / अन्धविश्वासो में
पड़ी / सड़ी गली / अतार्किकता में (1)

शिक्षा का प्रकाश वंचित वर्ग के जीवन के अंधकार को दूर कर रहा है। जाग रहे है मेरे लोग कविता में कवि कहते है :–

अब जाग रहे है मेरे लोग
उनकी आँखों में / आबसी है
जय भीम ललकार
जो / लगातार /
निराकरण कर रही है। (2)

पिछड़े वर्ग के साहित्यकार समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को भलिभांति समझते हैं। उनकी दृष्टी में भूतकाल में उनके पूर्वज सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण, अपमान सहते हुए कष्ट पूर्ण जीवन ज्ञापन करते रहे। वर्तमान में भी उनकी नई पीढ़ी कही प्रत्यक्ष तो कही अप्रत्यक्ष रुप से भेदभाव तथा अपमान का जीवन जी रही हैं। यह स्थिति उनके कवि मन को बैचेन करती है। आशा और निराशा के बीच विचलित राजेन्द्र जी चिन्तित भाव से 'भटकाव' कविता अपने भावी को व्यक्त करते हुए कहते हैं :–

जीवन अस्थिर / सीमित / ऋंटाले
बुद्धि परीमित / कार्य अगणित
हस्त चपलता / यह / पहिलो की
ऊँचाई / अस्तित्व की लड़ाई
भटकन / सूनापन / शून्यपन (3)

राजेन्द्र जी अपने हृदय की पीड़ा भावनाओं की उमड़ घुमड़ की वेदना को बहुत ईमानदारी के साथ व्यक्त करते हुए कहते हैं :–

"हृदय की / उमड़न–घुमड़न
दुखों की कसकन
शब्दों को / बिलोने की आवाज
निरन्तर आती है।
व्यक्त न करने / की असमर्थता
हरपल सुनाती है

हृदय की चक्की में / दुखो की कनक में
शब्दों का घुन भी / पिसता जाता है।" (4)

राजेन्द्र जी अपने काव्य के माध्यम से नारी को समाज के अनिवार्य अंग के रूप में व्यक्त करते है। वे नारी स्वतंत्रता के पक्षपाती है। आधुनिक समाज में आज भी जो सम्मान आदर नारी को प्राप्त होना चाहिए उस अधिकार का अभाव देखा जाता है। दलित नारी की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय देखी जाती है। विभिन्न युगो में नारी की स्थिति का वर्णन करते हुए राजेन्द्र जी कहते है कि आदिकाल में सुन्दर स्त्रीयों को त्याग की वस्तू बताया गया। रीतिकाल में भी नारी के प्रति कामुक भावना रखते हुए उसे भोग की वस्तु माना गया और आधुनिक काल में कवि लिखते हैं :–

"आधुनिक काल आया
नारी अस्मिता खोजने के लिए
नहीं शोधने के लिए(5)

आधुनिक काल में भी नारी अस्मिता की खोज करने वाले, अभी भी नारी का शोध नहीं कर पाए हैं।

'कुछ कह मत देना' काव्य संग्रह में कविता तुम्हारा साथ चाहिए में डॉ. राजेन्द्र जी ने स्त्री अस्मिता के प्रति सजगता का भाव बताते हुए लिखा है :–

"मुझे / तुम्हारा साथ चाहिए
तुम पर पड़ने वाली / उस परम्परागत जार
की कुदृष्टि से / तुम्हे बचा पा सकने के लिए
.....क्योंकि / मैं और तुम
मिलकर ही / उस आतंकी का
सामना कर सकते है / हे! दलित नारी।"

डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर ने रैदास, कबीर और ज्योतिबा फुले आदि सभी महापुरुषों को अपना आदर्श मानते है। उनके सामाजिक योगदान को वे विस्मरणीय बताते है। अपने काव्य के माध्यम से वे इनके समर्पित जीवन की प्रशंसा करते नहीं थकते। वे पुरे समाज को इसकी जानकारी देना चाहते है ताकि सभी लोग मानवता के मार्ग से चलते हुए समाज में एकता और समानता को बनाने में अपना योगदान दे सके।

पैदा होते ही तुम जुड जाओगे
महान आजीवक मकखलि गोशाल
रैदास, कबीर, ज्योतिबा फुले
डॉ. अम्बेड़कर, साहब कांशीराम से
तुम्हारी शक्ल अख्तियार कर लेगी
माता रमाबाई /
तथा सावित्री बाई फुले की परम्परा।" (6)

डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर जी ने देश की प्रगति में रूकावट रूप में आने वाले जातिवाद और धार्मिक उन्माद की बातो को अपनी कविता के माध्यम से बताया है। मनु का पाप काव्य संग्रह में संकलित कविता 'दृष्टिकोण' मे वे निम्न जाति के माने गए अछूत की पीड़ा को व्यक्त किया है। इस कविता में समाज में उपस्थित जातिवाद की समस्या को दर्शाया गया है। जातिवाद दोनो वर्णों को बराबरी का भाव महसूस नहीं होने देता है।

अछूत का दर्द उसे दुखी करता है। देश का नागरिक और समाज का सदस्य होने के बाद भी जातिवाद के कारण उसे अपना नहीं समझा जाता / इस दर्द को कविता के माध्यम से बताया गया है :–

"ये वतन , ये मातृभूमि
ये सब आदर्श
मैं तो हूँ इनका / मगर कुछ न मेरा है
मेरी इक जाति / के आगे
सब कुछ अंधेरा है। (7)

कवि देश के बाहर के दुश्मनों से जितना सचेत है उतना ही देश और समाज की आंतरिक संरचना की खामियों से भी जागरुक है। कवि बाहर के आक्रमणकारियों की अपेक्षा देश के अन्दर विराजमान वर्ण और जातिवाद से भी छुटकारा चाहता है। इस विषय पर उनकी 'मैं देश के लिए मरना चाहता हूँ' एक सशक्त कविता है।

अब मैं
देश के अंदर ही रहकर
लडूंगा तुम्हारी हिकारत भरी त्यौरियों से
ताकि कोई बाहरी दुश्मन
हमारी ओर आंख उठाकर देखने की
हिम्मत ही ना कर सके।(8)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बंधुता को दर्शाता है जिसकी प्रेरणा का स्त्रोत डॉ. अम्बेड़कर का प्रखर दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक चिंतन है। राजेन्द्र जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित वर्ग को संघर्ष करने के लिए जागरुक किया है। कवि अपनी कविता 'आओ बच्चो खूब पढ़े हम' में दलित वर्ग के बच्चों को शिक्षा का अधिकार दिलाना चाहता हैं।

"बापू की हालत का बदला, हमको पढ़कर लेना होगा
अपने हाथो से अपनी नैया को, मजबूती से रखना होगा कंधे पर

बस्ता कलम हाथ में, अब निज इतिहास गढ़े हम।" (9)

कवि के अनुसार अतीत की सारी तस्वीर हमारे सामने है तो फिर क्यूँ नहीं अपनी बदहाली के कारणो को नहीं पहचान पाते।

"यह पता है पिता हमारा, जब करता मजदूरी है
शिक्षा ज्ञान का स्रोता है, फिर इससे क्यूं दूरी है
पीढ़ी दर पीढ़ी सीढ़ी पर सीढ़ी आओ बच्चों अब चढ़े हम।" (10)

कवि समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाजिक विकास का अवरोधक बताता है। स्वार्थी मानसिकता के लोग अपने छोटे से छोट लाभ के लिए दूसरे व्यक्ति का नुकसान करने से पीछे नहीं रहते। आसानी से किसी पर विश्वास नहीं किया जाता है।

लाल व श्वेत रक्त कणिकाओं में
भ्रष्ट रक्त कणिकाएँ
भी मिल गई हैं?अब रक्त में (1)

कवि स्त्री–पुरुष समानता के भी पक्षधर है। कवि साहित्य में स्त्री को भोग की वस्तु को बताना अशोभनीय बताते हैं।

'मैं संघर्ष की परम्परा हूँ' कविता में संघर्ष के प्रति अपनी आस्था बताते हुए कवि कहते है :–

पर / शायद तुम्हें नहीं पता
संघर्ष की परम्परा / कभी रूकी है?

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि शोषित वंचित वर्ग अपने सम्मान के अधिकार के लिए लगातार प्रयत्नशील है। संघर्ष से जुझने की उसकी प्रतिबद्धता तब तक जारी रहेगी जब तक समाज में समता की भावना वास्तव में स्थापित नहीं होती।

वंचित समुदाय को सम्बोधित करता काव्य अपने लिए स्वाभिमान की मांग करता है। वह अपनी संस्कृति के इतिहास से परिचित है। अतीत में उसके पूर्वजों पर हुई ज्यायती उसे आंदोलित करती है। स्वाभिमान वे भाव को व्यक्त करती पक्तियाँ आत्मविश्वास से भरी है।

है मेरे पास, इतना आत्मविश्वास
कि मैं / फोड़ सकता हूँ
पर्वतों के श्रृंगो को
और उनमें से गंगा बहा सकता हूँ।। (2)

दलित आन्दोलन बढ़ने के साथ कवि आश्वस्त हो रहा है कि अब लोकतंत्र के तहत उसकी भावनाओं की भी कद्र की जायगी। आशा की किरण को प्रस्तुत करती राजेन्द्र जी की कविता जाग रहे है मेरे लोग उल्लेखनीय है :–

जागने लगी है
नब्बे वर्षीय
धुंधली मिजामिजाई आँखों में
आशा की किरण
चमकने लगा है
फूल की सुगंध
सूंघने का आत्मविश्वासी तेज
और तेज होने लगे है
जय भीमी तूर्रानाद (13)

राजेन्द्र बड़गुजर जी का साहित्य वंचित समाज की विसंगतियों, त्रासदियों तथा विडम्बनाओं को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है। उनके काव्य संग्रह 'मनु का पाप' में चौसंठ कविताएँ है, 'कुछ कह मत देना' काव्य संग्रह में 48 कविताएँ तथा भीड़ी गलियाँ तंग मकान में इक्तालिस कविताएँ हैं। मरिचिका सड़क पर (प्रकाशहीन) में कविताएँ है। उनकी कविताऐं वंचित समाज पर सदियों से हो रहे उत्पीड़न को उजागर करती है। इनका काव्य अम्बेड़करवादी विचारधारा से प्रभावित है। रैदास, कबीर, ज्योतिबा फुले को अपना आदर्श बताता है। स्त्री अस्मिता के प्रति सजग, राजेन्द्र जी का काव्य समाज में समता तथा मानवता की आधारशीला रख अपने अधिकार की बात करता है। कवि अपने अधिकार के लिए याचना नहीं रकता बल्की आक्रोश पूर्ण वाणी द्वारा वर्तमान जातिगत व्यवस्था से उपजी क्रूर मानसिकता के प्रति रोष प्रकट करता है। दलित वर्ग किस प्रकार अन्याय और अत्याचार के चक्रव्यूह को भेद सकता है। इस चेतना की अनुगूंज उनके काव्य में समस्त रूप से सुनाई पड़ती है।

कवि का मानना है कि समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिकता की समस्याओं से सामाजिक विकास में अवरोध उत्पन्न करती है। नारी को दोय्यम दर्जे का स्थान देना तुच्छ मानसिकात को तो दर्शाता है। देश का भविष्य माने जाने वाले मासूमो को बाल मजदूरी का शिकार पाया जाता है। आर्थिक विपन्नता की दलदल उन्हें इससे बाहर नहीं आने देती। समाज के शिक्षित वर्ग का कर्त्तव्य है कि वे इस वंचित समुदाय को इस विपदा से उबारे। विशेषकर पढ़े–लिखे दलित शिक्षित जनों का अपने समाज के प्रति विशेष कर्त्तव्य बनता है। राजेन्द्र जी अपने काव्य को माध्यम से इस कर्त्तव्य बोद्य की भावना को व्यक्त करते है।

राजेन्द्र बड़गुजर जी ने अपनी कविताओं में अपने अनुभवों और विचारों को काव्य रुप में लिखा है। उनकी कविताओं में व्यक्तिगत भावना होने के बाद भी सामाजिकता की भावना है।

उनका लेखन किसी एक व्यक्ति का लेखन ही नहीं बल्कि अपने वर्ग अपनी जाति और अपने समाज के प्रतिनिधि के रूप में अपनी रचनाओं को समाज के सामने प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षत :–

यह कह सकते हैं कि राजेन्द्र बड़गुजर जी की रचनाएँ समसामायिक दृष्टि से सार्थक है। वंचित समाज की तकलीफों, समस्याओं, रूढ़ियों और मुक्ति की छटपटाहट को सम्पूर्ण प्रतिबद्धता एवं सरोकार के साथ प्रस्तुत करने में डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर सफल हुए है। उनकी कविताएँ दलित यर्थात के संजीव प्रस्तुतीकरण और दलित सामाजिक चेतना के निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रथ सूची

आधार ग्रंथ

1. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर, मनु का पाप सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने करनाल रोड, कैथल (हरियाणा) 2003, प्रथम संस्करण, द्वितीय संस्करण 2005।
2. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर भीड़ी गलियाँ तंग मकान, साहित्य संस्थान, लोनी रोड, गाजियाबाद, (उत्तर प्रदेश) 2010 प्रथम संस्करण।
3. डॉ. राजेन्द्र बड़गुजर कुछ मत कह देना साहित्य संस्थान, लोनी रोड, गाजियाबाद, (उत्तर प्रदेश) 2010 प्रथम संस्करण।

1. राजेन्द्र बड़गुजर, भीड़ी गलियाँ तंग मकान पृष्ठ–43
2. राजेन्द्र बड़गुजर, भीड़ी गलियाँ तंग मकान पृष्ठ–104
3. राजेन्द्र बड़गुजर, मनु का पाप पृष्ठ–57
4. राजेन्द्र बड़गुजर, मनु का पाप पृष्ठ–58
5. राजेन्द्र बड़गुजर, कुछ कह मत देना पृष्ठ–62
6. राजेन्द्र बड़गुजर, मरीचिका सड़क पर पृष्ठ–65
7. राजेन्द्र बड़गुजर, पृष्ठ–
8. राजेन्द्र बड़गुजर, कुछ कह मत देना पृष्ठ–12
9. राजेन्द्र बड़गुजर, भीड़ी गलियाँ तंग मकान पृष्ठ–33
10. राजेन्द्र बड़गुजर, भीड़ी गलियाँ तंग मकान पृष्ठ–33
11. राजेन्द्र बड़गुजर, भीड़ी गलियाँ तंग मकान पृष्ठ–99
12. राजेन्द्र बड़गुजर, मनु का पाप पृष्ठ–30
13. राजेन्द्र बड़गुजर, भीड़ी गलियाँ तंग मकान पृष्ठ–104, 105

प्रो. (डॉ.) जयकरण यादव
शोद्य निर्देशक, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शिवरानी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)